ISSN 0973-3914

RESEARCH JOURNAL OF SOCIAL AND LIFE SCIENCES

HALF YEARLY, BILINGUAL (English/Hindi)

A REGISTERED REVIEWED/REFEREED RESEARCH JOURNAL
Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory©,
ProQuest, U.S.A (Title Id: 715205)

अंक–XXVII-I हिन्दी संस्करण वर्ष–14 मार्च, 2019

UGC
Journal No. 40942
Impact Factor 3.112

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802,Year-1997
www.researchjournal.in

आई एस एस एन 0973–3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

पंजीकृत रिव्यूड/रेफर्ड रिसर्च जरनल

A Registered Reviewed/ Refereed

U.G.C. Journal No. 40942, Impact Factor 3.112

Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest, U.S.A. Title Id : 715205

अंक-XXVII-I	हिन्दी संस्करण	वर्ष-14	मार्च, 2019

प्रधान सम्पादक

प्रोफेसर ब्रजगोपाल

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित

profbrajgopal@gmail.com

ऑनरेरी सम्पादक

डॉ. अखिलेश शुक्ल

प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित

akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग

उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल

अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा

shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा

सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा

rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा की मुख्य शोध पत्रिका

म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत

पंजीयन क्रमांक 1802, सन् 1997

विषय विशेषज्ञ/परामर्श मण्डल

1. डॉ. अरविंद जोशी (आचार्य) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
   arvindvns@outlook.com
2. डॉ. रामशंकर (आचार्य) रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर।
   rs_dubey@yahoo.com
3. डॉ. डी. एस. राजपूत (आचार्य) डॉक्टर हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर।
   drdiwakarrajeut@rediffmail.com
4. डॉ. बी. के. सिंह (आचार्य) महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी।
   imdrbrajesh.kv@gmail.com
5. डॉ. अंजली श्रीवास्तव (आचार्य) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा।
   anjali_apsu@rediffmail.com
6. डॉ. बी. पी. बडोला (सेवानिवृत्त (आचार्य)) कांगड़ा हिमाचंल प्रदेश।
   bpbadola@gmail.com
7. डॉ. आभा सक्सेना (सह प्राध्यापक) अग्रसेन कन्या स्वशासी महाविद्यालय वाराणसी।
   drabhasaxena7@gmail.com
8. डॉ. प्रज्ञा मिश्रा (आचार्य) महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट।
   pragyamishramgcgv@gmail.com
9. डॉ. आशीष सक्सेना (आचार्य) इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उत्तर प्रदेश।
   ashish.ju@gmail.com
10. डॉ. ज्योति उपाध्याय (आचार्य) विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश।
    drjyotiupadhyay11@gmail.com
11. डॉ. प्रमिला पुनिया (सह प्राध्यापक इतिहास) राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान।
    pramilapoonia@rediffmail.com
12. डॉ. रामलला शुक्ल (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। ramlalashukla666@gmail.com
13. डॉ. मृदुल जोशी (आचार्य) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार।
    dr_mriduljoshi@yahoo.com
14. डॉ. के. के. शर्मा (प्राध्यापक) शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा। sharmakktrs@gmail.com
15. डॉ. शैलजा दुबे (प्राध्यापक) शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल। shailjadubey70@yahho.in
16. डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव (आचार्य) शासकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान।
    dr21pramila@gmail.com
17. डॉ. जयशंकर शाही (आचार्य) अलवर राजस्थान।
    jayshankarshahi@gmail.com
18. डॉ.एन. पी. त्रिपाठी (सेवानिवृत्त (आचार्य)) रीवा मध्य प्रदेश।
19. डॉ. राजेश भट्ट, एच एन बी केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड।
    rajeshbhatt11@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन-

- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेज (ISSN-0973-3914) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं। यू.जी.सी. लिस्ट इसका क्रमांक 40942 है।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री, प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्स्ड और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग–अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च, जून, सितंबर तथा दिसंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका रिव्यूड एवं रेफर्ड हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है। शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक, मोबाइल नं., ई–मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50–100 शब्दों का सारांश दिया जाये।
- मुख्य शब्द सारांश के नीचे टाइप कराया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट– पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010 (फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए–4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com,**
  researchjournal.journal@gmail.com
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई–मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00

-सदस्यता शुल्क -		
अवधि	**व्यक्तिगत सदस्यता**	**संस्थागत सदस्यता**
दो वर्ष	2500.00	3000.00
पाँच वर्ष	5000.00	6000.00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच–रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशक: **गायत्री पब्लिकेशन्स**
रीवा- 486001 (म.प्र.)

लेजर कम्पोजिंग: **अरविन्द कुमार व्यास**
रीवा (म.प्र.)

संपादकीय कार्यालय

एस.एस.डी.-4, 'गोकुल', विन्ध्य विहार कालोनी, ए.जी. कॉलेज रोड, दुर्गा मंदिर के सामने, रीवा- 486001 (म.प्र.)

E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com

www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन यानी इसरो ने देश–दुनिया के सैकड़ों उपग्रहों का सफल प्रक्षेपण करके साबित किया है कि तेजी से बढ़ते अंतरिक्ष बाजार में अब उसका कोई मुकाबला नहीं है, पर जब बात दुश्मन देशों से अपनी रक्षा करने और आतंकवाद से लोहा लेने की हो तो उसमें भी इसरो के उपग्रहों की एक शानदार भूमिका हो सकती है–यह बात हाल में (26 फरवरी, 2019 को) पाकिस्तान स्थित बालाकोट में आतंकी संगठन जैश–ए–मोहम्मद के प्रशिक्षण शिविर पर भारतीय हवाई हमले से साबित हुई है। इसे लेकर भले ही पाकिस्तान और अपने देश में विपक्षी दल यह विवाद खड़े कर रहे हों कि इस हमले में भारत सरकार मारे गए आतंकियों की सही संख्या नहीं बता पा रही है, पर जिन्हें वायुसेना और खास तौर से इसरो की काबिलियत पर भरोसा है, वे जानते हैं कि मिराज–2000 विमानों से रात के अंधेरे में किए गए इन हवाई हमलों की सटीकता कितनी अधिक रही होगी। जब कभी दो पड़ोसी देशों के बीच सैन्य ताकत की तुलना होती है तो अक्सर यह सैनिकों की तादाद के अलावा लड़ाकू विमानों, जंगी जहाजों, टैंकों और मिसाइलों और मारक क्षमता तक सीमित रह जाती है। इसमें विज्ञान के उन दूसरे क्षेत्रों की तरक्की को नहीं जोड़ा जाता है, जिनकी मदद से किसी भी ऑकलन और हमले की स्थिति में देश को बढ़त हासिल होती है। वस्तुतः भारत की सैन्य तैयारियों के संबंध में आज यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि लड़ाकू विमान, टैंक–तोपें और जंगी जहाज ही नहीं, बल्कि आसमान में तैनात इसके दर्जनों उपग्रह इसे ऐसी ताकत दे रहे हैं जिसका कोई मुकाबला पाकिस्तान हरगिज नहीं कर सकता है।

भारतीय वायुसेना द्वारा पाकिस्तान के बालाकोट में किए गए एयर स्ट्राइक के बाद देश का आत्मविश्वास बढ़ा है। वैश्विक स्तर पर भारत को आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए इतना व्यापक अंतरराष्ट्रीय समर्थन पहले कभी नहीं मिला था। देश के हर स्थान पर सेना को और एक–दूसरे को बधाइयां दी गईं। हर चेहरे पर प्रसन्नता व्याप्त थी। हालांकि क्षुद्र स्वार्थवश कुछ गिने–चुने राजनेता अपनी संकुचित मानसिकता की सीमाओं से ऊपर उठ नहीं पाये। यह राजनीति के हल्केपन और नासमझी के उदाहरण ही माने जाएंगे। ऐसे अवसरों पर राष्ट्र की मनः स्थिति सामान्य नागरिक ही बिना लाग लपेट के व्यक्त करते हैं। उनके विवेचन सदैव ही तर्कसंगत पाए जाते हैं, क्योंकि उनमें पूर्वाग्रह शामिल नहीं होते हैं। इस बार भी ऐसा ही हुआ स्पेस है। पिछले पांच–छह वर्षो में इसरो ने कई ऐसे सैटेलाइट अंतरिक्ष में स्थापित किए हैं, जिनकी मदद से भारत की क्षमता आस–पड़ोस के 14 देशों के करीब साढ़े 5 करोड़ वर्ग किलोमीटर दायरे वाले भूभाग पर सूक्ष्म नजर रखने की हो चुकी है। वायु सेना प्रमुख बीएस धनोआ के इस बयान पर गौर करें। हमें जो लक्ष्य दिया गया था, उसे हिट किया गया। हम मरने वालों की संख्या नहीं गिनते। अगर हमने जंगलों में बम गिराए होते तो पाकिस्तान प्रतिक्रिया क्यों करता ? यह केवल एक बयान भर नहीं बल्कि सीधा जवाब है उन राजनीतिक दलों को जो आतंकी शिविरों पर वायु सेना की एयर स्ट्राइक के बाद सियासी मिसाइलें दाग रहे हैं। सत्ताधारी दल जहां इस कार्रवाई का श्रेय लेने में सबसे आगे है वहीं विपक्ष भी कार्रवाई के सबूत

मांगने में पीछे नहीं है। यह सियासी दृश्य चिंताजनक है। सेना के शौर्य पर सियासत क्यों हो रही है ? यह सही है कि सियासत की नींव में सिर्फ अपना नफा–नुकसान ही होता है लेकिन, नेता भूल गए हैं कि मुद्दा यहां सियासी गुणा–भाग का नहीं बल्कि राष्ट्र की सुरक्षा का है। एयर स्ट्राइक के सबूत सबसे पहले विपक्ष ने मांगे। कांग्रेस सहित समूचा विपक्ष सबूत मांगने के लिए सरकार पर टूट पड़ा। मिग–21 जैसे हमारे हवाई जहाजों की क्षमता पर भी सवाल खड़े किए गए।

पक्ष–विपक्ष अपने–अपने नफा–नुकसान के हिसाब से सेना के शौर्य को ऑक रहा है, जो खतरनाक है। देश इस समय आम चुनाव की दहलीज पर खड़ा है। ऐसा लग रहा है कि सत्ता पाने की हसरत ने सारी सीमाएं तोड़ दी हैं। सेना की कार्रवाई पूरे देश का गौरव है, उपलब्धि है, न कि किसी एक दल की। वायु सेना खुद कह रही है कि उसका काम लक्ष्य भेदना है, लाशें गिनना नहीं लेकिन, हमारे नेता मारे गए आतंकियों की संख्या मांगने और देने में ही लगे हुए हैं। उरी के सैन्य ठिकाने पर आतंकी हमले के बाद भी पाक में हमारी सेना ने सर्जिकल स्ट्राइक की थी, जिसके सबूत बाद में सार्वजनिक कर भी दिए गए। ऐसे में अब विपक्ष को एयर स्ट्राइक के सबूत मांगने की ऐसी जल्दी क्यों है ? क्या सबूतों पर ही चुनावी समीकरण टिके हुए हैं ? भारतीय सेना के शौर्य की दुनिया कायल है। लेकिन राजनीति अगर सेना का इस्तेमाल चुनावी हथियार के तौर पर करे तो यह अपराध है। सेना के शौर्य पर यह सियासत बंद होनी ही चाहिए।

रिसर्च जर्नल आफ सोशल एंड लाइफ साइंसेज का यह 27 वां अंक प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। आशा है, आगामी अंकों में भी हमें आपका बौद्धिक सहयोग प्राप्त होता रहेगा और इसी तरह अकादमिक विचार– विमर्श की प्रक्रिया चलती रहेगी।

रीवा, 31 मार्च 2019

(प्रोफेसर ब्रजगोपाल)
प्रधान संपादक

डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

1.	बाल अपचार के शारीरिक एवं जैविक तत्व **अखिलेश शुक्ल**	09
2.	छत्तीसगढ़ के बैगा जनजाति के लोकगीतों में विषय वैविध्य **गौकरण प्रसाद जायसवाल**	14
3.	भारत में प्रजननता निर्धारण के घटकों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **नाहिद परवीन**	24
4.	छत्तीसगढ़ की लोक साहित्य (लोकगीत) परम्परा **संगीता रंगारी** **एस.के. ठाकुर, अभिनेष सुराना**	31
5.	अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति (बलौदाबाजार विधानसभा क्षेत्र छ.ग.के विशेष संदर्भ मे) **वेदवती मंडावी, महेश्वरी पात्रे**	36
6.	निमाड़ी संस्कृति में प्रतीकों का संसार **प्राची यादव**	41
7.	उन्नीसवीं सदी के भारतीय समाज व परिवर्तनशील राजनीतिक पटल पर ईसाई समाज की राजनीतिक सहभागिता व सक्रिय भूमिका **रामशंकर, ऑस्टिन रूबिन**	46
8.	भारत में आतंकवाद के बदलते आयामः एक विश्लेषण **मोहिनी राज**	49
9.	दलित चेतना–विकास में हरिजन सेवक संघ की भूमिका **रजनीश कुमार**	55
10.	संसदीय कार्य प्रणाली एवं भारतीय न्यायपालिका (एक संक्षिप्त अध्ययन) **जे.पी. गुप्ता**	60
11.	बस्तर जिले की वर्तमान राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था **सुनीता मिश्रा, डी.एन. सूर्यवंशी, संध्या चौधरी**	68
12.	गोवंश एवं ग्रामीण पुनर्रचना **दीपक कुमार पाण्डेय, देवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय**	72
13.	जिला सहकारी केंन्द्रीय बैक द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड के अन्तर्गत अल्पावधि कृषि ऋण के वितरण एवं वसूली का अध्ययन **अमित कुमार ठाकुर, ओ.पी. चन्द्राकर**	79
14.	आध्यात्मिक पर्यटन का महत्व **आर.के.मरावी**	84

15. महिलाओं के सशक्तिकरण पर स्व–सहायता समूहों के प्रभाव का अध्ययन (कांकेर जिले के चारामा ब्लॉक के विशेष संदर्भ में) 90
वन्दना विश्वकर्मा, नीलम अग्रवाल

16. छतरपुर जिले के पान उत्पादक किसानों की समस्याओं का अध्ययन 95
नीना चौरसिया
एस.पी. शुक्ला, अजय आर चौरसिया

17. आदिवासियों (संथालों) का इतिहास 100
बन्दे हुसैन अन्सारी

18. भावों की अभिवृद्धि में सहायक हैं वर्ण 105
निशा गुप्ता

19. अस्तित्ववादी दर्शन का उद्भव एवं विकास : एक विश्लेषण 110
श्याम रंजन पाण्डेय

20. आधुनिक हिंदी कहानियाँ और उनमें शब्द प्रयोग की प्रवृत्ति 116
अमित शुक्ल

21. विद्यासागर नौटियाल का साहित्य एवं गढवाली संस्कृति (तीज–त्यौहार के विशेष सन्दर्भ में) 120
गुड्डी बिष्ट, पँवार

22. हिन्दी साहित्यः इक्कीसवीं सदी अध्ययन–अध्यापन और शोध के नये आयाम 125
दिनेश श्रीवास

23. वृद्ध महिलाओं की पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याएँ– एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में) 129
के.के शर्मा, निशा सिंह

24. स्थानीय स्वशासन के प्रबन्ध में नगर पालिक निगम दुर्ग के आय–व्यय का विश्लेषणात्मक अध्ययन 136
एच. एस. भाटिया, अंकिता नामदेव

25. नवीन कृषि तकनीकी एवं ग्रामीण मजदूर महिला : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 143
दीपक कुमार

26. हरिशंकर परसाई की कहानियों में व्यंग्य का विविध संदर्भ 147
राजेश चन्द्र पाण्डेय

27. हिन्दी उपन्यास एवं सिनेमा में अंतर्सम्बन्ध 154
आंचल श्रीवास्तव, विजेन्द्र कुमार साहू

28. योगाभ्यास का छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन 158
शोभा पुरकर, ए. तारा अनंत

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

बाल अपचार के शारीरिक एवं जैविक तत्व

* अखिलेश शुक्ल

सारांश– *बाल अपचार के कारकों का निर्धारण करते समय कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किसी बालक या बालिका का अपचारी व्यवहार परिवर्तनशील सामाजिक प्रक्रिया का एक अंग है, जिसे व्यक्तिगत व सामाजिक परिस्थितियों और घटनाओं व अनुभवों जिसका वे एक भाग है, के संबंधों के साथ ही समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, बाल अपचार (किशोर अपराध), बालक या बालिका के विकास को प्रभावित करने वाले सभी तत्वों का स्वाभाविक परिणाम है। बाल अपचारियों में कारणों की विभिन्नता होते हुए भी, यह एक सुस्थापित परिकल्पना है कि बाल अपचार के विकास में कुछ निश्चित प्रकार के प्रभाव होते हैं जो उसके व्यवहार पर विशेष प्रभाव डालने का कार्य करते हैं।*

मुख्य शब्द– बाल अपचार, अपचारी व्यवहार, व्यक्तित्व, शारीरिक जैविक तत्व।

किसी भी बालक या बालिका के व्यवहार को तभी समझा जा सकता है जब उस सामाजिक संसार का ज्ञान प्राप्त किया जाय जहां वह रहता है। बच्चे समुदाय के सदस्य के रूप में जीवन जीते हैं, गतिशील सामाजिक दुनिया की गतिविधियों में भाग लेते हैं। अतः केवल उनके व्यवहार का एकांगी अध्ययन कृत्रिम होगा। उनके व्यवहार को समझने के लिए उन समूहों का भी अध्ययन किया जाना आवश्यक है। जिनके बीच वे रहते हैं।[1] बाल्यकाल में बच्चे प्रारम्भ में वयस्कों के साथ रहते हैं और उनके यह गहरे संबंध बालक के स्वभाव का मौलिक स्रोत होते हैं। बालक क्रमिक रूप से अपने परिवार, खेल समूह और फिर पड़ोसियों के सम्पर्क में आता है। यह समूह उसके व्यक्तित्व के निर्माण प्राथमिक भूमिका का निर्वाह करते हैं। बालक का उन समूहों के साथ सम्बंध आमने-सामने का होता है और इनके बीच उसके अपने की भावना जुड़ी रहती है। ऐसे समूहों के माध्यम से ही बच्चे सामाजिक दुनिया और सामाजिक तथा निजी विचारों के संसार में प्रवेश करते हैं। इसलिए अपचारी बालकों के साथ जुड़े हुये लोगों और समूहों का मनोवैज्ञानिक और सामाजिक रूप से अध्ययन और उसके सम्पूर्ण वातावरण का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. पॉल डब्लू टप्पन ने इसीलिए कहा है कि कोई भी व्यवहार एक निश्चत समय पर संबंधित व्यक्ति के व्यक्तित्व और उस समय के वातावरण पर निर्भर करता है।[2]

इसे हम सूत्र के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं।[3]

* प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

पी.आर.एस.बी.

पी	=	परसोनाल्टी (व्यक्तित्व)
आर	=	रिसपान्स (प्रभाव)
यस	=	सिचुएशन (परिस्थिति)
बी	=	बिहेवियर (व्यवहार)

'व्यक्तित्व' भी किसी विशिष्ट समय में स्वयं या उस व्यक्ति के व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक स्वरूप का परिणाम हो सकता है। जो उसके चारो तरफ के वातवरण को प्रभावित करता है। इसे भी हम सूत्र के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं-

आई.आर.ई.पी.

आई	=	इण्डिभिजुअल (व्यक्ति)
आर	=	रिसपान्स (ग्रहण शीलता)
ई	=	इनवायरोनमेन्ट (वातावरण)
पी	=	परसोनाल्टी (व्यक्तित्व)

व्यक्तित्व का तत्व-

मोटे तौर पर उन सभी लक्षणों (चिन्ह) को जो व्यक्ति का निर्माण करते हैं और समूह में उसकी भूमिका को स्थिर करते हैं, व्यक्तित्व कहा जाता है। व्यवहार में यह लक्षण हैं :

1. भौतिक आकार-प्रकार एवं जैविक दशाएं- रंग, आकार-प्रकार, स्वरूप, कद, स्वास्थ्य एवं अन्य बौद्धिक तत्व जैविक तत्व जो वंशानुगत होते हैं आदि।
2. बुद्धि और मानसिक स्थिति, बौद्धिक क्षमता, स्वभाव, इच्छायें, आदतें, रूचियां, चरित्र, आध्यात्मिक आदर्श मापदण्ड, जीवन के मूल्य, विचार अभिव्यक्ति का तरीका, समूह में व्यक्ति की भूमिका और उसकी सामाजिक स्थिति तथा सामाजिक प्रतिष्ठा। इन सबका योग ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। बाल अपचार में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बालक की इच्छाएं, आकांक्षायें प्रवृत्तियां, आदतें और उसके व्यवहार वातावरण से विकसित होते हैं। सामाजिक दृष्टि से इसलिए यह माना जाता है कि सामाजिक गतिविधयों में व्यक्ति की भूमिका उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती है। इसीलिए बाल अपचार की दशाओं का अध्ययन करते समय अपचारी बालक या बालिका के व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।[4] विलियम हीली, जो कि एक मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्री थे, ने सर्वप्रथम इस बात पर जोर देते हुये कहा है कि बाल अपचार की समस्या का गतिशील केन्द्र अपचारी होता है।[5] प्रो. हीली ने अपने अध्ययन में पाया है कि शारीरिक संरचना, स्वभावगत कमजोरी, व्यसन, उदण्डता की आदत, हीनभावना, असामान्य आदतें, प्रवृत्तियां, चारित्रिक दोष और अन्य जैविक तत्व अपचारी के कृतित्व के लिए कारक की भूमिका अदा करते हैं।

शारीरिक एवं जैविक तत्व-

अपराध में इन तत्वों की भूमिका को सर्वप्रथम, प्रसिद्ध जेल चिकित्सक सीजर लोम्ब्रोसो ने स्वीकार किया है। इसी सैद्धान्तिक अवधारणा के आधार पर उन्होंने जटिल अपराधियों अनेक शारीरिक दोषों से युक्त थे। अमेरिका में अलेस्ट ए हूटन और वीलियम एच, रोल्डन ने भी इस क्षेत्र में अध्ययन करते हुये यह पाया है कि मनुष्य के शारीरिक ढांचे

का उसके व्यवहार में प्रभाव पड़ता है।[6] शारीरिक ढांचे और मनोवैज्ञानिक तत्वों का अन्तः संबंध बालक के व्यवहार को प्रभावित करता है। यह भी सही है। भावनायें और मानसिक दशाएं अलग-अलग व्यक्तियों की भिन्न हो सकती हैं। लेकिन इनमें कुछ व्यक्तित्व को निर्मित करने वाली समानताएं भी होती हैं। बालक के प्रति उपेक्षा का भाव चाहे वह उसके साथी-संगी परिवारजनों, संबंधियों या समाज के उसके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रकट किया गया हो, उसके मन को प्रभावित करता है और उनमें से कुछ अपचार के मार्ग में चल पड़ते हैं। प्रो. टप्पन ने ऐसी उपेक्षा को क्रियात्मक उपेक्षा कहा है।[7] इस तरह व्यवहार का प्रभाव बालक के मन में मनोवैज्ञानिक से मनोसामाजिक स्थिति की ओर ले जाते हुये उसके जैविक क्रिया और कभी-कभी उसके शारीरिक ढांचे को भी प्रभावित करता है। इसे समाजशास्त्रीय जैविक मनोवैज्ञानिक हीन भावना (कास्टीट्यूशनल साइकोपैथिक इनफिरियार्टी) कहते हैं। इरव्रेश्चमर ने अपचारी बालकों का अध्ययन करते हुए एक समूह के 73 प्रतिशत बालकों में यह पाया कि उन बालकों का शारीरिक ढांचा अनेक असामान्य घटनाओं और व्यवहार के लिए उत्तरदायी था।[8] इस समूह के अपचारी बालकों का लक्षण यह पाया गया कि उनमें भावनात्मक अस्थिरता, चिड़चिड़ापन, असमय एवं स्वयं के नियंत्रण में कमी आदि थी। शारीरिक अवस्था का अध्ययन करते समय यह पाया गया कि वे ट्रायमा या इनसेफलेटिस से पीड़ित थे और उनमें से अधिकांश के पारिवारिक सदस्य शराबी या अन्य ऐसे की व्यसनों के आदी थे। चिकित्सकीय जांच के दौरान उनमें से 30% का ई.सी.जी. असामान्य पाया गया। इस तरह जहां तक जैविक ढांचे का संबंध है, यह पाया गया है कि उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव बालक की उदण्डता या अस्वाभाविक या अपचारी स्वभाव होता है।

इण्डोक्रिनोलॉजी में हुई आधुनिक शोधों से यह पता चलता है कि मानव शरीर की ग्रंथियों (Glands) का प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है।[9] बाल्यकाल का मेक्सडेमा (Child hood Myxedem) शरीर में थाइराइड की कमी उत्पन्न करता है जिससे शरीर का भौतिक और शारीरिक विकास प्रभावित होता है। इससे जैविक दोष और मानसिक विकार जैसे बेचैनी, भावनात्मक तनाव और असहनशीलता उत्पन्न होती है जो अपचार के मार्ग पर ले जाती है। पिटयूटेरी (Pituitary) के ठीक से काम न करने से उदासीपन उत्पन्न होता है। इससे व्यक्तित्व की अनेक विसंगतियां, हीन भावना और समाज से अलगाव की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं। लड़कियों में यह फोहलिक सिन्ड्रोम (Frohlich's Syndrome) अनेक ऐसे लक्षण उत्पन्न करता है जो अपचार के मार्ग को प्रशस्त करता है क्योंकि इसका संबंध थाइराइड और यौन ग्रन्थियों से होता है इसी तरह मानव शरीर की यौन ग्रन्थियों की विकलांगता अपचार के मार्ग पर ले जाती है। कम आयु में किये गये यौन अपचार इस बात को पुष्ट करते हैं। इस तरह शारीरिक ढांचागत दोष व्यक्तित्व के निर्माण में अपनी भूमिका अदा करते हैं। किन्तु ऐसी शारीरिक विकलांगताओं से युक्त जो बालक या बालिका अच्छे पारिवारिक वातावरण और अच्छे पास-पड़ोस के वातावरण में पलते हैं और अपना बाल्यकाल बिताते हैं उनके व्यक्तित्व में उस वातावरण का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इसी तरह वंशानुगत क्रम से प्राप्त बीमारियां भी बालक की प्रवृत्तियों के निर्माण में अपनी विशेष भूमिका का निर्वाह करती है। परासिस (Paresis or Syphylitic, Psychosis)

इप्लेप्सी (Epilepsy) आदि बीमारियां बच्चे को माता या पिता से जन्मजात रूप से प्राप्त हो सकती है। जिनका प्रभाव उसके ऊपर पड़ता है इसी तरह इनसेफलटिस, लिर्थाजिका (Encephalitis, Lethargica) बालक को अक्सर अपचार के मार्ग पर ले जाती है। यह बीमारियां मनुष्य के मस्तिष्क को प्रभावित करती हैं जो अन्ततः उसके व्यवहार में परिलक्षित होती है।[10] इसी तरह बाल्यकाल में सिर में लगने वाली चोटें भी बालक के सेरिब्रोसयिनल प्रणाली को प्रभावित करती हैं। यह लक्षण भी बाल अपचारियों में पाया जाता है। अमेरिका में सदरलैण्ड के द्वारा किये गये लगभग 175000 अपराधियों एवं बाल अपचारियों के मानसिक परीक्षण में यह पता चला कि मानसिक कमजोरी बाल अपचार का महत्वपूर्ण कारक नहीं है क्योंकि वह अन्य तत्वों के साथ मिलकर प्रभाव स्थापित करता है। दूसरे शब्दों में पारिवारिक या सामाजिक वातावरण यदि उस शारीरिक या मानसिक कमी पर नकारात्मक प्रभाव स्थापित कर लेते हैं तो बालक अपचार के मार्ग पर प्रशस्त हो जाता है। इस तरह प्रसिद्ध समाजशास्त्री टप्पन का यह कथन सही है कि विहैवियर (व्यवहार) भी (परसोनाल्टी = व्यक्तित्व) आर. (रिसपान्स = प्रभाव) आर.एस. (सिचुएशन = परिस्थिति) का योग है।

विंध्याचल के इस रीवा भू-भाग में अध्ययन की गई 200 इकाइयों में ऊपर से परिलक्षित होने वाली जैविक विकलांगताएं और साक्षात्कार से प्राप्त जानकारियों के अनुसार शारीरिक अस्वस्थता, बीमारियां एवं ग्रंथियों आदि की जानकारी के अनुसार स्थिति इस प्रकार सामने आयी है।[11]

बाल अपचार : शारीरिक एवं जैविक तत्व

लक्षण	**बालक**		**योग**	**प्रतिशत**	**बालिका**		**योग**	**प्रतिशत**
	7–12	**12–16**			**7–12**	**12–16**		
शारीरिक विकलांगता	3	5	8	4	1	1	2	1
शारीरिक अवस्था	1	1	2	1	0	0	0	–
ग्रंथियों का दोष	1	4	5	2.5	0	2	2	1
अनुवांशिक बीमारियां	0	2	2	1	0	0	0	–
योग	**5**	**12**	**17**	**8.5**	**1**	**3**	**4**	**2**

इस तरह इस क्षेत्र में शारीरिक विकलांगता से युक्त 4 प्रतिशत बालक अपचारी एवं 1 प्रतिशत बालिका अपचारी पायी गयी है। साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी से यह सुनिश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि केवल शारीरिक विकलांगता उन्हें अपचार के मार्ग पर ले गई है। किन्तु यह जानकारी अवश्य प्राप्त हुई कि दूसरे कारण वे हीन भावना से ग्रस्त हैं। साक्षात्कार से ही यह पता चला है कि 1 प्रतिशत बालक इनसेफलिटिस आदि से पीड़ित है। यह भी पाया गया कि उनके परिवार के सदस्य व्यसनी हैं। ग्रन्थिगत दोष 2.5 प्रतिशत बाल अपचारियों एवं 01 प्रतिशत बालिका अपचारियों में पाया गया है किशोर बालक-बालकाओं का यौन अपचार जो कि इस क्षेत्र में 3.2 प्रतिशत (बलात्कार 2.7 प्रतिशत तथा प्रकृति विरुद्ध 0.6 प्रतिशत) 02% पाया गया है का एक कारक यह भी है। आनुवाशिक बीमारियां परासिस एपिलेप्सी आदि 01 प्रतिशत बालक अपचारियों में

पायी गयी है। इस तरह यह तत्व पारिवारिक एवं पर्यावरणीय प्रभावों के साथ बाल अपचार का एक प्रमुख कारक और दशा है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Clifford, R. Shaw and Henry D. Mckey, "Social Factors in Juvenile Deliquency : A Study of the Community, the family and the Gang in Relation to Delinquent Behaviour" Washington, D.C., 1931, Page 3-4.
2. Tappan Paul W., "Juvenile Delinquency" Opp. cited Page 66.
3. Shukla, Akhilesh, "Juvenile Delinquency in Rewa 1990 Page 192.
4. Eysenck, H.J., "Crime and Personolity" (Rev. ed.) Routledge and Kegan Paul Ltd. London. 1970.
5. Healy, William, "The Induvidual Delinquent" Boston, 1915 (Neumeyer Opp. Cited Page 89).
6. William H. Sheldon, "Varieties of Delinquent Youth" Newyork 1949, Page 10-13.
7. Tappan, Paul W., Opp. cited page 118
8. K\retschmer, E. "Physique and Character", Newyork, 1925 (Tappan, page 119).
9. Max G., Schlapp and H.B. Smith, "The New Criminology" 1928 (Tappan, Page 125)
10. Molitch, M., "Chronic Post & Encephalitis in Juvenile Delinquent", A.V.M.J., Phychiat, Vol. 91., 1935, P. 842-861. (Tappan Page 130).
11. साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी।
12. साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

छत्तीसगढ़ के बैगा जनजाति के लोकगीतों में विषय वैविध्य

* गौकरण प्रसाद जायसवाल

सारांश- *बैगा जनजाति का जीवन गीत और नृत्य से भरा होता है। गीत और नृत्य उनमें उल्लास और उमंग का संचार करते हैं। बैगा जनजाति अभावो ंऔर संघर्षो से जूझते हुए भी गीत और नृत्य को अपने जीवन का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बैगा जनजाति का जीवन ही गीत और नृत्य है तथा नृत्य और गीत ही जीवन है। बैगा जनजाति के लोकगीतों में प्रकृति के गीत, बैगा युवक-युवती के प्रेम गीत, विरह गीत, फाग गीत, देवी-देवताओं के वंदना के गीत, पूजा गीत, कर्मा गीत, बिलमा गीत, सैला गीत, विवाह गीत, लोरी गीत आदि का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।*

मुख्य शब्द- लैजा, तरूकिया, दौहार, डोंगरी, सुरहिन, फुन्दरा, चोंगी, चुटका।

शोध-पद्धति- प्रस्तुत शोध आलेख में मैंने द्वितीयक स्त्रोंतों का प्रयोग किया है। इसके अन्तर्गत मैंने बैगा जनजाति पर उपलब्ध कृतियों और लेखों के आधार पर तथ्य संकलन किया है।

लोकगीत शब्द अंग्रेजी के 'फोक सांग' शब्द का अनुवाद है। लोकगीत लोक साहित्य का प्रथम रूप होता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जाता है। किसी भी अंचल का लोक गीत उस अंचल की मौखिक परम्परा का संवाहक होता है। ''लोकगीत लोक जीवन का श्रृंगार ही नहीं उसकी आत्मा भी है।.... लोक जीवन के सुख-दुख, उल्लास, हर्ष-विषाद और संघर्ष को अभिव्यक्त करते हुए लोकगीत कोटि-कोटि हृदयों का प्रतिनिधित्व करते हैं।''[1] लोकगीत के संबंध में भालचंद्र राव तैलंग ने लिखा है ''लोकगीत अनुभूति सहानुभूति के ऐसे गीत हैं जो लोक जीवन के रस से भींजे हुए हैं और जिनके अंग-अंग भावों की सुगंधी से सुवासित हैं। इनका बहिरंग स्वर लहरियों पर थिरकने वाला सरल और तरल काव्य है और इनका अंतरंग मिलन और विरह की भावनाओं से स्निग्ध और मधुर है। नर-नारी ने इन गीतों को अंतःस्तल से निकालकर कंठ में रख लिया है जिसकी मधुरिमा श्रुति और स्मृति का विषय बन गई है। हृदय से निकले ये सीधे, सरल और सरस गीत हैं। निसर्ग के प्रति सच्चे हैं, न इनमें कोई नैतिक पक्षपात है, और न कोई कठोर तर्कभावना। इनका वैशिष्ट्य इनकी सर्वांग सुन्दरता में है। सीधी भाषा, सुन्दर शब्द, ललित गुंफन, चिन्ताकर्षक रचना, हृदयस्पर्शी आरंभ, अजब उठान, वेगवंत प्रवाह, सुरम्य अंत और इन सबके साथ

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) संत गुरू घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला-धमतरी (छ.ग.)

इनका नृत्यमय संगीत है।''[2]

छत्तीसगढ में 42 अनुसूचित जनजातियाँ पायी जाती है, जिसमें बैगा जनजाति भी एक है। बैगा जनजाति द्रविड़ समूह की एक अत्यन्त पिछड़ी जनजाति है। यह जनजाति भारत की प्राचीन प्रजातियों में एक है। बैगा जनजाति छत्तीसगढ़ के बिलासपुर, राजनांदगांव, कबीरधाम, कोरबा व सरगुजा जिले के मैकलपर्वत श्रेणी के पूर्वी छोर में निवासरत हैं। कैप्टन थॉमस, कर्नल वार्ड, केप्टन जे. फोरसिथ ('दी हाईलेण्ड ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया' 1871), रसेल और हीरालाल ('आईन-ए-अकबरी') वैरियर एल्विन ('दी बैगा' 1939) ने बैगा जनजाति के जीवन एवं संस्कृति पर गंभीरता पूर्वक अध्ययन कर उनकी जीवन शैली पर विस्तार से प्रकाश डाला है। बैगा जनजाति के संदर्भ में डॉ. ठाकुरदास शर्मा ने लिखा है कि ''बैगा ग्राम के घने जंगलों में ऊँचे स्थानों पर आमतौर पर चोटी पर बसे होते हैं। बैगा श्याम वर्ण के सुगठित देहयष्ठि वाले दुबले-पतले शरीर के होते हैं। इनके तन पर कपड़े के नाम पर केवल लंगोटी होती है। उलझे हुए काले बाल, हाथ में तीर-कमान तथा कंधे पर छोटी कुल्हाड़ी से इनको कहीं भी पहचाना जा सकता है।''[3] बैगा की उत्पत्ति के संबंध में रसेल और हीरालाल ने लिखा है - ''प्रारंभ में भगवान ने नागा बैगा और नागा बैगिन को बनाया, नागा बैगा नागी बैगिन जंगल में रहने लगे। थोड़े दिनों बाद उनकी दो संतानें हुई। पहली संतान बैगा और दूसरी संतान गोंड़, दोनो संतानों ने अपनी दोनों बहनों से विवाह कर लिया। आगे चलकर मनुष्य जाति की उत्पत्ति इन्हीं दो युगलों से हुई। पहले युगल से बैगा हुए और दूसरे युगल से गोड़ उत्पन्न हुए।''[4]

बैगा प्रकृति पुत्र है। प्रकृति के सानिध्य में निरन्तर रहने के कारण इनकी त्वचा का रंग गहरा काला होता है। इनकी नाक चौड़ी होती है और होंठ कुछ मोटे होते हैं और आँखें कम गोल व काली होती है। बैगाओं के बाल लंबे और घुंघराले होते हैं। उनका रहन-सहन अत्यन्त सरल होता है। वे संतोषी और संकोची प्रवृत्ति के होते हैं। पहनने के लिए एक लंगोटी और सिर पर एक कपड़ा का टुकड़ा बांधते हैं। वे शहरों की ओर कम आते हैं क्योंकि वे अपनी समाजगत परम्पराओं, रूढ़ियों और मान्यताओं से अधिक प्रेम करते हैं। वर्तमान में वे अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को खरीदने के लिए अपने समीप के बाजार में आते हैं। भोजन में ज्यादातर कोदौ, कुटकी, मक्का का पेज पीते हैं। कभी-कभी दाल-रोटी भी खाते हैं। वे अधिकतर मांसाहारी होते हैं। जंगलों में अनेक पशुओं और पक्षियों का शिकार करते हैं और उनका मांस भी खाते हैं। वे मद्यपान भी करते हैं। इनके गाँव वनों के बीच होता है, आठ-दस घरों का एक टोला ही इनका पूरा गाँव होता है। वे अपने मकान मिट्टी, लकड़ी और बांस के बनाते हैं। प्रायः खपरैल की जगह घास-फूंस लगाते हैं, घरों में पीतल, काँसे और मिट्टी के बर्तन होते हैं। वे स्वभाव से अत्यन्त भोले-भाले, ईमानदार, उदार और सहिष्णु होते हैं। उनमें अपनापन का भाव होता है। परिवार और गाँव में परस्पर प्रेमभाव से रहते हैं। वह मुकद्दम (गाँव का मुखिया) की आज्ञा का पालन करते हैं। वे अतिथियों का बहुत सम्मान करते हैं।

बैगा जनजाति का जीवन गीत और नृत्य से भरा होता हैं। गीत और नृत्य उनमें उल्लास और उमंग का संचार करतें है। बैगा जनजाति अभावों और संघर्षों से जुझते रहते हैं फिर भी गीत और नृत्य को अपने जीवन का महत्वपूर्ण अंग मानते हैं। उनके द्वारा गाये गए विरह गीतों में बैगा स्त्री की मार्मिक वेदना, विवशता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। वे अपने

कर्म और जीवन को धिक्कारते हुए कहती है-

देख सांवर मोरे विपत रे, धन करम धन जिया रे।
कहि के लाने बनी करयों, कहि के लाने बूता।
कहि के बने धरम गंवायों रे, धन करम धन जियारे।
खाय के लाने बनी करयों।
पिये के लाने बूता, जोड़ी के लाने घर गंवायों रे
धन करम धन जिया रे।
लैजा भगवान मैं मर जात्यों रे,
धन करम धन जिया रे।[5]

(हे सावरे मेरी विपत्ति देखो। मेरी तकदीर और जीवन के लिए धिक्कार है। मैंने किसके लिए मजदूरी की। किसके लिए धंधा करती हूँ। किसके लिए धर्म बिगाड़ा है। आखिर एक दिन मुझे भी मरना है। हे सांवरे! अपना पेट भरने के लिए मजदूरी की। पीने के लिए धंधा किया और तुम्हारे लिए धर्म बिगाड़ा है। मेरे कर्म और जीवन को धिक्कार है)

बैगा गीतों में स्नेह सौन्दर्य और श्रृंगार का वर्णन बड़ी सहजता के साथ हुआ है-

तोरे बरन कहाँ पायों सुआ तोर बरन रे।
हाथ में चुरा चाकी कान तरूकिया,
आठों अंग भुजा ला चमकाय सुआ तोरे बरन रे।
गरे मा तो छुटा मुड़े मा कलंगिया,
हँस हँस माया न लगाए, सुआ तोरे बरन रे।[6]

बैगा युवक युवती का श्रृंगार देखकर कहता है। हे सुआ! तेरी जैसी सुन्दरता मैं कहाँ से पाउँगा तेरे हाथ में सुंदर चूड़ा और पठेली है। कानों में तरकुल है। बाहों में गहने से तेरा अंग-अंग चमक रहा है। तेरा जैसी वर्ण कहाँ से पाऊँगा। युवती कहती है '' तेरे गले में मूंगा की माला है। सिर की पगड़ी में कलंगी खुची है। तुम हँस हँसकर मुझे आकर्षित करते रहे हो। तुम्हारा जैसा रूपमान युवक मुझे कहाँ मिलेगा।

बैगा गीतों में वन जीवन का सुन्दर चित्र देखने को मिलता है। बैगा प्रकृति पुत्र होने के कारण प्रकृति के रूप सौन्दर्य को नजदीक से निहारते हैं। प्रकृति के प्रति उनका अनन्य प्रेम होता है। वे नदी, पहाड़, झरना, धरती, पेड़, पौधों, जीव-जन्तु और पशु-पक्षियों को अपने जीवन जीने की प्रेरणा मानते है। वन प्रांतर में उन्मुक्त फुदकते पक्षी उन्हें नृत्य करने की, नदियों, झरनों से गाने की, आसमान से सिर ऊँचा कर स्वाभिमान के साथ जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। बैगा अपने सैला गीतों में सर्वप्रथम धरती, वनस्पति, और पर्वत की वंदना करते हैं-

तोर होरे नाना हो, तोरे नाना , भला तोरे होरे नाना रे।
तोहकी सुमिरौ रे माई धरती आय, तोही के लागे भार।
तोहकी सुमिरौं रे बाबा डोंगर दौहार तोही के लागे भार।
तोही सुमिरौं रे वनस्पति तोही के लागे भार।
तुमके लागे रे हंसा उड़ास तोही के लागे भार।[7]

(हे धरती माता सबसे पहले तुझे स्मरण करता हूँ। तेरी वंदना करता हूँ। तेरे ऊपर मेरा भार

है। हे दौहार पर्वत मेरी रक्षा का भार तुझ पर है। हे वनस्पति देवी मेरे पालन पोषण का भार तुझ पर है। मैं वंदना करता हूँ, मेरी आत्मा का आनंद तुम पर ही निर्भर है)

इनके गीतों में प्रातःकाल मुर्गे की बॉग सुनकर जंगल पहाड़ चढ़ने, पत्ते तोड़ने का भी वर्णन हुआ है -

डोंगरी चाढ़े हाक पारे,
कौन सुने राम डोंगरी चाढ़े।
कौन ऐसा टोरे छींटी मुखारी, डोंगरी चाढ़ें।
कौन ऐसा टोरे सरई पान, चोंगी बने राम।।[8]

(बहुत सुबह मुर्गे के बाग सुनते ही जंगल पहाड़ कौन चढ़ता है। ऐसा कौन है जो सुबह निस्तार के लिए दातून तोड़ता है। कौन सरई वृक्ष के पत्ते तोड़ता है जिससे धूम्रपान के लिए चोंगी बनती है।)

बैगा गीतों में कहीं-कहीं धरती-पाताल और खाने पीने के समान को ढूंढ़ने का वर्णन भी मिलता है। यथा -

कौन उछारे धरती पाताल रे ।
कौन उछारे रूखा राई रे।।
गोड़ उछारे देव धरती पाताल रे।
बैगा उछारे रूखा राई रे।।[9]

(किसने धरती और पताल को निकाला है और किसने खाने का सामान और राई निकाला है। गोंड़ जनजाति के लोगों ने धरती पाताल निकाला है और बैगाओं ने खाने पीने का सामान और राई निकाला है)

सैला गीतों में बैगा जनजाति पहले धरती, वनस्पति व पर्वत की वंदना तो करते हैं इसके साथ ही साथ वे अनेक देवी-देवता का आह्वान भी करते हैं-

तैनक ना रे मोर नाना जाय
अन्नदेव , धनदेव, ठाकुरदेव, चल बुढ़ादेव
वसुकि कन्या, अम्बर बेल, जन मोला लेथई
मोर बलदेव, अन्नदेव ,ठाकुरदेव,
चल बुढ़ादेव, वसुकन्या, अम्बरबेल
तरै ना को नाना रे नाना रे
कौन-कौन देवतान ही सेवा, खैरी माता ना सेवा
ठाकुर देवता ना सेवा
खीला मुहया ना सेवा
तरै ना के नाना रे नानी,
शीतला माई ना सेवा
पटेल बाबा ना सेवा
हरदू लाल न सेवा।।[10]

(इस गीत में खेत माई , ठाकुरदेव शीतला माई, गाँव के पटेल, हरदौल जू वासुकि कन्या, बूढ़ादेव, अमरबेल अन्नदेव, धनदेव आदि सभी का आह्वान किया गया है)

बैगा जनजाति प्रकृति पुत्र होने के कारण अपने आप को इस धरती को सँवारने

वाले मानते हैं। उनके गीतों में यह भाव झलकता है-

कारी धराती दैया पीरी धराती रे।
धराती ला कौन सिंगारी दैया।।
धराती ला कौन सिंगारी।
कारी धराती दैया पीरी धराती रे।।
धराती ला बैगा सॅवारे दैया।।[11]

(काली मिट्टी वाली, धरती पीली मिट्टी वाली धरती को किसने संवारा है। काली मिट्टी वाली धरती और पीली मिट्टी वाली धरती को बैगा ने सँवारा है)

बैगाओं के कर्मा गीत सबसे ज्यादा चर्चित गीत है। यों कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ये गीत बैगाओं के हृदय के धड़कन है। प्रातः काल से लेकर सोने तक की क्रिया-कलापों में ये गीत सम्मिलित होते हैं। रानी के द्वारा पानी भरने का प्रसंग दृष्टव्य है-

धीरे -धीरे पानी भर लाने, रानी सागर
धीरे-धीरे रे।
अगारी ले चीखल कोदों, उबारी ले पानी,
ते रानी उझेल पानी,
मार लानी मछरी।।[12]

(हे रानी सागर पर पानी भरने धीरे-धीरे जाना क्योंकि आगे कीचड़ है और पीने योग्य पानी केवल छोटी सी तलैया में है। हे रानी पानी भरने के बाद पानी उलीचकर वहाँ से मछली भी मारकर लेती आना)

बैगा गीतों में माँ शारदा (सरस्वती) की वंदना की जाती है। बैगा लोगों की मान्यता है कि गीत संगीत नृत्य की प्राप्ति माँ शारदा की कृपादृष्टि से प्राप्त होती है। देवी शारदा की वंदना करते हुए कहते हैं -

पहली पवार तोला गावय देवी शारदा पहली पंवार हुई रे
जरिया के जड़ी बुटी छिन्दी छितवार ओ हो हुई
खरमा के बैरो बेताल देवी के
शारदा पहली पंवार हुई रें।।[13]

(हे! देवी शारदा सबसे पहले तुझे प्रणाम। जड़ी बूटियॉ, जरिया छिन्द सभी बेताल देवी को अर्पण करते है)

बैंगा गीतो में पति और पत्नी के प्रेम का भी सुन्दर वर्णन देखने को मिलता है। पति के द्वारा पत्नी के लिए विभिन्न आभूषण गर्व से खरीदे जाते हैं। पत्नी पति के द्वारा खरीदे आभूषण को धारण कर गर्व का अनुभव करती है। वे पति का मुक्त कण्ठ से गुणगान करती हुई कहती है -

तोर जियत मोर राजा रे धनी सागर तोर।
मोर राजा हो तो चुटका लेवें।
चुटका पहिर घर जावत रे।।
मोर राजा हो तो पैरी लै तो।
पैरी पहर घर जाऊँ रे।।

मोर राजा हो तो तोड़र लै तो।
तोड़र पहर घर जाऊँ रे।।
मोर राजा हो तो फुन्दरा लै तो।
फुन्दरा पहर घर जाऊँ रे।।
तोर जियत मोर राजा रे।
धनी सागर तोर।।[14]

(पत्नी अपने पति के गुणगान करती है कि अन्त में जो भी हूँ तेरे कारण तुम्हारे रहने से मेरे पास चुटकी पैरी, तोड़र, फुन्दरा आदि श्रृंगार की सामग्री रहती है। यदि तू नहीं रहेगा तो मेरे पास कुछ भी नहीं रहेगा)

बैगा चक्र में अकाल की विभीषिका का वर्णन मिलता है। तीन चार वर्षो के अन्तराल में मानसून ठीक से आता नहीं है और सूखा पड़ जाता है। इस जनजाति की लोक कथाओं और लोकगीतों में अकाल की स्थिति का चित्रण देखने को मिलता है। करमा गीतों में अकाल की स्थिति का वर्णन दृष्टव्य है-

गरजत गनमन घटा घोर।
भँवर नागर नौ मोर।।
कोठी में अन्न नाही।
कोठा में धान। पैरा में उनकत है चोर।
भँवर नागर नौ मोर।।
आठ-काठ नौ कुंज के डोर।
राजा के बेटा गाँव गैइस कौन कुदाही चोर।
भँवर नागर सौ मोंर।।[15]

(गरज घुमड़ कर बरसात आ गई। घर की कोठी में अन्न का एक भी दाना नही हैं न ही बीज के लिए कोठार में धान, जबकि हमारे हल की रस्सी मजबूत और लम्बी है और हल भी है। मैं खेत जल्दी ही जोतकर तैयार कर लूँगा। राजा का बेटा गॉव गया है। यदि चोर आ गया तो हमारी कौन सुनेगा और चोर को कौन भगायेगा)

बैगा गीतों में माँ और बेटी के वात्सल्य का मार्मिक चित्रण भी देखने को मिलता है। बेटी की बिदाई किसी भी समाज में पीड़ादायी होती है। बैगा समाज में भी बेटी की बिदाई के क्षण अत्यन्त कारूणिक और मार्मिक होते हैं-

''इ तोरी नानी नानर नानी,
तोरी नाना रे ना, तोरी नाना रे ना।
देखे रे देखो दाई,
मैं घरई जात.......ई तोरी....... नानी।
तोरी नाना रे ना, तोरी नाना रे ना।
दारे चाम उरा दाई के,
ते भी दाते।।
बसती नई सूनी।
ई तोरी नानी नानर नानी
तोरी नाना रे ना, तोरी ना रे ना।।[16]

(हे दाई मैं अपने घर जा रही हूँ, तुमने मुझे बहुत प्यार दिया, मेरे जाने से तेरी यह बस्ती सूनी हो जायेगी, लेकिन मैं समय -समय पर तेरे घर जरूर आऊँगी)

बैगा जनजाति के गीतो में प्रेमी और प्रेमिका के प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमिका अपने प्रिय को तोता के माध्यम से संदेश देती है और गंगा स्नान के बहाने अपने प्रेमी से मिलना चाहती है-

री रीना बिली जाबो रे सुआ रे।
चल जाबो गंगा स्नान।
बिली जावो रे सुआ रे।
री रीना जाबो रे सुआ रे।।[17]

(प्रेमिका तोता के माध्यम में अपने प्रेमी को संदेश देती है कि जंगल में रहते वाले सुआ चल मेरे साथ गंगा स्नान के लिए चल। गंगा स्नान के बहाने हम एक दूसरे से मिल लेंगे)

बैगा गीतों में प्रेमिका का प्रेमी से मिलने की आतुरता और न मिलने के कारण उसके अन्तर्मन की वेदना और छटपटाहट का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। प्रेमिका तोता को संबोधित करते हुए अपनी मनोदशा का वर्णन करते हुए कहती है-

गली मा बुलाय मोर गली खोर बुलईया।
रे सुवना की मोर दरस के आस।।
दुवरा ला घेरे ससुरा है बैठे बइठे।
रे सुवना अँगना में बैठिस मोर सासु।।
उड़ि-उड़ि जाबे, लै उनला बुलइबे।
रे सुवना रतिया मिलन के आस।।
पिंजरा मा रहि रहि मन घबरावय।
रे सुवना मन मोर राजा के पास।।[18]

(इसमें प्रेमिका तोता को संबोधित करते हुए कहती है कि हे सुआ मेरा प्रेमी गली में यहाँ, आकर बुला रहा है, उसे मेरी सूरत देखना है, परन्तु दरवाजे पर ससुर जी बैठे है और आँगन में मेरी सास। हे सुआ तू उड़कर जाओ और उसे संदेश दो कि आज रात उनसे मिलने की इच्छा है। मैं यहाँ घर में कैद हूँ। मेरा मन घबरा रहा है। मेरा मन मेरे प्रियतम के पास है)

इनके गीतों में प्रेमी और प्रेमिका के परिचयात्मक संवाद भी देखने को मिलता है। जब बैगा प्रेमी अपना परिचय देते हुए अपने प्रेम की बात करता है तो प्रेमिका भी कुछ शर्त रखकर प्रेम करने की बात करती है-

हाय रे माया मा आय व राम।
तोर बुलाय नई आवतें मया में आयै व राम।।
करियातों भांटा पतेल पानी हाँ पतेल पानी।।...
मैं तो डिंडोरी के रहनैया ले ले हूँ पानी।
चाँदी की मुंदरी अठन्नी भरी की।
हो अठन्नी भरी की......
जिंदगानी ला निभावै तवैह तो जानो ठीक।।

गयेन जंगल व टोरेन फूल पान हो।
तोला नई आवत कर्माझन तो देते प्राण हो।।[19]

(बैगा अपनी प्रेयसी से कहता है कि मैं डिंडोरी का रहने वाला हूँ। मैं काले भटा का भरता खाने वाला और पत्ता में पानी पीने वाला हूँ, तुम बुलाओं या न बुलाओ तुम्हारा प्यार हमें तुम्हारे पास ले आया है। तुम अठन्नी भर की वजन की चाँदी की अँगूठी को लो। तब उसकी प्रेमिका कहती है तुम जीवन भर साथ दो तो ठीक है। तुम जंगल जाकर पेज पीने के लिए पत्ते तोड़कर लाना। तुम्हें करमा नृत्य नहीं आता तो क्यों प्राण देते हो)

बैगाओं में बिलमा गीत भी गाये जाते हैं। बिलमा गीत विशेष रूप से विवाह के अवसर पर नृत्य करते हुए गाये जाते हैं। सगाई में लड़की के घर पहुँचकर लड़के वाले बिलमा गीत गाते हैं -

कौन देस के आये बरधिया।
कौन वर वरना कोई जाय।
लाली-लाली तो आये बरधिया।
प्यारी वर बरना होई जाय।[20]

समधी कौन देश से आये हैं। यहाँ किस लड़की को ब्याहने आये है। लाल और पीले कपड़े पहनकर समधी आये हैं, सभी लोग अमुक लड़की को ब्याहने आये हैं।

बैगा लोकगीतो में लोरी भी गाये जाते हैं। माँ अपने बच्चे को सुलाने के लिए लोरी सुनाती है। एक बानगी दृष्टव्य है-

''एक तराय तो तो तो।
दुक्के तराय तो तो तो।
कोपट ऊपर चिरई बैठे।
मारे गदेला टूटा।
नवा टूरा भुंज खाय,
जूना टूरा टूंग रहय रून बुड़री।[21]

(एक तारा ये देखो, दूसरा तारा को देखो। कंजी (एक वृक्ष) ऊपर पक्षी बैठा है। उस शूर- वीर लड़के ने उस पक्षी को बाण से मार दिया। वह उसे भूंजकर खा रहा है। बड़ा भाई उसे देख रहा है क्योंकि उसे खाने को नहीं मिलेगा)

बैगा जनजाति के गीतों में दुर्गा, महादेव, घर की देहरी व ठाकुर देव को भी प्रणाम करने की परम्परा है। स्वस्थ व सुखद जीवन की कामना के लिए बैगा विभिन्न देवी-देवताओं की वंदना करते हैं। जैसे -

पैया मैं लागी गौरी अऊ दुर्गा के।
दूसरा माँ लागो महादेव हो।।
तीसर माँ लागों डिहे-डिहेरिन के।
चौथा माँ ठाकुर देव हो।।
सुरहिन गऊ के दुध दुहायन।
ठाकुर देव ल नहवायन हो।।
फूल फूले पडो़रा अस फल।
गौरी रानी गईन होशियार हो।।[22]

सर्वप्रथम गौरी और दुर्गा के चरण में स्पर्श करता हूँ। दूसरी बार शंकर भगवान को, तीसरी बार मैं घर की देहरी को नमन करता हूँ और चौथी बार मैं ठाकुर देव को प्रणाम करता हूँ। ठाकुर देव को नहलाने के लिए सुरहिन गाय का दूध दुहा है। एक तरफ गौरी और दुर्गा है तो दूसरी तरफ ठाकुर देव। अब गौरी रानी होशियार हो गयी है। पड़ोरा के फल और फल उन्हें अर्पित करता हूँ।

अतः कहा जा सकता है कि बैगा जनजाति की विशिष्ट सभ्यता, संस्कृति व लोक साहित्य है। आज भी वे लोग आधुनिकता से दूर सुदूर जंगल में प्रकृति के सानिध्य में रहकर अपनी संस्कृति, परम्पराओं और मान्यताओं को संजोये हुए नृत्य, गीत और संगीत को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर जीवन जी रहे हैं। उनके लोकगीतों में जीवन की वेदना, कसक, उल्लास, अन्तर्मन की पीड़ा, देवी-देवता के प्रति अनन्य प्रेम भाव, जंगल जीवन का वर्णन बखूबी से हुआ है। उनके लोकगीतों में प्रेम गीत फागगीत, बिलमा गीत, करमा गीत, सैला गीत, विवाह गीत, लोरी गीत आदि का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. सं. कसार, जमुना प्रसाद : छत्तीसगढ़ी गीत लोक कंठ का कलकल निनाद, श्री प्रकाशन, ए-14 दुर्ग (छ.ग.)
2. साहू, बिहारी लाल (2003) : छत्तीसगढ़ भाषा और लोक साहित्य, भावना प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 98
3. शर्मा, टी. डी. (2012): बैगा, छत्तीसगढ़, राज्य हिंन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर।
4. वही, पृ. 17, 18
5. वही, पृ. 51
6. श्रीवास्तवः महेश (2014): छत्तीसगढ़ की बैगा आदिम जाति की सामाजिक व आर्थिक दशा,वैभव प्रकाशन रायपुर (छ.ग.) पृ. 59-60)
7. शर्मा, टी. डी. (2012) : बैगा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंन्दी ग्रंथ अकादमी रायपुर,पृ. 53
8 चौरसिया, विजय (2014): प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 81
9. शर्मा, टी. डी. (2012) : बैगा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंन्दी ग्रंथ अकादमी रायपुर, पृ. 82
10. वही, पृ. 90
11. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 84
12. शर्मा, टी. डी. (2012) : बैगा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंन्दी ग्रंथ अकादमी रायपुर, पृ. 54
13. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 88,89
14. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 90,91
15. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण,पृ. 88,
16. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 99,100
17. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 104

18. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 93
19. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 92
20. शर्मा, टी. डी. (2012) : बैगा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी रायपुर, पृ. 54,55
21. शर्मा, टी. डी. (2012) : बैगा, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी रायपुर, पृ. 56
22. चौरसिया, विजय (2004) : प्रकृति पुत्र बैगा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल मध्यप्रदेश प्रथम संस्करण, पृ. 93, 94

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

भारत में प्रजननता निर्धारण के घटकों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

* नाहिद परवीन

सारांश– *भारत जैसे विकासशील देश के सामाजिक–आर्थिक विकास में जनसंख्या एक महत्वपूर्ण अवरोध बनी हुई है। यहाँ जनसंख्या में अनवरत् वृद्धि हो रही है। पिछली जनगणना 2011 के अन्तिम आँकड़ों के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,21,05,69, 573 व्यक्ति हैं जिसमें से कुल ग्रामीण जनसंख्या 83,34,63,448 (63.8%) है और कुल शहरी जनसंख्या 37,71,06,125 (31.2%) है। यद्यपि जनसंख्या वृद्धि रोकने के प्रयास जारी हैं क्योंकि जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान स्थिति चिन्ता का विषय बनी है। इसको स्थिर करने के लिये* TFR (Total Fertility Rate) *दर प्रति महिला 2.1 होने की आवश्यकता है। हालांकि अगले 10 सालों में देश की प्रजनन दर में गिरावट आई है। यह वर्ष 2005 में 2.1) फीसदी थी जो कि वर्ष 2008 में 2. 6 फीसदी पर आ गयी है। नवीनतम जारी आँकड़ों के अनुसार भारत की सन् 2016 में प्रजनन दर 2.2 रही है। अधिकांश विकसित देशों में यह प्रजनन दर 2.1 है। यदि देश का* TFR*दर 2.1 तक पहुंचाना है तो उत्तर के राज्यों का* TFR *2 या 2 से कम तक लाना आवश्यक है क्योंकि भविष्य में भारत की आबादी का आकार काफी हद तक अत्यधिक जनसंख्या वाले उत्तरी राज्यों में प्रजनन गिरावट पर निर्भर करेगा।*

मुख्य शब्द– प्रजनन दर, प्रजनन क्षमता, टी.एफ.आर., जन्मदर।

''किसी भी व्यक्ति के जीवन में माता या पिता बनने से महत्वपूर्ण कोई घटना नहीं हो सकती है तथा किसी भी समाज के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये अपनी प्रजननता को पर्याप्त बनाये रखने से महत्वपूर्ण और कोई बात नहीं हो सकती है।'' (राइडर, 1969, 400) भारत के ग्रामीण क्षेत्र की TFR 2.5 है, जबकि शहरी क्षेत्रों की 1.8, जो ब्रिटेन एवं अमेरिका की दर से थोड़ा ही कम है। चूंकि भारत का शहरीकरण तेजी से हो रहा है, इसलिए कुल TFR दर में अगले 20 वर्षो में तेजी से गिरावट आयेगी।

प्रजननता का आशय– प्रजननता का आशय उतना सरल नहीं है, जितना कि ऊपरी तौर पर प्रतीत होता है। प्रजननता का अभिप्राय किसी स्त्री या उनके समूह के द्वारा किसी समयावधि में कुल सजीव जन्में बच्चों की वास्तविक संख्या से है। यदि कभी भी किसी स्त्री ने बच्चे को जन्म दिया हो तो वह प्रजनकीय कहलायेगी। प्रजननता की माप बच्चों की संख्या से होती है अथवा एक दी हुई अवधि पर जीवित जन्में बच्चों की बारम्बरता ही

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी) संत गुरू घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला-धमतरी (छ.ग.)

प्रजननता की माप है।

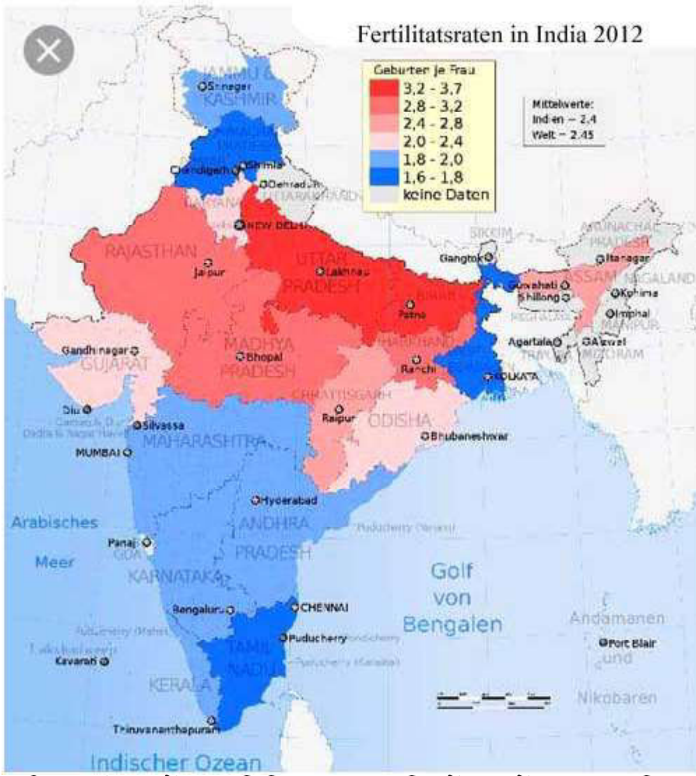

''किसी जनसंख्या में एक विशिष्ट कालावधि में बच्चों का जन्म किस आवृत्ति से होता है। यह प्रजननता का द्योतक है। प्रजनन क्षमता वास्तविक निष्पादन की ओर संकेत करता है, चाहे वह व्यवक्ति अथवा समूह पर लागू किया गया हो, प्रजनन का जीवित जन्में बच्चों की संख्या के रूप में माप किया जाता है।

प्रजननता-दर का सूत्र निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

$$\text{प्रजननता दर} = \frac{\text{15–49 आयु वर्ग की स्त्रियों से जीवित जन्म बच्चों की संख्या}}{\text{15–49 आयु वर्ग की स्त्रियों की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

जब प्रजननता दर प्रति स्त्री देखी जाती है, तो उसे जनसंख्या शास्त्र के अन्तर्गत कुल प्रजननता-दर की संज्ञा दी जाती है। यदि भारत की कुल प्रजननता-दर 3 पायी जाती है, तो इसका स्पष्ट अर्थ यह होता है कि एक भारतीय महिला अपने पूरे जीवनकाल में 3 बच्चे पैदा करती है।''

अनेक विद्वानों ने प्रजननता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं-

जार्ज बर्कले के अनुसार- ''प्रजननता की आधारभूत अवधारणा एक जनसंख्या की अल्पवधि का वह वास्तविक सार है जो वास्तव में होने वाले सजीव शिशु जन्मों की संख्या पर अवलम्बित है।''

थोम्पसन एवं लेविस के शब्दों में- ''सामान्यत: प्रजननता शब्द का प्रयोग किसी स्त्री या

उनके समूह की वास्तविक पुनरूत्पादन क्षमता को प्रदर्शित करने के लिये किया जाता हैं अशोधित जन्मदर प्रजननता की सर्वोत्तम माप है।''

बर्नार्ड बैजामिन के अनुसार- ''प्रजननता उस दर के माप को कहते हैं जिससे कोई जनसंख्या जन्म द्वारा अभी संख्या में वृद्धि करती है। सामान्यतः जनसंख्या के किसी वर्ग से कुल जीवित प्रसवों को सम्बन्धित कर यह दर निकाल ली जाती हैं यह वर्ग विवाहित दम्पत्तियों की संख्या अथवा पुनरूत्पादन आयु वर्ग की स्त्रियों की संख्या हो सकती है। सम्भावित प्रजननता का उपयुक्त मापदण्ड पुनरूत्पादन आयु वर्ग की स्त्रियों की संख्या ही है।''

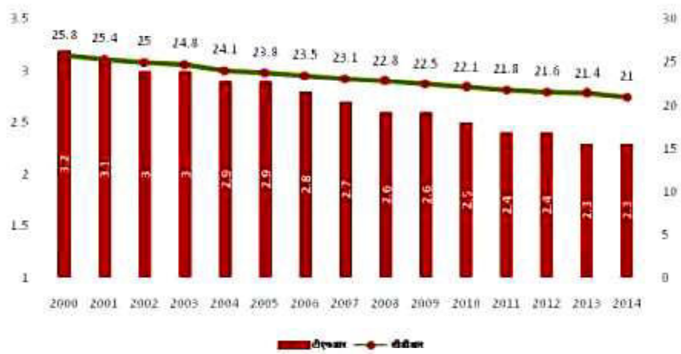

टीएफआर और सीबीआर का रुझान

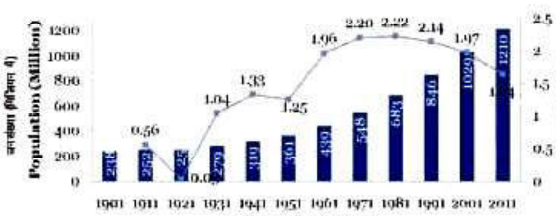

जनसंख्या वृद्धि और वृद्धि दर

प्रजननता के अध्ययन का महत्व– प्रजननशीलता का विषय व्यक्ति के लिये सदा से ही महत्वपूर्ण रहा है। बी0एस0 राइडर ने कहा है कि किसी भी स्त्री के जीवन में माँ बनने से बड़ी कोई महत्वपूर्ण घटना नहीं हो सकती तथा किसी भी समाज को जीवित बनाये रखने के लिये अपनी प्रजननशीलता को पर्याप्त बनाये रखने से अधिक आवश्यक कोई और बात नहीं हो सकती है। प्राचीनकाल से ही वंश परम्परा को कायम रखने के लिये यज्ञ आदि क्रियाओं के माध्यम से स्त्रियों में प्रजननशीलता का प्रचार किया जाता था। इन क्रियाओं की विफलता पर अनेक सामाजिक रीति-रिवाजों में इस प्रकार अल्पकालिक वांछित परिवर्तन किया जाता रहा है ताकि वंश चलता रहे यथा विधवा विवाह, बहुपत्नी प्रथा आदि। इन सबका उद्देश्य परिवार बनाये रखना था।

हाउजर एवं डंकन की धारणा है कि इस (जन्म) घटना का व्यक्ति तथा परिवार के लिये इतना महत्व है कि सम्पूर्ण पारिवारिक व्यवस्था तथा व्यक्ति की भूमिका बच्चे के जन्म के साथ ही परिवर्तित हो जाती है। समाज भी इससे प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता है। प्रजननता सम्बन्धी ज्ञान उन सभी विषयों के अध्ययन में सहायक होता है

जिनका सम्बन्ध 'मानव' से है। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, जैविकीय विज्ञान, आनुवांशिकी, आयुर्विज्ञान सभी इन सूचनाओं का लाभ उठाते हैं।

प्रजनन जीवन का एक महान सत्य है। प्राचीन काल से ही प्रजननशीलता की दर के बारे में जानने की जिज्ञासा लोगों में रही है। आज प्रत्येक देश तीव्र गति से विकास करने अथवा स्थिरता के साथ विकास की दर को बनाये रखकर जन कल्याण में अधिकाधिक वृद्धि के लिये प्रयत्नशील है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रत्येक देश अपने देश की जनांकिकी गतिविधियों की जानकारी चाहता है ताकि उसमें समय-समय पर वांछित परिवर्तन लाया जा सके। जन्मदर केवल जैविकीय तत्वों से ही प्रभावित नहीं होती है। बल्कि समाज में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक परम्पराओं से भी प्रभावित होते हैं। प्रजननशीलता की दरें जन्म सम्बन्धी आँकड़ों से प्रभावित होती हैं। प्रजनन दर निर्धारण में आर्थिक सामाजिक घटकों का महत्वपूर्ण स्थान है। इस दृष्टि से ''भारत में प्रजननता निर्धारण के घटकों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'' इस विषय में नये तथ्य प्राप्ति हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण हो सकता है।

प्रजनन दर की वर्तमान प्रवृत्ति–

* सरकार की सामाजिक नीति का जोर अब जनसंख्या नियन्त्रण की बजाय बाल मृत्यु दर पर होना चाहिये।
* पेंशन नीति पर भी विचार किया जाना चाहिये, क्योंकि भविष्य में युवा जनसंख्या में वृद्धि की तुलना में वृद्धों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होगी।
* जनसंख्या के इस नये स्वरूप के अनुसार शिक्षा, स्वास्थ्य तथा अन्य सेवाओं का निर्धारण किया जाना चाहिये।

हालांकि जनसंख्या के स्वरूप में परिवर्तन धीरे-धीरे ही होगा, लेकिन एक स्वरूप गृहण कर लेने के बाद यह अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। इसका देश पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। चीन और जापान इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

भारत एक धर्म प्रधान देश है जहाँ सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक ढांचे में जाति व क्षेत्रगत भिन्नता दृष्टिगत होती है। अतः निःसंदेह जनसंख्या वृद्धि में विभिन्न धार्मिक समुदायों, आर्थिक स्तरों तथा क्षेत्रों का अलग-अलग योगदान संभव है। विकसित देशों में जहाँ पंजीयन की विकसित अवस्था है वहां विभिन्न धार्मिक समुदायों, आर्थिक स्तरों तथा क्षेत्रों में विद्यमान प्रजनन दर का निर्धारण सम्भव है परन्तु भारत में जहाँ जन्म का पंजीकरण कम होता है। वहां प्रजनन दर का निर्धारण अपेक्षाकृत कठिन है। ऐसी स्थिति में विस्तृत तथा गहन अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

प्रजननता के अध्ययन के प्रभाव– मानव समाज के निरन्तरता को बनाये रखना प्रजनन दर पर ही निर्भर है। मरणशीलता के शाश्वत प्रभाव को निष्क्रिय करते हुये यह प्रजनन ही है जो मानव जनसंख्या की वृद्धि करता है। जनसंख्या प्रतिस्थापन की दर जनसंख्या के आकार में विस्तार या संकुचन को बताती है। जनांकिकी प्रक्रिया प्रमुख रूप से प्रजनन दर से प्रभावित है। अतः जनांकिकीय प्रक्रिया में परिवर्तन तथा उसके निर्धारकों के अध्ययन में प्रजनन दर में परिवर्तन एवं उसको निर्धारित करने वाले घटकों का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है।

प्रजननता आयु, विवाह की आयु, परिवार में बच्चों की संख्या आदि से प्रभावित

होती है, उसी प्रकार विभिन्न सामाजिक-आर्थिक रूप सांस्कृतिक कारक भी प्रजननता को प्रभावित करते हैं। जैसे- आय, धर्म, जाति, शिक्षा, व्यवसाय आदि। ''ओकून'' का मत है कि व्यक्ति अपने उपलब्ध आय के स्तर के आधार पर प्रजनित संतानों की संख्या का निर्धारण करता है। वहीं एक ओर ''पी0एच0 रेड्डी'' ने तीन तथ्य रखे। पहला मुस्लिम जनसंख्या हिन्दू जनसंख्या की तुलना में तेजी से बढ़ी है। दूसरा, प्रजननता की दर मुस्लिमों में हिन्दुओं की तुलना में अधिक है और अन्तिम आधुनिक नियन्त्रक उपायों का प्रयोग मुस्लिम समुदाय में कम है। वास्तव में, परिवार में बच्चों की संख्या का निर्धारण परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। यह सच है कि बच्चे का जन्म एक जैविक प्रक्रिया है परन्तु प्रत्येक समाज में बच्चे का जन्म सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के अनुरूप होता है। यह प्रभाव प्रथाओं, परम्पराओं, मूल्यों एवं नैतिक नियमों से सम्बन्धित होता है।

प्रजनन जीवन का एक महान सत्य है। श्रम शक्ति की पूर्ति एवं जन समुदाय के कल्याण में कमी न होने पाये इसलिये सभ्यता, बौद्धिक एवं आर्थिक विकास के साथ-साथ जीवन की दोनों अनिवार्य घटनाओं (जन्म एवं मृत्यु) में इस तरह सन्तुलन बनाये रखा जाये कि समाज का कल्याण अधिकतम हो जाये तथा देश एवं समाज प्रगति के उच्च शिखर पर पहुंच सके।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तावित अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ''भारत में प्रजननता निर्धारण के घटकों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'' करना है। शोध की आवश्यकता को पूरा करते हुये इसके निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं।

प्रस्तावित अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. भारत में प्रजननता स्तर का आंकलन करना।
2. भारत में जनांकिकी घटकों की स्थिति का अध्ययन करना।
3. प्रजननता को प्रभावित करने वाले जनांकिकी आर्थिक एवं सामाजिक कारकों का विश्लेषण करना।
4. विभिन्न सामाजिक और आर्थिक समुदायों के प्रजननता स्तर में विभिन्नता का विश्लेषण करना।
5. भारत में प्रजननता निर्धारण के घटकों का गहन अध्ययन कर आवश्यक संस्तुतियां एवं सुझाव प्रस्ताव करना।
6. परिवार कल्याण कार्यक्रम के क्रियान्वयन एवं प्रभाव का विवेचन।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएँ- किसी भी अध्ययन के लिये आर्थिक एवं सामाजिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। प्रारम्भिक ज्ञान एवं अनुभव के आधार पर शोधार्थी अपने अध्ययन विषय के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित पक्षों का एक सामान्य अनुमान लगा लेता है। इस अनुमान के आधार पर शोधार्थी को एक नयी दिशा मिलती है जिससे उसका ध्यान विषय पर ही केन्द्रित रहता है।

गुड् तथा स्केट्स के अनुसार- ''उपकल्पना एक अनुमान है, जिसे अन्तिम अथवा अस्थायी रूप में किसी निरीक्षित तथ्य अथवा दशाओं की व्याख्या हेतु स्वीकार किया गया हो एवं जिससे अन्वेषक को आगे पथ प्रदर्शन प्राप्त होता है। '' संक्षेप में अनुसंधान प्रारम्भ करने से पहले अनुसंधान के कारणों और परिणामों के बारे में हम जो एक निश्चित

अवधारणा लेते हैं उसे ही उपकल्पना कहते हैं।

अतः शोधार्थी ने अपने अध्ययन विषय से सम्बन्धित निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया है-

1. प्रजननता जनांकिकी, सामाजिक, आर्थिक आदि अनेक कारकों से प्रभावित होती है।
2. प्रतिव्यक्ति आय एवं प्रजनन दर में विपरीत सम्बन्ध होता है।
3. विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समुदायों के प्रजननता स्तर में भिन्नता पायी जाती है।
4. अल्प आयु में विवाह प्रजननता को बढ़ाता है।
5. शिशु एवं बाल मर्त्यता दर और प्रजननता के मध्य धनात्मक सम्बन्ध होता है।
6. आर्थिक स्तर में वृद्धि के साथ प्रजननता में कमी होती है।

अध्ययन का निष्कर्ष- भारत का हर कोना, हर नुक्कड़ ज्यादा आबादी का जीता जागता उदाहरण है। चाहे आप कहीं भी हों रेलवे स्टेशन, सड़क, अस्पताल, शॉपिंग माल या फिर कोई सामाजिक या धार्मिक समारोह आप सब जगहों को भीड़ से भरा देख सकते हैं। इससे साफ पता चलता है कि देश में जनसंख्या कितनी ज्यादा हो गयी है। लगभग 2050 तक भारत विश्व का सबसे अधिक आबादी वाला देश बनने की राह पर होगा। 2011 में देश की आबादी 12 विलियन यानि 120 करोड़ थी जबकि 2050 तक यह बढ़कर 1.6 बिलियन यानि 160 करोड़ तक पहुंचने की संभावना है। स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा जारी की गयी परिवार और स्वास्थ्य सांख्यिकीय 2015 के अनुसार 42 वर्षों में भारत के कुल प्रजनन दर में (टी.एफ.आर.) बच्चे पैदा करने की उम्र में एक महिला द्वारा जन्म दिये गये औसत बच्चे 55 फीसदी की कमी आंकी गयी है। पूर्व में 1971 में प्रजनन दर 5.2 से गिरकर 2013 में 2.3 हो गयी थी।

टी.एफ.आर. में गिरावट घटती शिशु मृत्यु दर (आई.एम.आर.)- प्रति 1000 जन्मों पर वैसे बच्चों की संख्या जिनकी मृत्यु एक वर्ष से पहले होती है- से प्रभावित है जो 1971 और 2013 के बीच 129 से गिरकर 40 हुई है। 2000 की राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का उद्देश्य वर्ष 2010 तक टी.एफ.आर. कम कर 2.1 तक करना था। जबकि इस लक्ष्य को हासिल नहीं किया गया है। भारत में प्रजनन क्षमता में गिरावट के पीछे मुख्य कारण शिशु मृत्यु दर में गिरावट होना है।

यूनिसेफ इण्डिया की प्रतिनिधि यासमिन अली हक ने कहा है कि शिशु मृत्यु दर के मामले में भारत में उल्लेखनीय सुधार हो रहा है। नवजात शिशु मृत्यु दर 2016 में 8.67 लाख के मुकाबले कम होकर 2017 में 8.02 लाख हो गयी। 2016 में भारत में शिशु मृत्यु दर 44 शिशु प्रति 1,000 थी। यदि लैंगिक आधार पर शिशु मृत्यु दर की बात करें, तो 2017 में लड़कों में यह 1000 बच्चे पर 30 थी, जबकि लड़कियों में यह प्रति 1000 बच्चियों पर 40 थी।

केन्द्र सरकार के अनुसार देश में कुल प्रजनन दर में गिरावट आई है। यह वर्ष 2008 में 206 फीसदी थी जो 2016 में औसत प्रजनन दर 2.2 हो गयी है। गिरती हुई प्रजनन दर का अर्थ यह नहीं है कि भारत की जनसंख्या में वृद्धि होनी तुरन्त रूक जायेगी। परन्तु भारत अब जनसांख्यिकीय लाभांश के चरण में प्रवेश कर चुका है जिसके लगभग 2045 तक जारी रहने की आशा है तब तक भारत जनसंख्या वृद्धि की स्थिर दर को प्राप्त

कर लेगा।

शोध अध्ययन के उददेश्य ''भारत में प्रजननता निर्धारण के घटकों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'' कर इससे सम्बन्धित समस्याओं को दूर करने हेतु आवश्यक एवं उपयोगी सुझाव प्रस्तुत करना है। निश्चित रूप से यह अध्ययन प्रजननता के अध्ययन के महत्व को प्रतिपादित करने में महत्वपूर्ण योगदान करेगा। प्रस्तुत अध्ययन से अध्ययन क्षेत्र में योगदान का ज्ञान संभव होगा तथा अध्ययन द्वारा सुझाये गये निष्कर्ष एवं उपाय सहायक सिद्ध होगें। साथ ही भावी शोधार्थियों के लिये यह एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करेगा जो इस क्षेत्र में कार्य करना चाहते हैं, जिससे कि वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगें।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. शर्मा, ए0के0, फर्टिलिटी एण्ड फेमिली प्लानिंग इन रूरल एरिया, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2. अग्रवाल, एस0एन, पापुलेशन, नेशनल बुक ट्रस्ट न्यू दिल्ली।
3. सिंह, जे0पी0, समाज विज्ञान विश्व कोष, पृष्ठ सं0 240
4. भारत की जनगणना, 2011
5. डॉ. हरीशचन्द्र शर्मा (2016), भारतीय अर्थव्यवस्था
6. डॉ. मिश्रा, जे0पी0 जनांकिकी, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा।
7. नेशनल फेमिली हेल्थ सर्वे
8. अर्थव्यवस्था परिदृश्य
9. ''दि इकानॉमिक टाइम्स'' संजीव सान्याल के प्रकाशित हनी, बी.आर. श्रिंकिंग'' शीर्षक से।
10. नवोदय टाइम्स
11. http://www.bharat.gov.in
12. http://www.books.google.co.in>books.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

छत्तीसगढ़ की लोक साहित्य (लोकगीत) परम्परा

* संगीता रंगारी
** एस.के. ठाकुर, *** अभिनेष सुराना

सारांश– *प्रस्तुत शोध पत्र में छत्तीसगढ़ की लोक साहित्य परम्परा (लोकगीत) की अभिव्यक्ति को लिखा गया है। परम्पराएॅ स्थिर नही होती है बल्कि अनवरत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलती रहती है। मौखिक परम्परा अर्थात लोकगीत अपने आप में विभिन्न भावों एवं रसों को समेटे हुए है जिसमें सौम्यता, शीतलता एवं शक्ति संचरण होता रहता है।*

मुख्य शब्द– लोकगीत, परम्परा, सामाजिक व्यवस्था।

परम्परा जीवन में निर्वाह करने वाली वह अनुभूति है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी निरंतर चलती रहती है। छत्तीसगढ़ी मौखिक साहित्य परम्परा भी वही है। मौखिक साहित्य परम्परा में देखा जाय तो छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य के अंतर्गत लोकगीत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लोकगीत मौखिक परम्परा पर आधारित है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी निरंतर आगे बढ़ती रहती है। लोकगीतों में प्राकृतिक रस विद्यमान है जिसमें विविध खुशबू, सौम्यता, शीतलता एवं अपार शक्ति का संचरण होता रहता है।

इन लोकगीतों में मानव परम्पराएँ विविध रूपों में जैसे पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत, सामूहिक तथा विविध रीति-रिवाजों के प्रति आस्था के भाव परिलक्षित होते है।

लोकगीतों के संबंध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का अभिमत है- "ईट-पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझे तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्रामगीत का महत्व मोहन जोदड़ो से भी अधिक है। मोहन जोदड़ो के भग्न ग्राम गीत भाष्य का काम दे सकते है।"[1]

मौखिक परम्परा से चलने वाले साहित्य (लोकगीत) जीवन में रस घोलने का कार्य करते है। मौखिक गीतों (लोकगीत) की रचना अनन्तकाल से हो रही है। लोकगीत मौखिक परम्परा के माध्यम से जनमानस को विरासत में मिला है।

डॉ. दयाशंकर शुक्ल का मत है- "लोकगीत श्रम परिहार से उपजते है और मौखिक परम्परा से आगे बढ़ते चले जाते है। छत्तीसगढ़ में लोकगीत के उपजने का कारण यहाँ की

* शोधार्थी, सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), वी.रा.अ.ब.लो. शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, रामाटोला, जिला-राजनांदगाँव (छ.ग.)
** निदेशक, सहप्राध्यापक, हिन्दी, खूबचन्द्र बघेल स्नातकोत्तर महाविद्यालय भिलाई (छ.ग.)
*** सहनिर्देशक, प्राध्यापक, हिन्दी, विज्ञान महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

सामाजिक व्यवस्था है। छत्तीसगढ़ का जनमानस चाहे स्त्री हो या पुरूष, घर हो या बाहर साथ मिलकर जीवनयापन करते है। यहाँ के लोकगीत खेतों की हरियाली, वन प्रांतर की शीतलता में अठखेलियाँ करते है।"[2]

लोकगीत समस्त संसार में विद्यमान है किन्तु सर्वाधिक उपजाऊ भूमि के रूप में भारत में ज्यादातर देखा जाता है। भारत में विविध त्यौहार अन्य देशो की अपेक्षा ज्यादा मनाया जाता है। ये उत्सव भारतीय जनमानस में नवीन उत्साह एवं ऊर्जा का संचार करते है। छत्तीसगढ़ में भी विभिन्न त्यौहार, उत्सव, पर्व बड़े ही उत्साह के साथ मनाया जाता है। होली का त्यौहार यहाँ हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इस अवसर पर गाया जाने वाला फाग गीत निम्न रूप में प्रस्तुत है जिसमें राधा, कृष्ण और गोपियों के बीच रंग गुलाल खेलने की बानगी में संयोग शृंगार के भाव परिलक्षित होते है-

बजे नंगारा दसो जोड़ी दा राधा किसन खेलय होरी।
दूनो हाथ धरे पिचकारी धरे पिचकारी धरे पिचकारी।
रंग गुलाल सबै बोरी दा राधा किसन खेलय होरी।
दुधवा दहिया बचे न पाइस उ दू ल रंग म दिहिन छोरी।
दा राधा किसन खेलय होरी.............
सब सखियन मिल पकड़ किसन ल ओ ही रंग म दिहिन बोरी।
तब राधा मुस्काय कहिन हाँ आओ खेलिहाँ तुम होरी।
राधा किसन खेलय होरी.............[3]

यहाँ के लोकगीत में सुवागीत की अपनी अलग पहचान है। नारी हृदय की करूणा प्रस्तुत लोकगीत में झलकती है-

पइयाँ मय लागव चंदा सुरूज के रे सुवना,
तिरिया जनम झनि देय।
तिरिया जनम दुखे-दुख मँ बीतय रे सुवना,
दुख के हावय खदान।
कपड़ा के दाग मल-मल छोड़ाय रे सुवना,
नारी के दाग रहि जाय।
तिरिया के न तो घर अऊ दुवारे रे सुवना,
न तो ओकर खेत खारे।
तिरिया के घर ऊँही दिन जावव रे सुवना,
जेन घर माटी गिराय।[4]

विवाह के अवसर पर छत्तीसगढ़ी लोकगीत धूम मचाते है। विवाह में सम्पन्न होने वाले विविध नेग (रस्मो), रिवाज अपने आप अनूठे होते है। विवाह हो और हंसी ठिठोली न हो तो विवाह विवाह जैसे नही लगता है। विवाह के दौरान सुवासा के साथ हास परिहास करती हुई उनकी सालियॉ कहती है -

'तोला माटी खने ल नई आवय, गा माटी खने ल
मरभुखहा सुवास तै खाले बतासा,
अपन बहिनी ल नान, अऊ वजादे निसान।
तोर बहिनी तोला मन नई लावै गा ....

तोला साबर धरे नई आवै गा, साबर धरे
उसनिन्दहा सुवासा, तोर कोन करे आसा
अपन फूफू ला लान, तोर बसे हे परान
तोर फूफू दाई तोला मन लावै गा ....[5]

सुवासा सालियो की केवल बात ही नही सुनता बल्कि प्रत्युत्तर सालियो को जवाब भी देता है -

तोला माटी हेरे ला नई आवै वो माटी हेरे ला
परे छेकता सुवासिन, बने माटी ल बिन
अपन बाई ल लान, तोर बसे हे परान
तोर फूफा भाई तोला मन लखै वो.........[6]

विवाह संस्कार में विदाई अंतिम पड़ाव के रूप में होता है। कन्या की विदाई में माँ की अथाह पीड़ा भाई बहन का अटूट स्नेह, पिता के हृदय की प्रेम कातरता अभिव्यंजित होती है। कारूणिक बेला में माता-पिता एवं भाई की व्यथा लोकगीत में इस प्रकार अभिव्यक्त है -

'दाई के रोये नदिया बहत हे,
ददा के रोये तलाव।
भाई के रोये डबरा भरत हे,
भौजी के नयन कठोरे ' ...[7]

विदाई के अवसर पर बहन गला पकड़कर रो रही है और भाई विलाप कर रहा है वही पिता अपना मुँह ढांककर रूदन कर रहे है और माँ बोमफार कर रो रही है -

कनिहा पोटार के बहिनी रोवय,
गर पोटार के भाई।
ददा बपुरा मुँह छपकके,
बोम फार के दाई।[8]

"विवाह गीतों में बेटी और ममतामयी माँ का प्रेम उमड़ता है। माँ एवं बेटी के बीच प्रेम की शुरूआत विवाह के गीतों से ही होती है"[9]

अपने मायके से ससुराल जाती हुई कन्या के लिए परिवार को छोड़कर जाना अत्यन्त कष्टप्रद है। वह अपने परिजनो से लिपटकर रोती है। रोते हुए जिस करूण शृंगार की धारा प्रवाहित होती है वह केवल हृदय विदारक ही नही बल्कि लोक साहित्य की अनमोल धरोहर भी है।

उपरोक्त गीत में करूण रस की प्रधानता दिखायी पड़ती है। नारी का जीवन कई कष्टों से भरा है यह भाव गीत में अभिव्यक्त हुआ है।

मौखिक परम्परा से चलित 'जंवारा' गीत देवी आराधना का अनुगायन है जिसमें देवी के यश एवं कीर्ति का बखान प्रायः होता है। यही कारण है कि इसे 'जसगीत' भी कहा जाता है। छत्तीसगढ़ का जनमानस आध्यात्मिकता में विश्वास रखता है। इस अंचल में चैत्र एवं कुंवार के महीने में पूरे नौ दिनो तक देवी की उपासना कर उसकी शक्ति की महिमा एवं स्तुति का गान किया जाता है-

हो मैया फूल गजरा

गूंथे हो मालिन मैया फूल गजरा
काहेन फूल के अजरा गजरा काहेन फूल के हार
काहेन फूल के माथ मुकुटिया, सोलह हो सिंगार
मैया फूल गजरा गुथे हो मालिन.....

देवी आराधना के अतंर्गत जंवारा गीत में प्रकृति प्रदत्त उपहारो से देवी को प्रसन्न करने की अभ्यर्थना के साथ लोक का प्रकृति प्रेम से साक्षात्कार किया जा सकता है-

लिपे पोते कुंज निवारी, झोफा झोफा फरे सुपारी
फर लागे नरियर के बारी, केकती केंवरा
दाख दारूहन बेला चमेली
मोंगरा ल हार बन वौंक हो कहर लेले आरती हो मां
सुक बोल सुख डारी-डारी बोले बोली कोयल कारी
बात करत गुंजत भुवन, चलत पांव बाजत घन घन
बइठे बुढ़ी माता सिहासन बघवा के करे सवारी
हो कहर ले ले आरती हो मां।[10]

उपरोक्त देवी गीत में शांत रस की प्रतीत होती है।

छत्तीसगढ़ी लोरी गीत वात्सल्य रस से परिपूर्ण है। लोरी गीत प्रायः छोटे नन्ने-मुन्ने बच्चों को सुलाने के लिए माँ, दादी, नानी या अन्य बड़ो द्वारा गाया जाता है-

निंदिया तोला आये रे, निंदिया तोला आवे रे
सूत जाबे सुति जाबे, बाबू सुति जाबे रे
चंदा मामा आवनी, दूध भात खावनी
बाबू के मुँह म गप्प ले, नोनी के मुँह म गप्प ले

शोध प्रविधि– प्रस्तुत शोध पत्र में सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग किया गया है एवं पुस्तकालयीन पद्धति का भी प्रयोग किया गया।

शोध का उद्देश्य– छत्तीसगढ़ी लोकसाहित्य पर विहंगम दृष्टि डालते हुए लोकसाहित्य (लोकगीत) परम्परा का अध्ययन करना है।

निष्कर्षत–

लोकगीतों के माध्यम से समाज विभिन्न कुंठाओं से मुक्त होता है। साथ ही साथ लोकगीतों के सृजन से मन में आत्मिक शांति की अनुभूति होती है। छत्तीसगढ़ में मौखिक साहित्य परम्परा (लोकगीतों) का निर्वहन आज पर्यन्ततक निरंतर, अविरल नदी के प्रवाह की भाँति प्रवाहित हो रहे है और अपनी उपस्थिति बरकरार रखने में सफल हुए है। ये लोकगीत विविध भावों के अन्तःकरण की प्रेरणा से जन्म लेते है और सम्पूर्ण वातावरण को रस से सरोबार कर छत्तीसगढ़ के जनमानस को आनन्द विभोर कर आत्मिक सुख प्रदान करते है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. छत्तीसगढ़ी, लोकगीतों का परिचय, श्यामाचरण दुबे (भूमिका)
2. छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य परम्परा और प्रयोग डॉ. विनय कुमार पाठक, छत्तीसगढ़ की अस्मिता पृष्ठ-178

3. छत्तीसगढ़ी लोकगीत दशा एवं दिशा, डॉ. विवेक तिवारी, पृष्ठ-65
4. भोलाराम बनिस-पंडित श्यामालाल चतुर्वेदी, पृष्ठ-69
5. आकाशवाणी रायपुर द्वारा प्रसारित रेडियो से संकलित
6. आकाशवाणी रायपुर द्वारा प्रसारित रेडियो से संकलित
7. लोकनाट्य संदर्भ छत्तीसगढ़ - शीर्षक लोक साहित्य परम्परा और प्रयोग डॉ विनय कुमार पाठक पृष्ठ 02
8. .... वही .... पृष्ठ 02
9. सापेक्ष अंक 1986 - दयाशंकर शुक्ल पृष्ठ 181
10. छत्तीसगढ़ी लोकगीत दशा एवं दिशा पृष्ठ-27

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति

(बलौदाबाजार विधानसभा क्षेत्र छ.ग.के विशेष संदर्भ मे)

* वेदवती मंडावी
** महेश्वरी पात्रे

सारांश– *प्रस्तुत शोध मे बलौदाबाजार विधानसभा क्षेत्र छत्तीसगढ़ का मूल उद्देश्य अनुसूचित जाति एवं अ.ज.जाति की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति की वर्तमान वास्तविकता का अध्ययन करना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विशाल राजकीय सहयोग से अ.जा. और अ.ज.जा. के लिए मुक्ति और बदलाव के मुख्य उपकरण के रूप मे कार्य किया है। सामाजिक व राजनीतिक चेतना तथा शिक्षण अधिगम प्रक्रियाए असमानता के इस तथ्य को दर्शाती है कि समाज मे इनका समान एकीकरण काफी कम हुआ है और ऐसी स्थिति को शीघ्र सुधारने की आवश्यकता है।*

मुख्य शब्द– सामाजिक प्रस्थिति, राजनीतिक प्रस्थिति, बदलाव, सुधार, कार्यक्रम, नीति

परिचय– इस शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति अ.ज.जा. के सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति की वर्तमान वास्तविकता ज्ञात करना है। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति दोनो ऐसे समुदाय है जिन्हे सामाजिक, ऐतिहासिक कारणो से औपचारिक शिक्षा व्यवस्था से बाहर रखा गया। पहले तो जाति के आधार पर विभाजित समाज मे सबसे निचले पायदान पर होने के कारण और दूसरा भौगोलिक अलगाव, सांस्कृतिक अन्तरो तथा मुख्य धारा से जुड़े प्रबल समुदाय ने इन्हें हाशिये पर रखा। इस प्रकार से भारतीय जनसंख्या की इन दो श्रेणियो के बीच सामाजिक, राजनीतिक और नि:शक्तता के प्रकृति के आधार पर महत्वपूर्ण अंतर है लेकिन आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक बदलाव की विषमतापरक पक्रिया के प्रभाव से उत्पन्न सामाजिक भेदभाव और राजनीतिक शोषण ने दोनो के बीच समानताओ को बढ़ा दिया है। सहभागी सहवर्ती होने के बावजूद भी दोनो ही श्रेणियां स्वयं मे जेंडर, धर्म, क्षेत्र, वर्ग इत्यादि के आधार पर बहुत सी विविधताए है और दोनो ही एकरसता से बहुत दूर है और आज इनका सामना है सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक राजनीतिक असमानता के बारीकी से जुड़ी सच्चाई से, इस बात का ध्यान रखते हुए इस आधार पर अ.जा.व अ.ज.जा. की राजनीतिक

* निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय वी.वाय.टी.कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)
** शोधार्थी, शासकीय वी.वाय.टी.कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)

जागरूकता के लिए सरकार के द्वारा किये प्रयासों और अवसरो को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले मुददो और समस्याओ की जमीनी स्थिति को संदर्भ परक अध्ययन करना है। अ.जा.व अ.ज.जा. की सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं की व्यापक समझ की आवश्यकता है। उन्हे झेत्रीय सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दोनो रूप में समझा जाये। अ.जा.व अ.ज.जा निर्धन परिवारो की श्रेणी मे आते है क्योकि उनके पास न अपनी भूमि है और ना ही उनकी अर्थव्यवस्था है।

भारत के संविधान मे सामाजिक एकता के ऐतिहासिक विकास क्रम मे अलग-अलग सिद्धांतो को एक साथ मिश्रित कर चलाने की कोशिश की गई है। इसी बुनियाद पर आधुनिक भारतीय राजनीतिक संवाद शुरू हुआ जिसके मूल रूप मे समानता थी और इसने जनतांत्रिक उदारवाद और लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना की ।

अध्ययन विषय का महत्व-

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही शासन द्वारा ग्रामीण अ.जा.व अ.ज.जा. एवं कमजोर वर्ग के लोगो को प्रगति की मुख्य धारा से जोड़ने हेतु अनेक कार्यक्रम चलाए और सामाजिक, राजनीतिक न्याय की स्थापना हेतु अनेक नीतियां निर्मित की गई।

बलौदाबाजार विधानसभा छ.ग. मे निवास करने वाली अ.जा. एवं अ.ज.जा. के रहन-सहन, आचार-व्यवहार, सामाजिक, धार्मिक सांस्कृतिक व राजनीतिक स्थिति को देखकर शोध की आवश्यकता महसूस की गई। अ.जा. एवं अ.ज.जा.समाज का अत्यधिक पिछड़ापन आरम्भ से समाज वैज्ञानिको के अध्ययन का विषय रहा है वे भी परिवर्तन की प्रक्रिया से प्रभावित हुए है। समाजशास्त्रियों और मानवशास्त्रियों के लिए उनकी स्थिति का अध्ययन विशेष महत्व रखता है। राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिये संवैधानिक प्रावधानो, केन्द्रीय, प्रान्तीय सरकारो संस्थाओं एवं संगठनों द्वारा इन अनुसूचित जाति व जनजातियों की सामाजिक व राजनितिक स्थिति को सुधारनें के लिए अनेक प्रकार से प्रयास किये गये यद्यपि अभी भी इन जातियों का विकास करना हैं तो इनमें राजनीतिक जागरूकता पैदा करनी होगी तथा राष्ट्रीय धारा से अनुसूचित जाति व जनजातियों को जोड़ना होगा। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यही है।

उद्देश्य-

1. बलौदाबाजार विधानसभा छ.ग. के अनुसूचित जातियों व जनजातियों के समूह की सामाजिक, आर्थिक दशाओं, पारिवारिक संगठन, वैवाहिक स्थिति, आवास, कृषि व्यवस्था आदि की जानकारी प्राप्त करना।
2. अनुसूचित जाति व जनजातियों के लोगों मे सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक कारक किस प्रकार प्रभावित करते हैं और
3. अनुसूचित जाति व जनजातियों की राजनीतिक बोधगम्यता, संगठन एवं सहभागिता तथा राजनीतिक मूल्य, अभिरूचि एवं मत प्रभावित को ज्ञात करना है।

अध्ययन की प्रासंगिकता-

छत्तीसगढ़ राज्य आदिवासी राज्य के नाम से जाना जाता है। इस अध्ययन क्षेत्र में अनुसूचित जाति व जनजातीय सामाजिक व राजनीतिक परिस्थिति के विस्तार के कारणों के अध्ययन से प्रभावित क्षेत्र के जनजीवन के सामाजिक व राजनीतिक परिस्थिति के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का भी अध्ययन किया गया हैं। इस अध्ययन के

माध्यम से अनुसूचित जाति व जनजातियों के सामाजिक व राजनीतिक परिस्थिति के मूल कारणों को खोजा गया है जिनका निदान आवश्यक है।

अध्ययन क्षेत्र–

बलौदाबाजार विधानसभा (छ.ग.) के अनुसूचित जाति व जनजाति के सामाजिक राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन किया गया हैं। बलौदाबाजार विधानसभा के अंतर्गत विकासखंड, ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत, जिला पंचायत है। अतः अध्ययन कि दृष्टि से सुविधानुसार बलौदाबाजार विधानसभा छ.ग. के समस्त सर्वाधिक प्रभावशाली ग्रामों को अध्ययन के लिये लिया गया है।

अध्ययन संग्रह–

बलौदाबाजार विधानसभा (छ.ग.) के समस्त अनुसूचित जाति व जनजाति के सामाजिक व राजनीतिक परिस्थिति के प्रभावित क्षेत्रों का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन इकाई– चयनित क्षेत्रिय इकाई एवं प्रभावित क्षेत्र के अनुसूचित जाति व जनजातीय परिवार है।

निदर्शन विधि–

शोध कार्य में तथ्यों के संकलन हेतु बलौदाबाजार विधानसभा (छ.ग.) अनुसूचित जाति व जनजाति के सामाजिक व राजनीतिक परिस्थिति के प्रभावित क्षेत्रों का चयन सोदेश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर किया गया है। इन चयनित क्षेत्रों में सर्वाधिक प्रभावशील ग्राम पंचायतों का चयन सोदेश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर किया गया है। चयनित क्षेत्रों में से उत्तरदाताओं का चयन सोदेश्य पूर्ण निदर्शन विधि के आधार पर किया गया है।

समंक एकत्रित करने स्त्रोत– (1) प्राथमिक समंक एवं (2) द्वितीयक समंक।

1. **प्राथमिक समंक–** प्राथमिक समंक के अंतर्गत प्राथमिक आंकड़ों का संकलन किया गया हैं जिसमें शोधार्थी ने स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर अध्ययन से संबंधित आंकड़े संकलित किया। इसके अंतर्गत प्रश्नावली तैयार करके क्षेत्र का सैम्पलिंग की गयी है। प्रशासनिक अधिकारियों जिससें पुलिस विभाग भी सम्मिलित है इसके अतिरिक्त जनप्रतिनिधि, सामाजिक संगठन, स्थानीय नागरिक, अनुसूचित जाति व जनजातिय लोगों से साक्षात्कार सर्वेक्षण कर अध्ययन किया है।

2. **द्वितीयक समंक–** द्वितीयक तथ्यों का संकलन पुस्तकों, समाचार पत्रों, शोध पत्रिकाओं, पुलिस अधीक्षक, कार्यालय, छत्तीसगढ़ विधानसभा कार्यालयीन अभिलेखों के माध्यम से किया गया है। इस तरह तथ्यों का संग्रहण साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन तथा सामूहिक चर्चा द्वारा किया गया है।

शोध की परिकल्पना–

शोध परिकल्पना अनुसंधान का महत्वपूर्ण चरण होता है। शोध परिकल्पना एक कार्यकारी आधार होता है जो कि शोधार्थी को एक दिशा प्रदान करता है शोध उपकल्पना को ऐसी उपकल्पना कहा जाता है जिसका परीक्षण शोध कार्य के दौरान किया जाता है। इस अर्थ मे यह आवशयक नही कि परिकल्पना सिद्ध हो कभी कभी यह सिद्ध नही भी होती है।

मेरे द्वारा चयनित शोध मे अध्ययन क्षेत्र के अनुसूचित जाति व जनजातियों की

सामाजिक व राजनीतिक परिस्थिति की दिशा का ज्ञान प्राप्त होगा

1. अनुसूचित जाति व जनजातीय के प्रभावित क्षेत्र मे सकारात्मक सुधार हेतु शासन द्वारा की जाने वाली पहल से अच्छे परिणाम आए हैं।

2. जिस समाज मे राजनीतिक चेतना तथा राजनीतिक जीवन मे भाग लेने की भावना का विकास जितना अधिक होगा उतना वह समाज राजनीतिक प्रक्रिया के दौर से अधिक गुजरेगा।

3. शिक्षा और तकनीकी का अभिज्ञान जितना ही अधिक होगा, रूढ़ियो और अन्धविश्वास का प्रभाव उतना ही कम होगा ।

निष्कर्ष–

इस अध्ययन से जिससे यह ज्ञात होता है कि बलौदा बाजार जिले में अनुसूचित जाति व जनजातियो में राजनीतिक व सामाजिक रूप से विकास हो रहा है। जिला बनने के बाद बलौदाबाजार जिले में अनुसूचित जाति व जनजातियो के विकास में तत्कालीन शासन ने जनकल्याणकरी योजनाओं की शुरूआत कर इस क्षेत्र को विकास की दिशा में अग्रसर किया है।

सुझाव–

1. अनूसूचित जाति व जनजाति प्रभावी क्षेत्र में रहने वाला जनमानस अपनी समृद्धि पारंपरिक विरासत एवं संस्कृति पर गर्व करता है। इसकी मानवीय एवं आर्थिक समस्याओं और उनके समाधान के लिए योजनाएं बनाते समय इनकी आदतों, रूचियों और विश्वास को बिना ठेस पहुंचाये इनकी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

2. क्षेत्र की अनुसूचित जाति एवं जनजाति बेरोजगारी, प्रवास और सामाजिक पिछड़ेपन की समस्याओं से छुटकारा पाने के इरादे से जीवन के प्रत्येक पहलू पर लंबे समय से संघर्ष किया है। उनकी आकांक्षाओं कों ध्यान में रखते हुए उन्हें शिक्षा, न्याय, रोजगार के समुचित अवसरों के अतिरिक्त शासन प्रशासन में उनकी भागीदारी सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

3. अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की स्थितियों को सुदृढ़ बनाने के लिए क्रियान्वित की जाने वाली नीतियों को मानवीय, मौद्रिक, प्रशासनिक तथा तकनीकी रूप से विकास किया जाना चाहिए।

4. महिलाओं की शिक्षा एवं उनमें राजनीतिक जागरूकता का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. शुक्ल हीरालाल (1997) आदिवासी अस्मिता और विकास मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, पृष्ठ क्रं. 65
2. राव एम.एस.ए. (2000) सोशल मुवमेंट इन इण्डिया मनोहर पब्लिकेशल नई दिल्ली पृष्ठ क्रं. 85
3. शर्मा राजीव लोचन लाईफ शडुल ट्राईब एण्ड कल्चर सहचरी प्रकाशन आचार्य नगर कानपुर पृष्ठ नंबर 89
4. दोषी शंभुलालः हाई सोशल ह्युमन साइंस, विकास पब्लिसिंग हॉउस प्रा. लि. देलही 1978 पृष्ठ क्रमांक 216

5. केसरी अर्जुन दास आदिवासी जीवनः लोक रूची प्रकाशन राबर्ट्स गंज सोनभद्र उत्तरप्रदेश पृष्ठ 19-47 पृष्ठ 80-116
6. डॉ. बी.एल. फडिया भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा 2008 पृष्ठ क्रमांक 234
7. पनागरिया बी.एल. : स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया जयपुर (1989)
8. तिवारी शिवकुमार (2000) मध्यप्रदेश कि जनजातियां हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल पृष्ठ संख्या 200

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

निमाड़ी संस्कृति में प्रतीकों का संसार

* प्राची यादव

सारांश– *निमाड़ के ग्रामीण क्षेत्र में आज भी घर की मिट्टी की दीवारों को लीप पोतकर उन पर रंगों से अलंकरण करने की अभिलाषा यहाँ की प्रत्येक महिला को रहती है। आधुनिक समय में भी पक्के मकानों पर महिलायें अलंकरण कर अपनी कलात्मकता को उजागर करती रहती हैं। यहाँ का कोई भी अनुष्ठानिक कार्य बिना रंग और रेखाओं के पूर्ण नहीं होता। कोई भी कार्य शुरू करने से पहले चौक पूजा जाता है और साँतिया बनाया जाता है। निमाड़ अंचल का अधिकतर अलंकरण प्रतीकात्मकता को उजागर करता है। यहाँ पर्व और उत्सव पर जो अलंकरण होते हैं उनका प्रतीकता से गहरा सम्बन्ध है। चित्र का छोटे से छोटा भाग भी अपने आप में प्रतीकात्मक गूढ़ अर्थ समाये हुए है। इस दृष्टि से इन प्रतीकों का विवेचनात्मक विवरण आवश्यक बन जाता है। आखिर ये प्रतीक होते क्या है ? इनका क्या अर्थ है ? इन्हीं सब बिन्दुओं को मैं अपने इस शोध पत्र में स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रही हूँ।*

मुख्य शब्द– निमाड़ी संस्कृति, साँतिया, प्रतीक चिन्ह, बिन्दु, रेखा, त्रिभुज, चर्तुभुज, प्रकृति।

प्रत्येक संस्कृति की अपनी कुछ परम्पराएँ और मान्यताएँ होती है, अपने कुछ विशिष्ट प्रतीक चिन्ह भी होते हैं। निमाड़ी संस्कृति भी इससे अछूती नहीं है। 'प्रतीक हमारी संस्कृति के सबसे जाज्वल्यमान नक्षत्र है। जितने चमकीलें आकाशीय नक्षत्र हैं, उतने ही धरती के ये नक्षत्र लोकजीवन को प्रकाशित करते हे। प्रत्येक संस्कृति के अपने भिन्न-भिन्न प्रतीक होते हैं।'[1]

प्रतीक मौन की भाषा है। निमाड़ी संस्कृति में भी लोककलाओं की अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से ही हुई है। निमाड़ में समस्त त्यौहारों, पर्वो, संस्कार, परम्पराओं आदि में प्रतीकों का प्रयोग बहुत ही सशक्त रूप में हुआ है। वाचिक स्तर पर वाणी से गीत, कथा, गाथा, पहेलियाँ, लोकोक्तियों एवं मुहावरों में, लोक चित्रकला के स्तर पर रंग एवं रेखाओं में तथा प्रदर्शनकारी कलाओं में गीत, संगीत, स्वर, लय, ताल, नृत्य, अभिनय आदि में प्रतीक साकार हुए हैं।

अभिव्यक्ति की प्रारम्भिक भाषा प्रतीकात्मक ही थी। मानव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति के ओजस्वी रूप, ये प्रतीक संस्कारों द्वारा परिष्कृत और परिमार्जित होते हैं। सहज रूप में प्रतीक मन को आल्हादित और मंगलता की भावना से परिपूर्ण करते हैं। जीवन धर्म की अनिवार्यता तथा देवी-देवताओं के प्रति विश्वास का बोध हमें प्रतीक चिन्हों के माध्यम से ही होता है। 'प्रतीक चिन्ह जब पारंपारिक रूप से लोक में सुपरिचित हो

* शोध छात्रा, बिजनौर (उ.प्र.)

जाता है, तब वह एक सुपरिचित अर्थ भी व्यक्त करता रहता है। ठीक उसी भाँति जिस प्रकार लिपि का एक अक्षर अपना निर्धारित अर्थ तय कर लेता है। यदि हम थोड़ा और गहन अध्ययन करें तब हम पाएँगें कि प्रतीकों के बिना सभी प्रदर्शनकारी कलाएँ निरर्थक हो जाती हैं। 'प्रतीक चिन्ह' सभी कलाओं का आवश्यक प्राण तत्व है।'[2]

लोक व्यवहार में विभिन्न अनुष्ठान, तन्त्र, मन्त्र, कृषि, कर्म, धर्म-त्यौहार, व्रत-उपवास, जन्म, विवाह, मृत्यु संस्कार और संस्कारों के समस्त लोकाचार आदि जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक व्यवहार होते हैं। मानव ने अपनी विकास की अवस्था में ज्यामितिक आकृतियों की रचना करके उन्हें प्रतीक लोक में प्रतिष्ठित किया है। निमाड़ के लोक साहित्य और लोक संगीत में सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रयोग खूब हुआ है।

निमाड़ के प्रतीकों में कोई तो शक्ति है जो ये हर परिस्थिति में ज्यों के त्यों अभी तक जीवंत बने हुये हैं। प्रतीकों के कालजयी होने के राज को जानने हेतु इनके अर्थ और शास्त्र को जानना अत्यन्त ही आवश्यक है। निमाड़ी लोक चित्रकला में बिन्दु, चौक, साँतिया, रेखा, गुण, धन, स्वास्तिक, कलश, दीपक, ऊँ, सूर्य, चन्द्र, कमल, लाल, नीले, पीले, श्वेत रंग, बैल, पीपल, चक्र, शंख इत्यादि अनेक प्रतीक प्रयोगार्थ हैं। प्रयोग के आधार पर प्रत्येक प्रतीक का अर्थ भी निमाड़ अंचल में प्राचीन समय से ही निश्चित है।

बिन्दु– निमाड़ी चित्रकला में कोई भी चित्र बिन्दु से ही शुरू किया जाता है। अतः बिन्दु सृष्टि का केन्द्र है। 'बिन्दु का एक रूप है- बूंद और दूसरा बिन्दी या टीकी। निमाड़ी संत सिंगा जी का पद है - बूँद से संसार की उत्पत्ति हुई है।'

एक बूंद की रचना सारी,
जाका सकल पसारा,
सिंगाजी भर नजरा देख्या,
सोहम् पुरूष हमारा।

इस पद में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि एक बूंद से संसार की रचना हुई है और उसके विस्तार से समस्त चराचर जगत बना है। सिंगा जी स्वयं अपनी आँखों से परब्रह्म पिता परमेश्वर की रचना को देख रहे हैं।'[3]

बिन्दु से ही सब आकृतियों का जन्म होता हैं। बिन्दु से दशमलव प्रणाली पैदा हुई है। बिन्दु से आगे की रचना शून्य है। एक और बिन्दु अश्रु, शुक्र व रज का प्रतीक है तो दूसरी और यह सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी का भी प्रतीक है। रंगोली या अल्पना का प्राण प्रतीक भी बिन्दु ही है।

शून्य– शून्य अखण्डता का प्रतीक है, शून्य अनन्त का भी प्रतीक है। शून्य का प्रयोग निमाड़ के लोकचित्रों में बहुतायतता में हुआ है। निमाड़ में शून्य को गोला या अण्डा कहा जाता है। शून्य बिन्दु का विस्तार है और गोल आकार शून्य की ही देन है। धरती और आकाश के बीच जो कुछ भी फैला हुआ है उसे शून्य ही कहा जाता है अतः शून्य ब्रह्माण्ड का प्रतीक है।

रेखा– निमाड़ के भित्ति चित्रों में रेखाओं का सबसे अधिक महत्व है। रामायण में रेखा को मर्यादा का प्रतीक माना गया है। रेखा द्वारा ही स्वास्तिक बनता है। रेखा से ही धन (+) गुणा (×) के भी चिन्ह बनते हैं। रेखाओं से हजारों प्रतीक बनते हैं। जिनको हम आदिम और लोक कलाओं में स्पष्ट रूप से देखते हैं। आड़ी रेखा स्थिरता का प्रतीक है

तो खड़ी रेखा ऊँचा उठने का प्रतीक है। वहीं समानान्तर रेखा समानता का प्रतीक है।

निमाड़ में सरल, वक्र, आड़ी, तिरछी रेखाओं से बने अनेकों प्रतीक हैं। रेखा द्वारा ही निमाड़ी लोक चित्रों में घरों को बनाया जाता है। महिलायें मांग में सिंदूर भरती हैं तो उसका माध्यम भी रेखा ही है इसलियें रेखा को सुहाग का प्रतीक भी माना जाता है।

त्रिभुज– निमाड़ के भित्ति चित्रों में मानव और पशुओं को त्रिकोण द्वारा ही बनाया जाता है। निमाड़ के चित्रों को बिना त्रिभुज के बनाना असम्भव है। त्रिभुज ब्रह्मा, विष्णु, महेश का प्रतीक है। त्रिभुज भूत, भविष्य, वर्तमान का भी प्रतीक है। निमाड़ी कलाओं में त्रिभुज का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। विशेषकर भूमि अलंकरण में। त्रिभुज पहाड़ का प्रतीक है, अग्नि का प्रतीक है। सीधा त्रिभुज शिव और उल्टा माँ पार्वती का प्रतीक है।

चतुर्भुज– चतुर्भुज के चार कोण होते है, इसलिये चर्तुभुज के चारों कोण चारों दिशाओं के प्रतीक हैं। निमाड़ के सभी लोक चित्रों में घरों को चौकोर बनाया जाता है। हमारे सोने का पलंग, चूल्हे, बिस्तर सभी कुछ चौकोर अर्थात् वर्गाकार ही होते हैं जिससे की हम पर कोई नकारात्क प्रभाव न पड़े अतः चतुर्भुज मांगलिकता का भी प्रतीक है। चतुर्भुज शक्ति का प्रतीक है, सम्पूर्णता का प्रतीक है और साथ ही सुन्दरता का भी प्रतीक है।

सूर्य– निमाड़ में जिरोती, नाग, सांझी, दशहरा, गोरधन सभी लोक चित्रों के अंकन की शुरूआत सूर्य और चन्द्र के अंकन से ही की जाती है। सूर्य, चन्द्र ईश्वर की आँखों के प्रतीक हैं। 'निमाड़ी लोक और लोकचित्रों में सूर्य का केन्द्रीय महत्व है। सूर्य प्रकृति का सबसे बड़ा अवदान है। सृष्टि में सूर्य सबसे तेजस्वी नक्षत्र है। लोक की अवधारणा में सूर्य सत्य का प्रतीक है।'[4]

चन्द्र– निमाड़ की संस्कृति में जितना महत्व सूर्य का है उतना ही महत्व चन्द्रमा का भी है या ये भी कहा जा सकता है कि निमाड़ में चन्द्रमा को सूर्य से उच्च स्थान प्राप्त है। निमाड़ की प्रत्येक कला में चन्द्रमा का प्रतीकात्मक अंकन हुआ है, उतना सूर्य का भी नहीं। चन्द्रमा सुन्दरता का प्रतीक है। निमाड़ में चन्द्रमा को मन का प्रतीक माना जाता है। अतः यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि चन्द्रमा निमाड़ का मन है। निमाड़ में करवाचौथ, गणेश चतुर्थी, शरद पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा आदि पर चन्द्र पूजन की परम्परा आज भी है। अतः चाँद शुभता का प्रतीक, पावनता का प्रतीक है।

तारे– तारे सौरमण्डल की समृद्धि का प्रतीक हैं। तारे के टूटने को लोक में अशुभ माना जाता है। तारे समय का प्रतीक हैं, आशा का प्रतीक है, शक्ति का प्रतीक है।

स्वास्तिक– निमाड़ अंचल के प्रत्येक लोक चित्र में स्वास्तिक का अंकन किया जाता है। स्वास्तिक को कई पारम्पारिक तरीकों से निमाड़ में बनाया जाता है। चावल का आटा, हल्दी, कुमकुम, गेरू, जुवार, खड़िया आदि से स्वास्तिक को बनाने का चलन बहुत प्राचीन समय से चला आ रहा है। स्वास्तिक शान्ति, समृद्धि और पवित्रता का प्रतीक है।

कलश– बिना कलश स्थापना के निमाड़ में कोई भी मांगलिक कार्य नहीं होता। यह भारतीय संस्कृति का सम्माननीय प्रतीक है। कलश परिपूर्णता का प्रतीक है। कलश, विश्व कल्याण, लोकमंगल, का प्रतीक है। कलश आशा, विश्वास और भविष्यवाणी का प्रतीक है।

शंख– निमाड़ के घर-घर में शंख पूजन का प्रचलन है। शंख एक मांगलिक प्रतीक है।

आज भी निमाड़ में जब किसी के घर सत्यनारायण भगवान की कथा होती है तो कथा का आरम्भ शंखनाद के द्वारा ही होता है तथा शंखनाद के द्वारा ही कथा की समाप्ति को सूचित किया जाता है। शंख शुरूआत और आकर्षण का प्रतीक है।

त्रिशूल– 'यह पौराणिक प्रतीक है। तीन शूल तीन देवता का प्रतीक है' - ब्रह्मा, विष्णु, महेश जिसके तीन अर्थ हैं - उत्पादक, पालक और संहारक। त्रिशूल मन, बुद्धि और विवेक का प्रतीक है। गुहा चित्रों में त्रिशूल का अंकन बहुत कम मिलता है।'[5]

तुलसी– तुलसी के पौधे को निमाड़ी भाषा में तुलसी क्यारा कहते हैं। निमाड़ में लगभग प्रत्येक घर में तुलसी क्यारा देखा जा सकता है। तुलसी के बिना कोई भी पूजा अनुष्ठान पूर्ण नहीं होता। निमाड़ के चित्रों में तुलसी का अंकन बहुतायतता से हुआ है। तुलसी औषधीय गुणों से भरपूर है। इसे सर्वाधिक पवित्र माना जाता है अतः यह पवित्रता का प्रतीक है।

कमल– निमाड़ के रंगोली और मांडनों ने कमल का अंकन बहुत अधिक हुआ है। वहीं निमाड़ी मेहदी और गोदनों में भी कमल की उपस्थिति गौरवपूर्ण है। कमल सौन्दर्य का प्रतीक होने के साथ-साथ जल और सूर्य का भी प्रतीक है।

नारियल– नारियल को श्रीफल भी कहा जाता है। नारियल शिव जी का प्रतीक है इसलिए शिव के आगे पूरा नारियल चढ़ाया जाता है। नारियल आरती की शोभा का प्रतीक है। नारियल उज्जवला का भी प्रतीक है।

कुश– कुश की घास को निमाड़ में अत्यन्त पवित्र स्थान प्राप्त है। कुश घास में विष्णु का वास माना जाता है अतः धार्मिक कार्यों में इसकी उपयोगिता सर्वाधिक होती है। कुश पवित्रता का प्रतीक है इसीलिए किसी के मरणोपरांत कर्म में कुश का आसन लगता है अतः कुश मोक्ष का भी प्रतीक है।

पीपल– इस वृक्ष को लोक में सबसे अधिक पवित्र मानते हैं। यह विष्णु भगवान का प्रतीक है। इसके प्रत्येक पत्ते में देवता का वास माना जाता है। पीपल वृक्ष में शिव और पार्वती दोनों का वास है अतः यह दाम्पत्य प्रेम का प्रतीक है। लोकचित्रों में पीपल और पीपल के पत्तों का चित्रण प्रतीक रूप में देखने को मिलता है। पीपल का वृक्ष परिवार के प्रेम, आस्था और प्रेम का प्रतीक है।

नाग– निमाड़ अंचल में नाग पूजा की प्रथा बहुत प्राचीन है। निमाड़ के लोगों ने नागों को देवता के रूप में स्वीकार किया है अतः नाग आस्था के प्रतीक हैं। नाग भय और धन का भी प्रतीक हैं।

अन्न– अन्न भी निमाड़ का एक महत्वपूर्ण प्रतीक है। अन्न के अभाव में जीवन सम्भव नहीं अतः अन्न लोक का और प्राणतत्व का प्रतीक है। अन्न श्रेष्ठ दान का भी प्रतीक है।

आम– आम का वृक्ष मातृशक्तियों का प्रतीक है। आम शुभता का प्रतीक है। प्रत्येक मांगलिक कार्य में आम के पत्ते कलश के ऊपर रखे जाते है। अतः आम मंगल का भी प्रतीक है। आम का फल और आम का वृक्ष भारतीय संस्कृति का प्रतीक है।

सम्पूर्ण प्रकृति ही प्रतीकमयी है। इस ब्रह्मण्ड में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब कुछ प्रकृति की असीम कृपा का फल है। हमारी प्रकृति में फैले ये प्रतीक ही किसी भी अंचल की संस्कृति को गढ़ते हैं और उसके संवाहक भी हैं। निमाड़ की सांस्कृतिक परम्परा में स्वीकृत प्रतीक मांगलिक और अमांगलिक दोनों ही प्रकार के हैं।

समय और कर्म के आधार पर यहाँ के लोगों की मान्यतानुसार एक ही प्रतीक कभी मांगलिक होता है तो कभी अमांगलिक। 'इन मान्यताओं के भी दो रूप हैं - एक रूढ़िगत मान्यता तो दूसरे अनुभव जन्य विश्वास। चूँकि रूढ़िगत मान्यताओं का ज्ञान से कोई रिश्ता जुड़ नहीं पाता- अतएव बदलते हुये समय के साथ वे लुप्त होती जा रही हैं। लेकिन जिनके पीछे सूझ और समझ के पदचिन्ह अंकित हैं, ऐसे अनुभव जन्य विश्वास, आज भी लोक हृदय को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।'[6]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निमाड़ के लोक मानस ने इन प्रतीकों के साथ अपना पूर्ण साहचर्य स्थापित कर लिया है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. निरगुणे वसन्तः जिरोती, (2006) आदिवासी लोक कला अकादमी, भोपाल, मध्य प्रदेश, प्रथम संस्करण, पृ0-131
2. सहगल डॉ0 पूरनः मालवा के मांगलिक प्रतीक, चौगासा, वर्ष -28, अंक 86/87, 2011-12, पृ0-124
3. 'निमाड़ी' रमेशचन्द्र तोमर : लोक के प्रतीक, चौमासा, वर्ष -28, अंक 86/87, 2011-12, पृ0-99
4. निरगुणे वसन्त : जिरोती, (2006) आदिवासी लोक कला अकादमी, भोपाल, मध्यप्रदेश, प्रथम संस्करण, पृ0-163
5. वही, पृ0-156
6. उपाध्याय रामनारायणः (1997) लोक साहित्य समग्र, हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, वाराणसी, पृ0-89

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

उन्नीसवीं सदी के भारतीय समाज व परिवर्तनशील राजनीतिक पटल पर ईसाई समाज की राजनीतिक सहभागिता व सक्रिय भूमिका

* रामशंकर
** ऑस्टिन रूबिन

सारांश– *न्यायशील, दशामय व समानाधिकारवादी समाज में जीवनयापन व स्थापन होते देखना कई एक मानव सभ्यताओं का दिव्यस्वप्न रहा है। सदियों से अपने इर्दगिर्द ऐसे संसार की स्थापना करने का प्रयास मनुष्य करते आ रहे हैं। इस प्रयास में राज्य व राजनीति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। राजनीति समकालीन पुरुष व महिलाओं के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है। लोकतंत्र में जहां नागरिक स्वायत्त होता वहां यह तथ्य अत्यंत प्रभावशाली रहता है क्योंकि नागरिकों की जागरूक भागीदारी लोकतंत्र के जीवन, विकास व शक्ति का कारक होती है।*

मुख्य शब्द– जागरूक भागीदारी, लोकतंत्र, निर्वाचन, समुदाय।

एक समाज में मध्य किसी समुदाय की राजनीतिक भागीदारी व प्रतिनिधित्व उस समुदाय का अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक संकेतक होता है। राजनीतिक भागीदारी किसी समुदाय के सशक्तिकरण का एक संकेतक व सुशासन की पहचान बन जाता है। किसी भी समुदाय के विकास का स्तर मापने हेतु उसकी सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति व उसका राजनीतिक प्रतिनिधित्व एक प्रमुख घटक होता है।

ईसाईयत और राजनीति ऐतिहासिक रूप से ही एक विवादित विषय रहा है और यह तथ्य संपूर्ण ईसाई इतिहास में नकारा जाता रहा है। विभिन्न तरीकों से विचारकों ने इस संबंध को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यहां कुछ कहते हैं कि ईसाई मत किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा या दर्शन को सीधे तौर पर स्वीकृति देता है और इस आधार पर विभिन्न विचारक ईसाई साम्यवाद (Christian Communism), ईसाई समाजवाद (Christian Socialism), ईसाई अराजकतावाद (Christian Anarchism), ईसाई स्वेच्छा तंत्रवाद (Christian libertarianism), ईसाई लोकतंत्र (Christian Democracy) जैसे विषयों को लेकर चले, वहीं दूसरी ओर अन्य विचारकों के अनुसार ईसाई समुदाय को राजनीति व सरकार से तटस्थ रहना चाहिए।[1]

यह एक कटु सत्य यह कि जहां भारतीय लोगों ने ईसाई धर्म की प्रमुख धार्मिक शिक्षाओं का तो सहर्ष स्वागत कर सहमति प्रदान की परंतु वहीं इस नई धर्म शिक्षा के रीति-रिवाज और तौर-तरीकों के कारण भारत में ईसाई समुदाय अब तक विवादों में घिरा

* विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
** शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

रहता आया है। लेकिन इस तथ्य की ओट में हम भारतीय ईसाई जनों का राष्ट्र के प्रति समर्पण और योगदान को मिटा नहीं सकते।

इस तर्क की पुष्टि हेतु मैं कुछ उदाहरण देना चाहूंगा। भारत वर्ष के स्वतंत्रता संग्राम में ईसाईयों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश राज में 28 दिसंबर 1885 को हुई थी। इनके संस्थापक ए.ओ. ह्यूम (थियिसोफिकल सोसाइटी के प्रमुख सदस्य), दादा भाई नौरोजी और दिनशा वाचा शामिल थे।[2] इंडियन नेशनल कांग्रेस' की 1857 की मद्रास सभा में कुल 607 प्रतिभागी थे, जिनमें से 35 ईसाई थे। कांग्रेस के आगामी 4 सत्रों में भारतीय ईसाई समुदाय के प्रतिनिधि शामिल थे। इनकी उपस्थिति का प्रतिशत इनकी जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक था। कांग्रेस काल के कुछ प्रमुखतम ईसाई अगुवों में आर.एस.एन. सुब्रमणियम जो कि मद्रास के एक प्रमुख बैरिस्टर थे, बंगाल से कालीचरण बैनर्जी, लाहौर के बैरिस्टर जी.सी. नाथ, मद्रास के पीटर पॉल पिल्लै और ओड़ीसा के वकील मधुसुदन दास आदि थे। केरला के बैरिस्टर जोसफ 'होम रूल मूवमेंट' में सुश्री एनी बेसेंट के साथ सक्रिय थे। पं.जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी आत्मकथा में उनका उल्लेख किया है। अच्चम्मा चेरियन त्रावणकोर की रहने वाली एक स्वतंत्रता सेनानी थी जिन्हें त्रावणकोर की 'झांसी की रानी' कहा जाता था। टाइटस नामक व्यक्ति ने नमक सत्याग्रह में गांधी जी को विशेष सहयोग दिया।

मुंबई में जोसफ 'काका' बेप्टीस्टा (17 मार्च 1864-1930) जो की एक भारतीय राजनेता व कार्यकर्ता थे, ने लोकमान्य तिलक के 'स्वराज आन्दोलन' में सहयोग प्रदान किया। इस आन्दोलन में तिलक जी ने कहा था कि 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूंगा'। जोसफ 'काका' बेप्टीस्टा 1925 में बम्बई (मुम्बई) के मेयर चुने गए। पेशे से वकील जोसफ काका बेप्टीस्टा बाम्बे हाईकोर्ट में लोकमान्य तिलक व वीर सावरकर के वकील हुआ करते थे व उनके केस लड़ते थे।[3]

सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि ईसाई समुदाय राजनीति के प्रति उदासीन और तटस्थ होता है। यह भी सत्य है कि समुदाय को देश, राज्य व जिले की राजनीति में कोई विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। अन्य अल्पसंख्यक समुदाय में ये आंकड़े कहीं अधिक पाए जाते हैं।

ईसाई समुदाय के अंतर्गत ईसा मसीह की शिक्षाओं का अनुकरण करने वाले लोग आते हैं और हर समुदाय को एकता के सूत्र में बांधने वाली डोरी उनकी एक अपनी विशिष्ट विचारधारा, सिद्धांत व रीति-रिवाज होते हैं। जब हम एक समुदाय विशेष को उनकी धार्मिक सोच के आधार पर बाकी लोगों से अलग ठहराते हैं तब उन धार्मिक शिक्षाओं का महत्व उस समुदाय के आचार-विचार का विश्लेषण करते समय अत्यंत तार्किक हो जाता है। अतः धर्मग्रंथ बाइबल में दी गई आचार संहिता, निर्देश व शिक्षाओं की परिधि में ईसाई समुदाय बंधा रहता है।

यह एक अत्यंत स्पष्ट सत्यता है कि वर्तमान में भी जिला जबलपुर अथवा सम्पूर्ण मध्य भारत में ईसाई समुदाय का राजनीतिक पटल में कोई विशेष प्रतिनिधित्व नहीं है। तो फिर क्या यह स्वीकार कर लिया जाए कि इस समाज का जिला, राज्य व देश के राजनीतिक व सामाजिक कार्यों में कुछ भी योगदान नहीं!!! राजनीति के मंच पर कुछ ही ईसाई पात्रों का होना क्या उनके योगदान को शून्य ठहरा देता है? सतही तौर पर यह तथ्य

वास्तविक प्रतीत हो सकता है, परंतु धर्मग्रंथ बाइबल के एक पद के प्रकाशन में मैं यह कहना चाहूंगा कि ''तुम सत्य को जानोगे, सत्य तुम्हें आजाद करेगा''। क्योंकि सत्य सदैव वास्तविकता से परे होता है।

आईये, इस समुदाय की विचारधाराओं व आचरण की गहराई में चले। मध्य भारत व विशेषतः जिला जबलपुर में बसने वाले ईसाई समुदाय के लोग मूलतः नौकरीपेशा वर्ग के हैं, अधिकांश शिक्षित व मध्यमवर्ग का हिस्सा है। राजनीतिक भागीदारी के दृष्टिकोण से यह सत् प्रतिशत सत्य है कि इतिहास गवाह है लोकतंत्र के महापर्व जिसे हम ''चुनाव'' कहते हैं, ईसाई समुदाय अपने मतदान हेतु निष्ठापूर्वक जागरूक पाया गया है। औसत, आंकड़ों और अनुपात के आईने में आप स्पष्टतः पाते हैं कि यह समाज ''मतदान'' के अपने लोकतांत्रिक अधिकार को निष्पादित करने का कर्तव्य तत्परता से सदैव निभाता आया है। हम इनके इस योगदान को अनदेखा नहीं कर सकते।

यह समाज देश के नवनिहालों को शिक्षित करने में सदैव अग्रणी रहा है। जिला जबलपुर स्थित विभिन्न ईसाई समुदाय द्वारा संचालित शिक्षण संस्थानों से देश के कई महान नेता, वैज्ञानिक, डॉक्टर, कलाकार, खिलाड़ी व साहित्यकार आदि निकले हैं। विगत वर्षों में मध्य प्रदेश के प्रमुख सचिव श्री अन्थोनी डिसा जो कि वर्तमान में अध्यक्ष, रीयल इस्टेट रेगुलेशन एंड डेवलपमेंट एक्ट (RERA) भी इसी समुदाय से थे।[4] भूतपूर्व रक्षा सलाहकार श्री बृजेश मिश्रा भी जबलपुर स्थित क्राईस्ट चर्च स्कूल के छात्र रहे हैं। ऐसी कई मिसालें हैं, संविधान व लोकतंत्र के कई सेवक इन्हीं स्कूल से शिक्षित पौधे थे जो आगे चलकर देश में अपने-अपने क्षेत्रों में प्रमुख स्तंभ बने। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में फिर हम क्यूं कर ईसाई समुदाय का लोकतंत्र व राजनीतिक क्षेत्र में अप्रत्यक्ष योगदान व प्रभाव को कैसे अनदेखा कर सकते हैं।

धर्मग्रंथ बाइबल में ऐसा लिखा है कि ''तुम पृथ्वी के नमक हो...''[5] मत्ती 5:13 भोजन में नमक अत्यंत अल्प मात्रा में प्रयोग किया जाता है, परंतु यह उस भोजन के स्वाद, पोषकता, शुद्धता और संरक्षण के लिए अनिवार्य होता है। इसी प्रकार ईसाई समुदाय अल्पसंख्यक ही सही, परंतु नमक की तरह राष्ट्र निर्माण और लोकतंत्र के निर्वाह हेतु प्रभावशाली रूप से अपना योगदान देते हैं।

मूलतः शांतिप्रिय इस समुदाय की कार्यकुशलता और ईमानदारी के कारण कई सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थानों में इन्हें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

अंततः मैं एक बार फिर यह दोहराना चाहूंगा कि ईसाई समुदाय की संख्या के आधार पर नहीं परंतु उनके बुनियादी सार्थक कार्यों के आधार पर यदि हम गहराई में अवलोकन करें तो हम इस समुदाय का लोकतंत्र व राजनीतिक कार्यों के प्रति समर्पण, व योगदान हमें सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में प्रभावशाली रूप से दिखाई देता है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Ref : chrstians & politics 2009. https ://en.m.wikipedia.org
2. https://hi.m.wikipedia.org/wiki
3. Nicholas Almedia ADv.GodfreyPimenta of Watch dog Foundation.
4. http:www.apnarera.com/rera-madhya-pradesh
5. (धर्मशास्त्र पवित्र बाइबल-मत्ती 5:13)

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

भारत में आतंकवाद के बदलते आयामः एक विश्लेषण

* मोहिनी राज

सारांश– *आतंकवाद व्यापक रूप से आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक या वैचारिक उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए आतंक या डर बनाने के साधन के रूप में जानबूझकर अधाधुंध हिंसा का उपयोग है। आज के समय में भारत में ही नहीं वरन पूरे विश्व में आज आतंकवाद एक गंभीर समस्या बनकर उभरा है हालांकि यह किसी भी तरह से किसी भी देश के लिए लाभदायक नहीं हो सकता है, बल्कि आतंकवाद ने तो देशों में नई–नई समस्याओं को जन्म देने का काम किया है बावजूद इसके दुनिया के कई देश आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं, जबकि आतंकवाद से कोई देश अपना भला नहीं कर सकता निश्चित तौर पर इससे उसकी बर्बादी ही होगी। निर्दोषों पर क्रूरता का कहर और तुच्छ स्वार्थी समूहों द्वारा हिंसक गतिविधियों को अंजाम दे कर अपने लक्षित उद्देश्य की पूर्ति करना ही इसका कार्य है। आतंकवाद से होनेवाले दुष्परिणाम तत्कालिक तथा दूरगामी हो सकते हैं परन्तु आतंकवाद कभी भी देश हित के लिए खतरनाक होते हैं।*

मुख्य शब्द– आतंकवाद, विश्वव्यापी समस्या, डर, भय, आंतरिक शांति, सुरक्षा

आतंकवाद शब्द की उत्पत्ति "आतंक" और "वाद" से हुई है आतंक का मकसद भय से जुड़ा है और "वाद" का अर्थ इसकी अवधारणा से है। आतंकवाद की परिभाषा देना आम तौर पर जटिल और विवादास्पद कार्य है, यह कोई साधारण क्रिया या शब्द नही है इसके अनेक छुपे हुए पहलू हैं जिसमें से सबसे ज्यादा उजागर पहलू है क्रूरता और हिंसा। आतंकवाद सभी क्षेत्राधिकारों में कानूनी रूप से परिभाषित नहीं है। इसे समझने के लिए ये विधियां जो मौजूद हैं, हालांकि, आम तौर पर कुछ सामान्य तत्वों को साझा करती हैं। आतंकवाद में हिंसा का इस्तेमाल होता है या ऐसा करने की धमकी होती है, न केवल प्रत्यक्ष पीड़ितों के भीतर, बल्कि यह व्यापक रूप से दर्शकों के बीच भय पैदा करने का प्रयास है।

यह शब्द आतंकवाद और आतंकवादी 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान पहली बार उत्पन्न हुआ था, लेकिन 1983 में बेरूत बैरकों के बमबारी के बाद रोनाल्ड रीगन (1981-89) की अमेरिकी प्रेसीडेंसी के दौरान आतंकवाद के मुख्यधारा को लोकप्रियता प्राप्त हुई थी और फिर सितंबर 2001 में न्यूयॉर्क शहर और वाशिंगटन डीसी पर हमले और बाली पर अक्टूबर 2002 के हमले होने के बाद से इसको विश्व में गंभीर मुद्दा मान लिया गया। हाल ही में 14 फरवरी 2019 को पाकिस्तान के

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

जैश-ए-मोहम्मद संगठन ने भारत की काश्मीर घाटी मे सरे आम बीएसएफ के जवानों से भरे एक बस को बारूद भरे कार से टक्कर दे कर उड़ा दिया जिसके प्रतिशोध में भारत की वर्तमान सरकार ने जैश के पाकिस्तान स्थित प्रशिक्षण शिविर पर हवाई हमला करवा कर यह साबित कर दिया है कि आतंकवाद पर भारत का रुख कितना कड़ा है।

आतंकवाद कई अंतर्निहित कारणों का भी व्यापक विषय रहा है, इसी कारण यह सदैव ही चर्चा, बहस और अनुसंधान का विषय रहा है। आतंकवाद के कारणों को समझने के लिए उस बिंदु तक पहुंचना आवश्यक है, जहाँ से यह शुरू होता है। यह समझना चाहिए कि राजनीतिक निराशा, राजनीतिक आकांक्षाएं, सामाजिक और आर्थिक दबाव हिंसा की भावना को उत्प्रेरित करती हैं। आतंकवाद की उत्पत्ति का सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक और धार्मिक जैसे कई कारक हो सकते हैं, यही वजह है कि इसे कहीं भी पनपने और फैलने में भी आसानी होती है। नेहिमा फ्रैडलैंड ने राजनीतिक आतंकवाद के पुराने आंकड़ों का एक उपयुक्त ढांचा तैयार किया है, जिसमें तीन बातें मुख्यतः उल्लिखित है प्रथम, आतंकवादी घटनाएँ समूह में घटित की जाती हैं, जिसे संगठित समूह द्वारा ही सुनियोजित किया जाता है, ऐसे समूह वाले सदस्यों का जो समूह होता है उसकी कुछ खास पहचान होती है, कारण होता है जो राष्ट्रीय, धार्मिक या वैचारिक हो सकता है। द्वितीय, राजनीतिक आतंकवाद की जड़ें संघर्ष में अन्तर्निहित है। तृतीय, विद्रोही आतंकवाद एक कमजोर रणनीति है।

आतंकवादी वातावरण के बुनियादी तत्वों को समझने में जटिलताओं का सामना करना पड़ता है और सामान्यतः इसके विशेषज्ञ और व्याख्याकार आतंकवाद के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को ले कर सहमत हैं। बार्कन और स्नोडेन ने आतंकवाद को तीन भागों में विभाजित किया है- (1) अराजकतावादी, विप्लवी, बागी आतंकवाद, (2) अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद तथा (3) राज्य आतंकवाद।

वाल्टर लैकूर ने नए आतंकवाद को परिभाषित करने का कार्य उपक्रम करते समय इसके प्रकारों की चर्चा करते हैं जो इस प्रकार हैं- धार्मिक आतंकवाद, राज्य आतंकवाद, विदेशी आतंकवाद, आपराधिक आतंकवाद। यद्यपि आतंकवाद के विभिन्न प्रकार हैं लेकिन मुख्य रूप से निम्नलिखित दस विभिन्न प्रकारों के रूप में इसे विभाजित किया जा सकता है-

पहला, राष्ट्रीय आतंकवाद या अलगाववादी आतंकवाद जिसके अंतर्गत राष्ट्रीय आतंकवादी अपने राष्ट्रीय जातीय समूह के लिए एक अलग राज्य बनाने की इच्छा रखते हैं, अक्सर ऐसे में वो लोग राष्ट्रीय मुक्ति के लिए लड़ाई पर ध्यान देते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि उनके समस्या पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसके बाद वो लोग वे हिंसा के मार्ग को अपना लेना ही विकल्प समझ बैठते हैं, जो कि दुनिया की ओर ध्यान देने के लिए पर्याप्त समझा जाता है, इतना ही नहीं वे विदेशों में समर्थकों या उनके आधार समुदाय के सदस्यों को भी सरकार के प्रति विमुख कर देते हैं तथा उनका रुझान अपने तरफ कर लेते हैं।

दूसरा, धार्मिक आतंकवाद या धार्मिक विचारधाराओं के प्रचार-प्रसार के शांतिपूर्ण मार्ग को छोडकर कुछ लोग संगठनों का निर्माण करते हैं तथा इसके लिए अपने धर्म के आड़ में छुप कर आतंकवाद जैसे घिनौने कृत्यों को अंजाम देते हैं। धर्म आधारित

आतंकवादी संगठनों के नाम में कई कुख्यात संगठन हैं जैसे- बगदादी के आईएसआईएस, अल-कायदा नेटवर्क, लेबनान के शिया समूह हजिबूल्लाह, तालिबानी, फिलीस्तीनी सुन्नी मुस्लिम संगठन हमास, इजरायल के अतिवादी बारूक गोल्डस्टीन और यगील अमीर, हरकत-उल-अन्सर, इंडियन मुजाहिदीन, हरकत-उल-मुजाहिदीन, लश्कर-ए-तैयबा, जैस-ए मोहम्मद, आदि जैसी बड़ी संगठनें शामिल हैं। हश्वफमैन ने कहा है कि, ज्यादातर चरमपंथी धार्मिक आतंकी ऐसे सामान्य वर्ग के खिलाफ असीमित हिंसा के लिए स्वीकृति दे सकते हैं जो किसी आतंकी संगठन का हिस्सा या सदस्य नहीं हों और किसी धार्मिक समुदाय से न जुड़ा हो आतंकवाद धार्मिक विचारधारा और आपसी द्वेष से प्रेरित होता है।

तीसरा प्रकार राज्य-प्रायोजित आतंकवाद है। यह निश्चित है कि आतंकवाद किसी खास समूह द्वारा ही फैलाया जाता है परन्तु, कई देश ऐसे भी हैं जो इसे खत्म करने के बजाये और बढ़ावा देने में ही लगे हैं निश्चय ही इसके पीछे उनकी अपनी स्वार्थ की पूर्ति की भावना छुपी हुई है परन्तु मानवता को कलंकित करते हुए इस मानसिकता को छुपे हुए भाव से कई राज्यों ने सहर्ष अपना लिया है। यह भी तर्क है कि राज्य आतंकवादी हो सकते हैं, और आतंकी कृत्य कर सकते हैं। नागरिकों को आतंकित करने और राजनीतिक लक्ष्य हासिल करने के लिए राज्य युद्ध को घोषित किए बिना सेना या बल का इस्तेमाल कर सकते हैं। नाजी शासन के तहत जर्मनी को इस तरह से वर्णित किया गया है।

चौथा, वामपंथी आतंकवाद है। वामपंथी आतंकवाद ये समूह पूंजीवादी लोकतंत्र को उखाड़ फेंकने और उनके स्थान पर समाजवादी या कम्युनिस्ट सरकार स्थापित करना चाहते हैं। वे वर्ग-भेद दूर करने के लिए पहले से स्थापित सिस्टम पर हमला करना चाहते हैं हालांकि ये समूह अभी भी अस्तित्व में हैं, लेकिन अब वे उतने लोकप्रिय नहीं रहे जितना शीत युद्ध के दौरान रहे हैं।

पाँचवाँ, दक्षिणपंथी आतंकवाद है। इस तरह के आतंकवाद का उद्देश्य उदार सरकारों का मुकाबला करना और पारंपरिक सामाजिक आदेशों का संरक्षण करना है। दक्षिणपंथी आतंकवाद सामान्यतः लड़ाकों और गिरोहों द्वारा संचालित किया जाता है कई बार ये आतंकी समूह भी नस्लीय तौर प्रेरित दिखाई पड़े हैं इसके अलावा एक राज्य के भीतर अल्पसंख्यकों को संरक्षण देना भी इनका मकसद है।

छूठा, आत्मदाही आतंकवाद है। आत्मदाही आतंकवाद, आतंकवाद की एक पुरानी रणनीति है। 20 वीं शताब्दी में और भी ज्यादा परिष्कृत हथियारों का विकास हो जाने पर यह आतंकवादियों को ज्यादा दूरी से उसे हथियार के रूप में उपयोग में लाने का विकल्प देता है।

सातवाँ प्रकार विकृत आतंकवाद है। विकृत आतंकवाद मनुष्य के मानसिक विकृतता का परिणाम है यह उन व्यक्तियों द्वारा आतंकवाद के उपयोग का वर्णन करता है जो दूसरों को आतंकित करने की खुशी में ही ऐसी रणनीतियों का उपयोग करते हैं, जो समाज पर प्रायः भयावह असर डालती हो। ऐसे आतंकवादियों को एक प्रकार से रोगी आतंकवादी भी कह सकते हैं क्योंकि वे आतंकवाद की भावना से ग्रस्त हैं आतंक के वजह से ही विक्षिप्त हैं।

आठवाँ प्रकार है, मुद्दा उन्मुखी आतंकवाद। मुद्दा उन्मुखी आतंकवाद उस प्रकार का आतंकवाद हैं जो किसी एक खास मुद्दे से जुड़े होते हैं और उस मुद्दे को लेकर सामान्य

वर्ग में से कोई एक समूह का निर्माण करके फिर उस समूह द्वारा सरकार पर और सामान्य नागरिकों पर हिंसात्मक गतिविधिओं को अपना कर प्रभाव डालते हैं। इसका दूसरा रूप पारिस्थितिकी आतंकवाद भी है जिसमें पर्यावरण की सुरक्षा को लेकर विवादित और हिंसात्मक गतिविधियाँ उठाई जाती है।

नौवाँ, पारिस्थितिकी आतंकवाद है। पारिस्थितिकी आतंकवाद या इकोटेररिज्म का एक और रूप, जिसे अक्सर वर्णित किया गया है "पर्यावरणीय युद्ध" जो युद्ध की रणनीति या सशस्त्र संघर्ष जैसे राज्यों के भीतर सिविल संघर्ष के दौरान पर्यावरण का जानबूझकर और अवैध रूप से विनाश और शोषण होता हैं।

दसवां प्रकार साइबर आतंकवाद है। साइबर आतंकवाद अत्यधिक उन्नत तकनीक वाला आतंकवाद है, और यह कम लागत में ज्यादा नुकसान करने की क्षमता रखता है। इसमें आदमी भी कम लगते हैं तथा यह दूर बैठ कर कहीं से भी अपने योजना को अंजाम दे सकता है साथ ही एक बार में यह बहुत सारे लोगों को अपनी आतंकी सोच का नमूना दिखा कर डर कायम करने की क्षमता भी रखता है।

आतंकवाद आधुनिक काल में एक विश्वव्यापी समस्या है। यह "आतंकवाद" शब्द जिसकी उत्पत्ति ही भय के साथ हुई है, बिल्कुल अपने नाम की तरह इसका कर्म भी आतंक और भय का मेल है। यह अपने स्वभाव से ही कष्टदायक है और निर्दोषों पर अत्याचार इसका इसका निश्चित मार्ग है। इसका प्रत्यक्ष उद्देश्य दूसरे पक्ष में भय व्याप्त करना है और अप्रत्यक्ष उद्देश्य कुछ विशेष हितों की पूर्ति होती है। शुरुआत में आतंकवादियों में मजबूत वैचारिक झुकाव था। विभिन्न आतंकवादी समूह परंपरागत रूप से ऐसे मजबूत लड़ाकों को शामिल करते थे, जो धार्मिक तथा कट्टर तत्वों वाले हों। ब्रायन जेनकिंस, जो आतंकवाद के विशेषज्ञ हैं, उन्होंने 1974 में कहा था "आतंकवाद थिएटर" है। इसमें हिंसा का इस्तेमाल नागरिकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने या आतंकवादी समूह के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हिंसा से अपने योजना को प्रभावित करने के लिए किया जाता है। आधुनिक समय में आतंकवाद और इसका उपयोग सिर्फ इसीलिए है कि इसका कितना अधिक राजनैतिक लाभ उठाया जा सके।

निष्कर्ष–

आतंकवाद आज भारत की सबसे दुःखद समस्या है। यह भारत सरकार के समक्ष आज सबसे बड़ी चुनौती है, जहां आ कर भारत के आंतरिक शांति और सुरक्षा पर सवाल उठ जाते हैं, भारतीय लोकतंत्र अपनों से ही खतरे में दिखने लगता है, वह उग्र मानसिकता वाली अवधारणा आतंकवाद के रूप में व्यापक रूप से फैल रही है।

आधुनिक समय में आतंकवाद मानव समाज को बर्बाद करने के लिए तत्पर है। आधुनिक समय का आतंकवाद पहले के समय से काफी भिन्न है। अब कई देश दूसरे देश पर अपने राजनीतिक हित साधना के लिए आतंकी रुख अपना रहे हैं। आतंक के इस भयावह स्थिति को रोकना अतिआवश्यक है। इस समय आतंकी रणनीति और षडयंत्र भी अपने चरम पर है। सभी आतंक समर्थक राष्ट्र इसे बढ़ावा देने में जन, धन और समय बर्बाद करने में लगे हैं कुछ राष्ट्र जो आतंक विरोधी हैं आतंकवाद से निपटने के लिए तरह-तरह के रास्ते अपना रहे हैं संयुक्त राष्ट्र के तरफ से भी बहुत से प्रयास हो रहे हैं, लेकिन आतंकवाद एक ऐसा रोग है जो लाइलाज है और इसका इलाज मात्र तभी संभव

है जब इन्सान के अंदर इंसानियत जिन्दा रहे अन्यथा प्रयास दोनों तरफ से होते ही रहेंगे।

आतंकवाद ने भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्र के सभी पहलुओं और परिस्थितियों को प्रभावित तो किया ही है इसके साथ ही इसने हर क्षेत्र में अपनी पकड़ ऐसे बनाई है कि उससे मुक्त होने के लिए अब सरकार को पुरजोर कोशिश करनी होगी। देश में होने वाली आतंकी हमले आतंकवाद का घिनौना चेहरा दिखाने में सक्षम हैं। आतंकवाद हमारे देश के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक, हर क्षेत्र पर अपना कुप्रभाव डाल रहा है। भारत की सामाजिक व् सांस्कृतिक एकता और अखंडता को भी इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं।

समाज में एक ओर जहाँ यह हमारे नौजवानों को उग्र बनाकर भ्रमित राह पर जाने के लिए बढ़ावा दे रहा है, वहीं दूसरी ओर आपसी द्वेष तथा शत्रुता की भावना को प्रोत्साहित कर रहा है। लोग हिंसात्मक गतिविधियों को शौर्य प्रदर्शन समझ बैठे हैं। इतना ही नहीं वे इस अपराध को भी अब अपना अधिकार मानते हैं। इसका प्रभाव समाज पर ऐसा पड़ा है कि, आज आए दिन दंगे, मारपीट, लड़ाइयां आम बात हो गई हैं। सोशल साइट्स हो या सड़क, आजकल एक दूसरे के धर्म, संस्कृति, वर्ग, जाति पर कीचड़ उछालना, नीचा दिखाना, गाली-गलौज करना, ये सब समाज की सामान्य गतिविधियां हो गई हैं।

आतंकवाद को खत्म करने के क्षेत्र में सरकार प्रयासरत है परन्तु यह बढ़ता ही जा रहा है। इसके लिए और भी गम्भीर कदम उठाने होंगे। इसके अलावा राष्ट्रीय एकता, समता और अखंडता पर ध्यान देते हुए राष्ट्रीय अभियान चलाने चाहिए। देश में आर्थिक अन्याय और विषमता को कम करने का शीघ्र प्रयास कर आतंकवाद को पनपने से रोकना चाहिए, भूमि सुधार कानूनों के निर्माण व शिक्षा पर जोर देने के साथ बेरोजगारी की समस्या खत्म करना चाहिए। इसके अलावा जो लोग नाबालिग उम्र में या पीड़ित होकर या अन्य दुःखद परिस्थितिवश आतंकवाद के राह पर भटक कर चले गए हों उन्हें सद्भावना और सहनशीलता के साथ नैतिकता का पाठ पढ़ा कर वापस सही मार्गदर्शन और उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने की आवश्यकता है ताकि वे सरकार पर से उठा हुआ विश्वास पुनः स्थापित कर पाएं और देश आतंकवाद के चंगुल से मुक्त हो।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. Virginia Page Fortna, "Do Terrorists Win? Rebels' Use of Terrorism and Civil War Outcomes", International Organization, 2015, Retrieved on 28 September, 2016.
2. https://www.britannica.com/topic/terrorism
3. Stevenson, (ed.), Oxford Dictionary of English (3rd ed.), New York: Oxford University Press, 2010.
4. Ariel Heryanto, State Terrorism and Political Identity in Indonesia: Fatally Belonging, New York: Routledge, Taylor & Francis Group, 2006, p-161.
5. Gabriel Faimau, "Socio-Cultural Construction of Recognition: The Discursive Representation of Islam and Muslims in the British Christian News Media", Cambridge: Cambridge Scholars Publishing, p-27.
6. Dainik Jagran, 15 February, 2019.

7. Hindustan Times, 27 February, 2019.
8. Steven E.Barkan, Lynne L. Snowden, Collective Violence, Boston: Allyn & Bacon, 2001
9. Ibid.
10. Walter Laqueur, The New Terrorism: Fanaticism and the Arms of Mass Destruction, New York: Oxford University Press, 1999, p-230.
11. Ramesh Chandra, Global Terrorism: Foreign Policy in New Millennium, Delhi: Kalpaz Publication, Vol. I, 2003, p- 9.
12. Ramesh Chandra,Vol-1, Op. Cit., p-10.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

दलित चेतना-विकास में हरिजन सेवक संघ की भूमिका

* रजनीश कुमार

सारांश- *गाँधीजी ने राजनीतिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक सोच-विचार एवं आचार में भी परिवर्तन के लिए आन्दोलन चलाकर बहुत दूरदर्शिता का परिचय दिया। गाँधीजी का यह सार्थक प्रयास कई मायनों में सफल रहा और समरस समाज के निर्माण में इसके दूरगामी परिणाम भी सामने आये है। 'सर्वधर्म समभाव' परंपरा के धनी भारत वर्ष में दर्शन और चिन्तन के धरातल पर जितनी विशालता, व्यापकता एवं मानवीयता स्पष्टता के साथ दिखाई देती है, उतनी स्पष्टता के साथ व्यवहारिकता के धरातल पर आज तक दिखाई नहीं देती है। समय के समक्ष भारतीय समाज गुणों के आधार पर नहीं अपितु जन्म, जाति, वर्ण, उपवर्ण, ऊँच-नीच के विभिन्न भागों एवं खण्डों में विभक्त होकर एक ऐसे विखण्डित समाज के निर्माण की ओर सवेग अग्रसर हो गया जहाँ सत्य के साधक, मानवीय मूल्यों के सजग प्रहरी भारतीय संतों, महात्माओं, गुरूओं .... उनके द्वारा दिये गये उपदेशों एवं उनके द्वारा स्थापित संस्थाओं की भूमिका एक वर्गविहीन एवं समरस समाज के निर्माण हेतु महत्वपूर्ण हो गयी । यही कारण है कि आधुनिक लोकतांत्रिक विचार, बुद्धिवाद तथा मानवतावाद से प्रभावित भारतीयों ने धार्मिक अंधविश्वास के विरूद्ध आवाज उठाई।*

मुख्य शब्द- विखण्डित समाज, जातीय भेदभाव, सामाजिक समरसता, दलित चेतना।

वस्तुतः जब राष्ट्रीय आंदोलन आरंभ हुआ तो स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जातीय भेदभाव की समाप्ति और व्यापक सामाजिक समता अनिवार्य शर्त बन गए। इस प्रकार शुरू से ही राष्ट्रीय आंदोलन और उसके अभिन्न अंग 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' ने सभी जातिगत विशेषाधिकारों और छुआछूत के भेदभाव के बिना सभी को अपने व्यक्तिगत विकास के लिए समान अधिकार एवं स्वतंत्रता की मांग की।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी इस विषय की गंभीरता को देखते हुए गहतना के साथ इस ओर अग्रसर हुए और इस दिशा में विशेषकर छुआछूत समाप्त करने और दलित एवं अछूत वर्ग के उद्धार के लिए सहज भाव से प्रयत्न किये। महात्मा गाँधी की पहल पर पूरे देश में 27 सितम्बर, 1932 से 02 अक्टूबर, 1932 तक अस्पृश्यता निवारण सप्ताह मनाया गया। इसके अंतर्गत बिहार के विभिन्न मंडलों खासकर पटना, गया, शाहाबाद, चम्पारण, दरभंगा, राँची और हजारीबाग में भी अस्पृश्यता सप्ताह मनाया गया।

अमृत लाल बी. ठक्कर के नेतृत्व में 'अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी लीग' की स्थापना की गई। साथ ही अखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण लीग की प्रशाखाएँ बिहार

* जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा बिहार।

समेत अनेक राज्यों के केन्द्र में स्थापित हुई। उसी समय महात्मा गाँधी ने प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र हरिजन का प्रकाशन आरंभ किया। इस पत्र के माध्यम से उन्होंने अस्पृश्यता के विरूद्ध जनमत को जागृत करने का कार्य किया। 'अस्पृश्यता विरोधी लीग' का नाम आगे चलकर 'सर्वेन्ट्स ऑफ अनटचेबल्स सोसायटी' रखा गया जो अन्ततः 30 सितम्बर, 1932 को 'हरिजन सेवक संघ' के रूप में सामने आया और विख्यात हुआ।

हरिजन सेवक संघ के लक्ष्य / उद्देश्य-

'हरिजन सेवक संघ' ने दलितों को शेष हिन्दुओं के साथ पूर्ण समानता प्रदान करने हेतु तीन लक्ष्य निर्धारित किये थे -

* हिन्दू समाज से सत्यमेव एवं अहिंसक तरीके से अस्पृश्यता को समाप्त करना।
* दलितों के उपर लादी गई निर्योग्यताओं को मिटाना।
* दलितों का शैक्षणिक (पाठशालायें खोलना, छात्रवृत्ति प्रदान करना, छात्रावास बनाना आदि), आर्थिक (औद्योगिक एवं तकनीकी शिक्षा पर आधारित रोजगार खोजना, आदि) एवं सामाजिक (कुआँ, घाटों, धर्मशालाओं एवं मंदिरों को दलितों के लिए सुलभ करना, दलित बस्तियों में चिकित्सालय चलाना तथा मुफ्त दवा वितरण) विकास करना एवं स्तर ऊँचा उठाना।

इस प्रकार से महात्मा गाँधी अस्पृश्यों की समस्या को शांतिपूर्ण वैधानिक तरीके से हल करना चाहते थे। यही उनका तथा 'हरिजन सेवक संघ' का लक्ष्य था।

हरिजन सेवक संघ और अस्पृश्यता निवारण आन्दोलनः

07 नवम्बर, 1933 को महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता उन्मूलन एवं हरिजन सेवक संघ के क्रियाकलापों को गति देने के उद्देश्य से वर्धा से वाराणसी तक 2,000 किलोमीटर की यात्रा की जो 09 महीनों तक चली।

इस दरम्यान देश के विभिन्न स्थानों पर उन्होंने अनेक सभाओं को सम्बोधित करते हुए कहा कि सवर्ण हिन्दुओं को हिन्दू समाज पर अस्पृश्यता के हानिकारक प्रभावों को समझना चाहिए।

इस यात्रा के तहत् 24 अप्रैल, 1934 को वे आसाम से पटना लौटे और हरिजन यात्रा पुनः शुरू की। 25 अप्रैल को गाँधी जी आरा में जमरिया गाँव का निरीक्षण किया और वहाँ के दलितों से भेंट की और उन लोगों को शोषण का विरोध करने के लिये प्रेरित किया। उन्होंने बहुत साफ शब्दों में कहा कि वे इस बात का पूरा प्रयास करेंगे कि अछूत-अस्पृश्यता के अभिशाप से मुक्त हो और दूसरों के समान समाज में सम्मानपूर्वक जीवन बिताये। गाँधीजी के इस बेवाक उद्‌बोधन का बिहार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। 12 अक्टूबर को मोतिहारी में एक सार्वजनिक बैठक आयोजित हुई जिसमें जनता-जर्नादन ने अस्पृश्यता निवारण के लिए तेजी से कार्य करने का निश्चय किया। आगे 06 नवम्बर, 1932 को पटना के अंजुमन इस्लामिया हॉल में प्रांतीय अस्पृश्यता निवारण सम्बन्धी सम्मेलन हुआ। इसके बाद 06 जिला सम्मेलन क्रमशः छपरा, आरा, भागलपुर, मुंगेर, जहानाबाद और बेतिया में किए गए।

इसके साथ ही इस अवधि में राज्य के अलग-अलग भागों में 52 जुलूस निकाले गए। केवल पटना में ही अस्पृश्यता निवारण संघ के मार्गदर्शन में 21 जुलूस निकाले गए। अब उच्च जाति के लोगों ने इन स्वयंसेवकों को अधिक समर्थन देना शुरू किया।

परिणामस्वरूप उच्च जाति के कुँओं से पानी भरना आसान हो गया साथ ही समिति ने अपने खर्च पर दलितों के प्रयोग के लिए 646 कुँओं का निर्माण किया।

अतः हरिजन सेवक संघ के माध्यम से चलाये गये अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन के प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत सहित बिहार के विभिन्न भागों के दलितों में राजनैतिक चेतना आई।

मंदिर-प्रवेश आन्दोलन तथा दलित-

अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन को और धारदार एवं व्यापक बनाने के लिए गाँधीजी ने उसी वर्ष यानी 1932 में ही दूसरा जो महत्त्चपूर्ण कार्य किया वह था अन्त्यजों को मंदिरों में प्रवेश करने का अधिकार दिलाना।

देश के प्रसिद्ध हिन्दू नेताओं की उपस्थिति में 'पूना-पैक्ट' के बाद 25 सितंबर, 1932 को बंबई में विशाल सभा हुई जिसमें प्रस्ताव पारित किया गया कि अस्पृश्यता दूर करने की दिशा में मंदिरों के द्वार अछूतों के लिए खोल दिए जाएंगे। गाँधीजी ने अपने 'हरिजन' पत्र में इसका उल्लेख भी प्रारंभ कर दिया।

हालाँकि उस समय भी कुछ लोग ऐसे थे जिन्होंने 'मंदिर-प्रवेश आन्दोलन' को फालतू किस्म की चीज समझते हुए बहुत महत्व नहीं दिया। लेकिन गाँधीजी की दृष्टि में अछूतों को सामाजिक स्तर पर समानता, सम्मान का स्थान दिलाने के साथ-साथ धार्मिक स्तर पर भी समानता, सम्मान का दर्जा दिलाने के लिए उनका मंदिरों मे ंप्रवेश करने का अधिकार होना आवश्यक था, और यह चीज भी व्यापक जन आन्दोलन के जरिये ही प्राप्त की जा सकती थी। चूँकि अछूत भी इसी जनसामान्य के अभिन्न अंग थे, अतएव उन्हें भी मंदिरों में जाने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। ताकि वे धर्म के स्तर पर भी गैर बराबरी या दोयम दर्जा न महसूस करें। यही कारण था कि वे हरिजनों को भी मन्दिरों में प्रवेश दिलाने के लिए आन्दोलन के क्षेत्र में कूद पड़े।

इस आन्दोलन से बिहार भी अछूता नहीं रह सका। आरा में 25 सितम्बर, 1932 को एक अवकाश प्राप्त पेशकार श्री रामेश्वर प्रसाद के नेतृत्व में मंदिर के सामने एक सभा हुई। सत्यनारायण भगवान की पूजा भी की गई जिसमें अछूतों और पद्दलित वर्गों के लोगों ने सक्रिय भाग लिया। साथ ही अलग-अलग स्थानों पर 236 मंदिर अछूतों के लिए खोल दिए गए एवं 257 संयुक्त धार्मिक कीर्तन, कथा, भजन, प्रार्थनाओं का आयोजन किया गया। पतितपावन भगवान के नाम से भागलपुर जिला के कहलगाँव में एक नया मंदिर खोला गया। भागलपुर के मुहल्ला मंडीचक में एक अन्य मंदिर बनाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो अछूत पहले मंदिरों में पूजा के लिए प्रवेश नहीं पाते थे अब उन्हें पूजा की अनुमति मिल गई।

वस्तुतः मंदिर-प्रवेश का प्रश्न गाँधीजी की दृष्टि में विशुद्ध धार्मिक एवं नैतिक स्वरूप का था। वे हरिजनों को हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग मानते थे, इसलिए उन्हें सवर्णों के समकक्ष लाने के लिए मंदिरों में प्रवेश का अधिकार दिलाना यानी धार्मिक स्तर पर भी समानता लाना वे आवश्यक समझते थे।

गाँधीजी के मंदिर-प्रवेश आन्दोलन का सम्बन्ध जहाँ हरिजनों को धर्म के स्तर पर समानता एवं सम्मान का स्थान दिलाने से था वहीं वह सवर्ण हिन्दुओं की मानसिकता में परिवर्तन लाने की मंशा से भी प्रेरित था।

दलित शिक्षा और संघ–

शिक्षा के क्षेत्र में दलितों के लिए आन्दोलन चलाने का काम कुछ समकालीन मिशनरियों एवं कर्मचारियों के द्वारा गरीब वर्ग के लोगों के लिए देशी भाषा का स्कूल स्थापित कर किया गया। फिर भी दलितों के बीच चेतना का विकास उतना नहीं हो पाया जितना होना चाहिए था। हरिजन सेवक संघ के गठन के साथ ही देश के विभिन्न हिस्सों में नियमित तरीके से दलितों के शिक्षा के प्रयास शुरू हो गये, बिहार भी इस रंग में रंग गया।

संघ के प्रस्तावानुसार स्कूलों में अध्ययन करने के लिए हरिजन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ और शैक्षिक वृत्तियाँ प्रदान की गई। दलितोत्थान के कदम को तीव्रतर बनाने के उद्देश्य से निर्मित विभिन्न जिला समितियों ने दलित छात्रों के अध्ययन को जारी रखने के उद्देश्य से मानसिक छात्रवृत्तियाँ स्वीकृत कीं। जो निम्न है -

जिला समिति, आरा - 06 हरिजन छात्रों को

जिला समिति, मुंगेर - 15 हरिजन और 12 पद्दलित छात्रों को

जिला समिति, भागलपुर - 07 हरिजन और पद्दलित छात्रों को

जिला समिति, दरभंगा - 05 हरिजन या पददलित छात्रों को

छात्रवृत्तियाँ प्रदान की। इसके अलावा गया तथा हजारीबाग जिला समिति ने भी छात्रवृत्ति प्रदान की।

ये सभी छात्रवृत्तियाँ प्राथमिक और मध्यवर्ग के छात्रों को प्रदान की गई। प्रान्तीय कार्यालय-04 छात्रवृत्तियाँ देती थी उन पर कुल मिलाकर 17 रूपये मासिक खर्च होता था। इन सब के अलावा विभिन्न समितियों के कार्यकर्ताओं के प्रयास से अन्य स्कूलों में 600 के लगभग छात्र नामांकित किए गए थे।

अतः हम कह सकते हैं कि हरिजन सेवक संघ दलितों के शैक्षणिक विकास में लगा हुआ था, जिसने दलितों में शैक्षिक चेतना का विकास किया।

इस प्रकार देखा जाए तो भारतीय इतिहास में शूद्रों-विशेषकर अस्पृश्यों के उन्नयन का यह एक अनोखा प्रयोग था। गाँधीजी भारत के इतिहास के सक्रांतिकाल में परंपरागत और नए जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा के साथ-साथ नवजागरण का शंख फूंकते रहे। उन्होंने सवर्ण हिन्दुओं को प्रेरित किया कि वे दलितों को अपना भाई समझें। उन अभागों को गले लगाएँ तथा हृदय-परिवर्तन करें। यह सामाजिक परिवर्तन का एक प्रयोग था।

आज की तारीख में गाँधीजी के इस अछूतोद्धार आन्दोलन का महत्व भले ही वामपंथी एवं दलितपंथी बुद्धिजीवियों की दृष्टि से नगण्य हो, किन्तु यह सत्य यह है कि भारतीय समाज में जातिगत-भेद की उग्रता को कम करने, सवर्गों की अस्पृश्यता सम्बन्धी सोच में बदलाव लाने तथा अछूतों का अछूतपन मिटाते हुए उन्हें समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने में इस आन्दोलन की बहुत बड़ी भूमिका रही।

गाँधीजी ने राजनीतिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक सोच-विचार एवं आचार में भी परिवर्तन के लिए आन्दोलन चलाकर बहुत दूरदर्शिता का परिचय दिया। गाँधीजी का यह सार्थक प्रयास कई मायनों में सफल रहा और समरस समाज के निर्माण में इसके दूरगामी परिणाम भी सामने आये है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. चंचरीक, कन्हैयालाल - आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. 228.
2. वही, पृ. 228.
3. कुमार, प्रवेश - दलित अस्मिता की राजनीति, मानक पब्लिकेशन प्रा0 ली0, लक्ष्मी नगर, दिल्ली, पृ. 58.
4. कुमार संजय व कुमार, अमित - दलित उद्भव एवं विकास, जानकी प्रकाशन, पटना, पृ. 68.
5. कुमार प्रवेश - दलित अस्मिता की राजनीति, पृ. 58.
6. कुमार, संजय व कुमार अमित - दलित उद्भव एवं विकास, पृ. 68.
7. कुमार, प्रवेश - दलित अस्मिता की राजनीति, पृ. 58.
8. चौड़वाल, डॉ शिवचरण - दलित चेतना का उदय एवं विकास, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर (राज0), पृ. 115.
9. वही, पृ. 115 एवं कुमार, प्रवेश - दलित अस्मिता की राजनीति, पृ. 58.
10. वर्मा, एस. बी. - हरिजन सेवक संघ का इतिहास, हरिजन सेवक संघ, दिल्ली, पृ. 218.
11. श्री सागर, आर. के. - दलित मूवमेंट इन इण्डिया एण्ड इट्स लीडर्स, एम. डी. पब्लिकेशन्स् प्रा0 लि0, नई दिल्ली, पृ. 118.
12. कुमार, संजय व कुमार, अमित - दलित उद्भव एवं विकास, पृ. 76.
13. वही, पृ. 76.
14. कुमार, प्रवेश - दलित अस्मिता की राजनीति, पृ. 57.
15. कुमार, संजय एवं कुमार, अमित - दलित उद्भव एवं विकास, पृ. 76.
16. वही, पृ. 70.
17. वही, पृ. 74.
18. सिंह, श्री भगवान - गाँधी और दलित भारत - जागरण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 75.
19. चंचरीक, कन्हैयालाल - आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, पृ. 236, 237.
20. सिंह, श्री भगवान- गाँधी और दलित भारत- जागरण, पृ. 73.
21. वही, पृ. 75.
22. वही, पृ. 77.
23. कुमार, संजय व कुमार, अमित- दलित उद्भव एवं विकास, पृ. 67.
24. वही, पृ. 71.
25. सिंह, श्री भगवान - गाँधी और दलित भारत - जागरण, पृ. 78.
26. वही, पृ. 78.
27. उपाध्याय, राजभूषण - बिहार में दलित चेतना का विकास (1937-1964), जानकी प्रकाशन, पृ. 71-72.
28. वही, पृ. 23.
29. कुमार, संजय व कुमार, अमित - दलित उद्भव एवं विकास, पृ. 71-72.
30. वही, पृ. 72.
31. सिंह, श्री भगवान - गाँधी और दलित भारत - जागरण, पृ. 83.
32. चंचरीक, कन्हैयालाल- आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन, पृ. 232.
33. वही, पृ. 232.
34. सिंह, श्री भगवान - गाँधी और दलित भारत - जागरण, पृ. 107.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

संसदीय कार्य प्रणाली एवं भारतीय न्यायपालिका (एक संक्षिप्त अध्ययन)

* जे.पी. गुप्ता

सारांश– *भारत में आधुनिक संसदीय प्रक्रिया का वास्तविक श्रीगणेश 1853 से होता है। 1861, 1862 और 1909 में उनमें सामान्य परिवर्तन किए गए। कुल मिलाकर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि ये परिवर्तन इतने कम थे और इनके मध्य इतना कालान्तर था कि सिवाए ऐतिहासिक दृष्टि से उनका राजनीतिक व्यवस्था पर बहुत सीमित प्रभाव पड़ा क्योंकि सरकार पर प्रभाव डालने का जो अवसर भारतीयों को प्राप्त थे वे नगण्य थे। वास्तविक परिवर्तन मांटेगों चेम्सफोर्ड सुधार योजना के अन्तर्गत की गयी व्यवस्था के अंतर्गत आया जो 1921 में लागू हुआ। भारतीय संसदीय इतिहास में पहली बार लोकतांत्रिक तत्वों का समावेश हुआ। लेकिन गवर्नर जनरल लोकहित में उस प्रक्रिया पर नियंत्रण और हस्तक्षेप कर सकता था। व्यवहार में कई क्षेत्रों में उसके द्वारा इस शक्ति का प्रयोग किया जाता था।*

मुख्य शब्द– संसदीय प्रक्रिया, संविधान सभा, संघीय व्यवस्था, न्यायपालिका, विवाद

1921 में केन्द्रीय विधानमंडल में जिस प्रक्रिया की स्थापना की गयी, वह कुछ सामान्य परिवर्तनों के साथ ब्रिटिश संसद द्वारा भारत स्वतंत्रता अधिनियम 1947 पास किये जाने तक लागू रहा। प्रान्तों में 1937 में पूर्ण स्वायत्तता लागू होने पर कुछ परिवर्तन किये गये, लेकिन 1939 में विश्वयुद्ध प्रारंभ हो जाने के परिणाम स्वरूप भारत सरकार अधिनियम 1935 का संघीय भाग लागू नहीं हो सका और 1921 की स्थापित प्रक्रिया चलती रही।

इस प्रकार 1921 ई0 में भारत में जो केन्द्रीय विधान सभा बनी वह स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक किसी रूप में कार्यरत रही। 1947 में भारतीय शासन अधिनियम द्वारा केन्द्रीय विधानमंडल को समाप्त कर दिया गया और उसका स्थान संविधान सभा ने ले लिया। यह मूलतः संविधान बनाने वाली सभा थी, लेकिन यही डोमीनीयन विधान मंडल के रूप में कार्य करती रही और 26 जनवरी 1950 को जब भारतीय गणतंत्र का संविधान लागू हुआ तो यह अन्तःकालीन संसद के रूप में कार्य करती रही।

इस प्रकार ब्रिटिश संसदीय कार्य प्रणाली का भारतीय संसद पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसके अनुरूप ही भारतीय संसद ने कार्य करना प्रारंभ किया, लेकिन संधीय व्यवस्था, लिखित संविधान एवं न्यायिक सर्वोच्चता संबंधी विवाद प्रारंभ हुआ। इस संदर्भ में

* राजनीति विज्ञान विभाग, पी.सी. साइन्स कॉलेज छपरा, जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा, सारण, बिहार।

सर्वाधिक विचारणीय प्रश्न यह है कि वे कौन-कौन से मुद्दे हैं जो संसद एवं सर्वोच्च न्यायालय के मध्य विवाद का मुख्य कारण बन गये है।[1]

संसद के साथ न्यायपालिका के संबंधो का प्रश्न का महत्व मूलतः निम्नलिखित कारणों से उत्पन्न हुआ है।

(क) न्यायपालिका को संविधान की संसदीय अधिनियमों की व्याख्या करने और अधिनियमों में उपयोग में लायी गयी शब्दावालियों का अर्थ स्पष्ट करने एवं उनके दोषो को दूर करने का अधिकार प्रदान किया गया है।

(ख) न्यायपालिका को किसी अधिनियम को असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार प्राप्त है।

(ग) न्यायपालिका को किसी संवैधानिक संशोधन विधेयक को भी अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त है।

भारत में विवाद प्रारंभ होने का मूल कारण यह है कि संसद अपनी सर्वोच्चता का दावा करती रही है, लेकिन भारत में संसद् इंग्लैंड के समान संप्रभु (सर्वोच्च) नहीं है। परिणाम स्वरूप दोनो के अधिकार क्षेत्र के प्रश्न पर विवाद प्रारंभ हुआ है। विधायिका चूँकि संप्रभु नहीं है और यदि वह ऐसा कोई कार्य करती है जिससे संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण होता है तो न्यायपालिका को हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। एक विवाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि विधान सभा या विधान परिषद की अयोग्यता का विस्तृत उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 191 (1) के 'अ' से 'इ' तक कर दिया है। जबकि 191 (1) (3) के अंतगर्त संसद को उन शर्तो के निर्धारण की शक्ति प्राप्त है, जिस आधार पर किसी व्यक्ति को विधानपालिका की सदस्यता से वंचित किया जा सकता है। राज्य विधान पालिका को अयोग्यता संबंधी शर्तो को हटाने की शक्ति प्राप्त है, नवीन अयोग्यता संबंधी शर्तो के निर्धारण का नहीं।[2]

इसी प्रकार न्यायपालिका को राजनीतिक प्रश्न संबंधी विवादों को देखने का अधिकार नहीं है। न्यायमूर्ति घवन ने हरशरण वर्मा बनाम सी0बी0 गुप्ता नामक विवाद में यह विचार नही करेगी। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि कोई व्यक्ति जो विधान पालिका का सदस्य नही है, वह 6 महीने तक के लिये मुख्यमंत्री नियुक्त किया जा सकता है, क्योंकि इस प्रकार की नियुक्ति पर न तो संवैधानिक प्रतिबंध लगाया गया है और न ही इससे संसदीय सरकार के मान्य सिद्धान्त का अतिक्रमण होता है। इस प्रकार की अतःकालीन व्यवस्था राजनीतिक दृष्टि से वांछनीय है या नही, यह देखना न्यायपालिका का कार्य नही है। लेकिन मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने को अवैध घोषित कर दिया। न्यायालय ने इसे अवांछित एवं अनुचित बताया। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने संध सरकार के अपील पर उच्च न्यायालय के आदेश को स्थगित कर दिया।[4]

संविधान के अनुच्छेद 118 के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि संसद के दोनो सदन अपनी प्रक्रिया एवं कार्य संचालन के लिये नियमों का निर्माण संवैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत करेगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत में संसद के दोनो सदनों को विधि निर्माण संबंधी अधिकार निरपेक्ष रूप में प्राप्त नहीं है, जैसा कि हम इंग्लैंड में पाते है बल्कि इसपर उसी प्रकार प्रतिबंध लगा है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है। संसद

द्वारा निर्मित किसी कानून से मौलिक अधिकार का अतिक्रमण होता है तो न्यायालय को उसे अवैध घोषित करने का अधिकार प्राप्त है।[5]

क्षेत्राधिकार संबंधी विवाद–

लेकिन न्यायपालिका एवं विधान पालिका के मध्य क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर प्रायः विवाद उत्पन्न होता रहा है। इस संदर्भ में संविधान के अनुच्छेद 143 के अंतर्गत उत्पन्न केशव सिंह विवाद का उल्लेख किया जा सकता है।[6]

केशव सिंह उतरप्रदेश के गोरखपुर जिला के निवासी थे। उन्हें सदन के विशेषाधिकार के उल्लंधन करने और उसके एक सदस्य के विरूद्व अपमानजनक पैम्पलेट निकालने के लिये उसे प्रताड़ित करने के लिये सदन में उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। 14 मार्च 1964 को मार्शल ने केशव सिंह को सदन के सामने उपस्थित किया।

उसी दिन अध्यक्ष ने सदन के द्वारा लिये गये निर्णय के अनुसार सदन की दूसरी अवमानना के लिये कैद की सजा सुनाई, क्योंकि उसमें अध्यक्ष के नाम अपने पक्ष में अपमानजनक बातें लिखीं थी। केशव सिंह को लखनऊ के केन्दीय कारागार में सात दिनों के लिये भेज दिया गया। कारावास के प्रायः अंतिम दिन केशव सिंह की तरफ से एक अधिवक्ता ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ पीठ के समक्ष (अधिकार पृच्छा) का लेख उपस्थित किया और यह दलील दी कि वादी को गलत ढंग से एवं अनाधिकार सजा दी गई है। उसी दिन सरकार के सहायक अधिवक्ता का करीब एक घंटे तक इंतजार करने के बाद दो न्यायाधीशों की खंडपीठ ने वादी को 1000 के दो जमानतों के आधार पर रिहा करने का आदेश दिया। यह आदेश लखनऊ के जिलाधीश को दिया गया।

उच्च न्यायालय के इस आदेश की तीक्ष्ण प्रतिक्रिया विधानसभा में हुआ। सदन ने 21 मार्च 1964 को एक प्रस्ताव द्वारा अधिवक्ता, दोनो न्यायाधीशों एवं वादी को सदन की अवमानना के लिये दोषी ठहराया, इतना ही नही उसी प्रस्ताव द्वारा सदन ने यह आदेश दिया कि वादी को बाकी अवधि के लिये कारावास दिया जाए और उसे अविलम्ब हिरासत में ले लिया जाये। इसके साथ ही साथ प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि उस अधिवक्ता को एवं दोनो न्यायाधीयों को हिरासत में सदन के समक्ष उपस्थित किया जाये।

ज्यों ही दोनो न्यायाधीश एवं अधिवक्ता को इस निर्णय की जानकारी आकाशवाणी से हुई, उन्होनें संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपना आवेदन इलाहाबाद उच्च न्यायालय में उपस्थित किया अपने आवेदन में न्यायाधीशों ने यह स्पष्ट किया कि केशव सिंह द्वारा उपस्थित किये गये आवेदन पर विचार करना उनके अधिकार क्षेत्र के अधीन है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि केशव सिंह को रिहा करने का जो आदेश उन्होंने अनु0 226 के अंतर्गत दिया वह उनके अधिकार क्षेत्र के अधीन था। आवेदन में यह भी कहा गया कि सदन द्वारा पारित प्रस्ताव से उच्च न्यायालय की अवमानना हुई है और यह विधानपालिका के क्षेत्राधिकार से परे था। आवेदन के अंत में यह आग्रह किया गया था कि प्रस्ताव में दिये गये आदेश को अवैध घोषित किया जाए। और उन्हें हिरासत में लेने के आदेश पर रोक लगा दिया जाये।

इस विवाद के निर्णय के परिणाम स्वरूप जो संवैधानिक विवाद उत्पन्न हो सकता था उसे ध्यान में रखते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 28 न्यायाधीशों ने उसी दिन न्यायाधीशों के आवेदन पर विचार किया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ ने उस

आवेदन को विचार के लिये स्वीकार करते हुए प्रतिवादियों को जिनमें विधान सभा के अध्यक्ष भी सम्मिलत थे उन्हें नोटिस जारी किया। पूर्ण पीठ ने अध्यक्ष को यह भी आदेश दिया कि वे प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में (जो 21 मार्च 1964 को स्वीकृत हुआ था) बंदी बनाने का आदेश निर्गत न करे। यदि बंदी बनाने का आदेश जारी किया जा चुका है तो न्यायालय ने उतर प्रदेश सरकार को एवं सदन के मार्शल को उस वारंट को तामिल करने पर प्रतिबंध लगा दिया। इसी प्रकार के आदेश अधिवक्ता के आवेदन पर न्यायालय ने दिया।

दूसरी तरफ न्यायालय के प्रस्ताव पर स्पष्टीकरण को उसी दिन फिर से स्वीकार किया। इसके अंतर्गत इस आशंका को दूर किया गया कि न्यायाधीशों को एवं अन्य पक्षों को अपनी स्पष्टीकरण दिये बिना उसकी निंदा की थी। अतः यह निर्णय लिया गया कि सदन की अवमानना के प्रश्न का निर्धारण उन्हें समूचित अवसर प्रदान करने के बाद किया जाएगा। परिणाम स्वरूप अधिवक्ता एवं न्यायाधीशों के विरूद्व जारी किये गये वांरट वापस ले लिये गए।

इस प्रकार की विषम स्थिति को ध्यान में रखकर और संवैधानिक संकट के और गहराने को ध्यान में रखकर राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 143 (1) के अंतगर्त विवाद में निहित संवैधानिक प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय का परामर्श माँगा।

प्रोफेसर डी0 एन0 बनर्जी के अनुसार संविधान के अनुच्छेद 105 (3) एवं 194 (3) की भाषाओं के प्रभावों के संदर्भ में कृत्रिम सीमाओं या व्यवधानों को खड़ा नही किया जाना चाहिए।[7]

इस प्रकार संविधान के अनुच्छेद 121 और 211 के प्रावधान बिल्कुल स्पष्ट है। किसी न्यायाधीश द्वारा अपने दायित्व के निर्वाह के कम में दिये गए कार्य या व्यक्त किये गये विचार के लिये विधानपालिका संविधान के अनुच्छेद 105 (3) या 194 (3) के अंर्तगत प्राप्त अधिकारों के अंर्तगत प्राप्त विशेषाधिकारों के आलोक में कार्यवाही नही कर सकती है। यदि कोई न्यायाधीश अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए विधानपालिका की अवमानना करता है तो उसके विरूद्व अनुच्छेद 121 के अंर्तगत ही कार्यवाही की जा सकती है। अर्थात एक प्रस्ताव पारित कर राष्ट्रपति से उस न्यायाधीश को पदच्युत करने की मॉग की जा सकती है।

संविधान के अनुच्छेद 121 और 211 के विश्लेषण से दो बाते स्पष्ट होती है- (क) यदि न्यायाघीश के आचरण पर सदन में विचार विमर्श नही किया जा सकता है तो उसका वही आचारण उसके विरूद्व कार्यवाही के लिये अनु0 194 (3) के अंतर्गत आधार नही बनाया जा सकता ।

यधपि अनु0 211 अनु0 194 (2) के आलोक में विधायिका को बाध्यकारी शक्ति प्रदान नही करती है, यह स्पष्ट नही है। फिर भी इससे संविधान निर्भताओं की इच्छा या मंशा स्पष्ट हो जाती है। वे न्यायाधीशों को विधायिका की अवमानना के क्षेत्राधिकार से परे रखना चाहते थे।

दूसरे, संविधान निर्माता न्यायपालिका को इतना अधिक महत्व देते थे और इसे इतन अधिक सर्वोच्चता एवं स्वतंत्रता देना चाहते थे कि वे इसे किसी प्रकार के विवाद से परे रखना चाहते थे।

इस संदर्भ में एक दूसरी स्थिति भी उत्पन्न होती है। क्या किसी न्यायाधीश द्वारा दिये गये निर्णय से किसी विधायिका सदस्य की अवमानना होती है तो विधानपालिका उस पर विशेषाधिकार हनन के आधार पर कार्यवाही कर सकती है? इस संदर्भ में एक विवाद 1960 में एक अवकाश प्राप्त सरकारी कर्मचारी को सरकारी वकील बहाल करने के प्रश्न पर (मद्रास) चेन्नई (तमिलनाडु) में उत्पन्न हुआ। इस विवाद में जो निर्णय न्यायमूर्ति बाल कृष्ण अय्यर ने दिया उसमें तत्कालीन विधि मंत्री सुब्रमण्यम की भूमिका की तीव्र आलोचना की गई थी और उन पर प्राप्त सरकारी संरक्षण के दुरूपयोग का आरोप लगाया गया था।[8]

5 सितम्बर को राज्य विधान सभा में न्यायालय के विरूद्व विधानपालिका के विशेषाधिकार हनन का आरोप लगाया गया था । उसके दूसरे ही दिन अर्थात 6 सितम्बर को इन अधिवक्ता द्वारा दो आवेदन उच्च न्यायलय में उपस्थित किया गया। प्रथम आवेदन में न्यायालय से यह आग्रह किया गया था कि एक लेख जारी कर विधान सभा के अध्यक्ष को यह निर्देश देने को कहा गया था कि विशेषाधिकार हनन संबंधी प्रस्ताव पर विचार करें और स्थगित रखें।

क्योंकि यह संविधान के अनु0 211 का स्पष्टतः उलंधन करता है। दूसरे आवेदन में प्रस्ताव उपस्थित करने वाले सदस्य के विरूद्ध न्यायालय की अवमानना का आरोप लगाया गया था लेकिन, न्यायालय को इन दोनो आवेदनों पर विचार करने का अवसर प्राप्त नही हुआ। क्योंकि राज्यपाल द्वारा विधानपालिका का सत्रावसान कर दिया गया। अतः विधानपालिका के सम्मुख विचारधीन समस्त कार्य सूची विशेषाधिकार हनन संबंधी प्रस्ताव सहित समाप्त हो गया। अतः मद्रास उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश राजमन्नार ने गुणवता के आधार पर उस विवाद पर विचार करना उचित नही माना। लेकिन इस क्रम में यह विचार व्यक्त किया गया कि न्यायालय द्वारा निर्गत किसी निर्णय से विधानपालिका के विशेषाधिकार का हनन नही होता है।[10]

तत्कालीन समय में ही एक विवाद इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। सर्वोच्च न्यायालय ने मणिपुर राज्य के विधानपालिका के सचिव पर लगायी गयी अध्यक्ष के रोक को अनुचित बताते हुए उसके वेतन भुगतान का निर्देश अध्यक्ष को दिया, लेकिन अध्यक्ष ने न्यायालय के निर्देश का पालन नहीं किया। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने इसे अपनी अवमानना मानते हुए अध्यक्ष को न्यायपालिका के सम्मुख उपस्थित होने का निर्देश दिया। विधानपालिका ने इसे न्यायपालिका द्वारा उसके अधिकार क्षेत्र में अनुचित हस्तक्षेप माना। लेकिन न्यायालय ने अपनी कार्यवाही को उचित ठहराते हुए भारत सरकार को अध्यक्ष बोरोबाबू सिंह को अतंतः सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख उपस्थित किया गया और न्यायालय ने उनकी उपस्थिति को पर्याप्त मानते हुए उन्हें छोड़ दिया। इस घटना पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बोरोबाबू सिंह ने इसे संसदीय सर्वोच्चता की हत्या की संज्ञा दी।[11]

इस प्रकार न्यायालय ने अपनी सर्वोच्चता को सुस्थापित करने में सफलता हासिल की। मूलतः यह कहा जा सकता है कि संवैधानिक प्रावधानों के तहत संविधान की व्याख्या करने का दायित्व जो न्यायपालिका को दिया गया तो संभव है कि विधानपालिका से न्यायपालिका एक कदम आगे है जो इन आलेख से सर्वविदित होता है।

सवैधानिक संशोधन का अधिकार–

इस संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय प्रश्न जो प्रायः संसद एवं न्यायपालिका के मध्य विवाद का कारण बनता रहा है। संविधान के संशोधन की संसद की शक्ति के साथ जुड़ा हुआ है। संसद अपनी सर्वोच्चता के आधार पर संविधान में किसी भी प्रकार के संशोधन का निरपेक्ष अधिकार प्राप्त है। इस संदर्भ में विवाद की प्रकृति इसलिये भी जटिल बन गयी है कि सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण प्रायः परिवर्तित होता रहा है। उसके निर्णयों में एकरूपता का अभाव रहा है। अतः अबतक जो प्रमुख संवैधानिक संशोधन हुए है और न्यायपालिका ने इस काल में अनुदार दृष्टिकोण का परिचय दिया है। परिणामस्वरूप संविधान में कुछ महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। संसदीय सर्वोच्चता की मान्यता का अध्ययन इस संदर्भ में किया जा सकता है।

संसदीय सर्वोच्चता एवं न्यायिक अनुदारता का काल–1950–55

इस अवधि में भूमि सुधार, भूमि अधिग्रहण एवं संपति अधिग्रहण आदि से संबंधित अनेक विवाद उत्पन्न हुए। इस अवधि में संसद द्वारा दो महत्वपूर्ण संवैधानिक संशोधन (प्रथम एवं चतुर्थ) पारित किया गया। इस संशोधनों के द्वारा संसद ने सर्वोच्च एवं उच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णय को निस्प्रभावी बनाया गया और अपनी सर्वोच्चता स्थापित की। अतः इन दोनों संशोधनों में निहित प्रश्न एवं संसद द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण का संक्षिप्त अवलोकन आवश्यक हो जाता है-

प्रथम संवैधानिक संशोधन विधेयक–1951

स्वतंत्रता प्राप्ति के अविलंब बाद विभिन्न राज्यों की राज्य सरकारों ने यथा बिहार, मध्य प्रदेश आदि द्वारा जमीदारी प्रथा के उन्मूलन की दिशा में आवश्यक कदम उठाया गया।

इसके द्वारा अनिवार्य भू-अधिग्रहण की व्यवस्था की गयी और साथ ही राज्यों के साथ (रैयतो को प्रत्यक्ष सम्पर्क में) लाने की व्यवस्था की गयी थी। संविधान लागू होने से पूर्व ही राज्य सरकारों द्वारा इस संदर्भ में आवश्यक कदम उठाये गये थे। उतर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश सरकारों के आदेशों को राज्य की न्यायपालिका ने वैध ठहराया था।

लेकिन, बिहार में जमीदारी उन्मूलन संबंधी कानून को पटना उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 31 के आधार पर अवैध धोषित कर दिया। अंततः यह विवाद सर्वोच्च न्यायालय में उपस्थित किया गया। भारत सरकार भूमि सुधार कानून को वैधानिक विवाद का मुद्दा नही बनाना चाहती थी और न ही वह इसे छोड़ने को तैयार थी, क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्वतंत्रता संग्राम के दिनों से ही जमींदारी प्रथा उन्नमूलन के लिये वचनवद्व थी, लेकिन पटना उच्च न्यायालय का निर्णय उसकी प्रतिबद्वता के मार्ग में व्यवधान बनकर सामने आ गया था।

इस प्रकार के वैधानिक विवाद संबंधी व्यवधान को दूर करने के लिये संसद ने 18 जून 1951 को प्रथम संवैधानिक संशोधन विधेयक पारित किया। इस अधिनियम को अतीत से (26 जनवरी 1950) प्रभावी बनाया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान के अनुच्छेद 31 को संशोधित कर दो उपधारा 31 (अ) एवं 31 (ब) जोड़ा गया ओर नवम परिशिष्ट के साथ-साथ जोड़ा गया। अनुच्छेद 31 (अ) द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि कोई ऐसा कानून जिसके द्वारा किसी राज्य द्वारा संपति का अधिग्रहण या स्टेट या उसके किसी

अधिकार पर प्रतिबंध को मूल अधिकारों के अनुच्छेद 14,19 और 31 के आधार पर अवैध धोषित नही किया जा सकता है। जबकि अनुच्छेद 31 (ब) द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि अनुसूची 9 के अंतगर्त कुछ विशिष्ट नियमों या परिनियमों का जो उल्लेख किया गया है उसे अवैध धोषित नही किया जा सकता है। इससे मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है। इसके अर्न्तगत यह भी स्पष्ट किया गया कि किसी सक्षम विधानपालिका द्वारा निर्मित इससे संबंधित निर्मित कानून किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के विपरीत आदेशों के भी लागू रहेगा।[12]

इस प्रकार संसद ने अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रभावशाली ढंग से उपयोग किया और न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णयों को प्रभावहीन बना दिया। परिणाम स्वरूप भूमि सुधार संबंधी विभिन्न कानूनों का संवैधानिक संशोधन कानून (प्रथम) द्वारा वैध करार दिया गया। यह संशोधन मूलतः बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह नामक विवाद की पृष्ठभूमि में किया गया था। इस विवाद में पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने भूमि सुधार अधिनियम को अवैध घोषित कर दिया था, जिसे बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने परिवर्तित कर दिया।[13]

इस संशोधन विधयेक के लक्ष्य के द्वारा विधानपालिका ने भूमि सुधार के संदर्भ में अपनी प्रतिबद्धता को कार्यरूप दिया और इस संदर्भ में न्यायिक निर्णय को बाधक माना। इस संशोधन द्वारा विधानपालिका (संसद) ने अपनी शक्ति एवं सर्वोच्चता को प्रतिस्थापित किया।

वास्तविक स्थिति यह है कि भारत में संविधान सर्वोच्च है। यहॉ संवैधानिक सर्वोच्चता कायम है। यहॉ की संसद न तो ब्रिटेन की तरह संप्रभु है और न ही न्यायपालिका अमेरिका की तरह विधि की उचित प्रक्रिया के आधार पर कार्य करना पड़ता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि न्यायपालिका को सरकार के प्रगतिशील कानूनों को उदार व्याख्या करनी चाहिए। न्यायालय के न्यायाधीशों को न तो सताधारी दल के दर्शन के आधार पर कार्य करना चाहिए और न ही अपनी मान्यताओं के आधार पर कार्य करना चाहिए। ऐसा होने पर ही दोनो के मध्य टकराव की स्थिति में कभी संभव है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. फुलचंद्र (सं0) इंडियन पार्लियामेंट में एस0एन0जैन का लेख 'पार्लियामेंट एवं जुडिसयरी (इन्स्टीट्यूट ऑफ कन्स्टीट्यूसन एण्ड पार्लियामेंट स्टीडीज, दिल्ली) पृ0 - 1
2. ए0आई0आर0 (इलाहाबाद, 1962) पृ0 301
3. ए0आई0आर0 (इलाहाबाद, 1962) पृ0 128
4. द टाइम्स ऑफ इंडिया (पटना)
5. माउसन, मैनुअल ऑफ लेजिसलेटिव प्रोसिडियर (1953) पृ0 34-41
6. ए0आई0आर0 (एस0 सी0 1695) पृ0 745
7. डी0 एन0 बनर्जी, द सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया ऑन द कन्लिक्ट ऑफ ज्यु रिशडिक्शन विटविन द लेजिसलेटिव एसेम्बली एण्ड द हाई कोर्ट ऑफ उत्तरप्रदेश एन इमैल्यूशन (1966) पृ0 58
8. ए0आई0आर0 (चेन्नई 1961) पृ0 450
9. एन0आई0आर0 (चेन्नई 1961) पृ0 450

10. लिंक (नयी दिल्ली) 18 सितम्बर 1960
11. द टाइम्स ऑफ इंडिया (पटना)
12. प्रथम संवैधानिक संशोधन- 1951
13. कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य, ए0 आई0 आर0 पटना 1961, पृ0 91 के पूर्ण पीठ का निर्णय जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने बिहार राज्य बनाम कामेश्वर सिंह के अपील में परिवर्तित किया, ए0 आई0 आर0 1952, पृ0 252।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

बस्तर जिले की वर्तमान राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था

* सुनीता मिश्रा
** डी.एन. सूर्यवंशी, ** संध्या चौधरी

सारांश– *प्रस्तुत शोध पत्र में बस्तर जिला की वर्तमान राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था के संबंध में अध्ययन किया गया है। वस्तुतः प्रजातंत्र में व्यवस्था रूपी गाड़ी को खींचने के लिये प्रशासनिक नेतृत्व एवं राजनीतिक नेतृत्व के दो प्रमुख पहिये कार्य करते हैं। इनमें से एक भी पहिया कमजोर, निष्क्रिय अथवा पटरी से उतरता है तब व्यवस्था रूपी गाड़ी वहीं रूक जाती है। इसलिये ग्राम स्तर पर इन दो पहियों का अंतर्संबंध एवं समन्वय का सकारात्मक होना विकास के लिये आवश्यक है।*

मुख्य शब्द– राजनीतिक नेतृत्व, प्रशासनिक व्यवस्था, संवैधानिक प्रक्रिया।

प्रस्तावना– राजनीतिक नेतृत्व के बिना विकास असंभव है। जिस क्षेत्र में जैसा राजनीतिक नेतृत्व होगा उस क्षेत्र का प्रशासनिक नेतृत्व उसी के अनुरूप होता है। बस्तर जिला प्रशासन में प्रशासनिक नेतृत्व और राजनीतिक नेतृत्व के बीच अंतर्संबंधों को स्थापित करने के लिये प्रजातांत्रिक तरीकों से संवैधानिक परिधि में जो कार्य संपन्न किये जाते हैं उन पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया जाता है क्योंकि राजनीतिक व प्रशासनिक व्यवस्था में कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायपालिका तीन प्रमुख शासन के आधार स्तंभ है, जो व्यवस्था को गांव के सरपंच से लेकर राष्ट्रपति तक संवैधानिक प्रक्रिया से जोड़कर रखता हैं। वस्तुतः प्रजातंत्र में व्यवस्था रूपी गाड़ी को खींचने के लिये प्रशासनिक नेतृत्व एवं राजनीतिक नेतृत्व दो प्रमुख पहिये कार्य करते हैं। इनमें से एक भी पहिया कमजोर, निष्क्रिय अथवा पटरी से उतरता है तब व्यवस्था रूपी गाड़ी वहीं रूक जाती है। इसलिये ग्राम स्तर पर इन दो पहियों का अंतर्संबंध एवं समन्वय का सकारात्मक होना विकास के लिये आवश्यक है। ऐसे अनेक उदाहरण है जहां प्रशासनिक और राजनीतिक अतर्संबंधों में नेतृत्व करते समय एक दूसरे की अनदेखी की गई अथवा संवैधानिक नियमों के विरूद्ध तानाशाहीपूर्वक मनमाने ढंग से निर्णय लेकर कार्य किया गया, वहां जनता का शोषण हुआ है, विकास की गति रूकी है और व्यवस्था अपने उद्देश्य में असफल रही है। इसलिये प्रत्येक मंत्री अपनी पसंद का जिलाधीश, पुलिस अधीक्षक, या अन्य अधिकारी की मांग अपने जिले में करता रहा है, क्योंकि कई बार जिला स्तर पर आदेश की एकता में विवाद उत्पन्न हो जाता है और आदेश ही विवादास्पद बन जाते हैं, जिससे उनका क्रियान्वयन या

* निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, नवीन महाविद्यालय, खुर्सीपार, भिलाई
** प्राचार्य, सह निर्देशक, सेठ आर.सी.एस. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, दुर्ग (छ.ग.)
*** शोध छात्रा

परिपालन कराना संभव नहीं हो पाता। उदाहरण के लिये यदि जिलाधीश को प्रभारी मंत्री, क्षेत्रीय विधायक, सांसद और मुख्यमंत्री एक ही कार्य के लिये अलग-अलग प्रकार के निर्देश जारी करेंगे तब जिलाधीश किसी भी एक आदेश का पालन करेगा। एक साथ सबके आदेशों का पालन करना संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में कार्य रूक जाता है और प्रशासनिक अधिकारी पदसोपान की प्रक्रिया को पूरा करने में लगा रहता है।

प्रशासनिक नेतृत्व प्रत्यक्ष रूप से तो शक्ति संघर्ष में भाग नहीं लेता अर्थात् वह चुनाव नहीं लड़ता, आंदोलन में भाग नहीं लेता और दबाव समूहों की दबाव की राजनीति मे नहीं पड़ता और दलों की कार्यवाही में भाग नहीं लेता, फिर भी जिले में व्यवस्थित प्रशासनिक नेतृत्व के माध्यम से ही सारे ग्रामीण विकास की योजनाएं अब तब लागू की जाती रही है। अतएव प्रशासनिक नेतृत्व केन्द्रित हो जाता है। इन योजनाओं के क्रियान्वयन के लिये और अपनी शिकायतों के निवारण और मांग की पूर्ति के लिए ग्रामीण, जिला प्रशासनिक नेतृत्व के पास पहुंचते ही रहते है। स्वयं मंत्री और सत्तारूढ़ दल का राजनीतिक नेतृत्व चाहना है कि जिला प्रशासनिक नेतृत्व उनका समर्थन करे, उनके कार्यो को करे जिससे उनके वोट बैंक पर प्रभाव विपरीत न पड़े।

प्रश्न- क्या जिला प्रशासन एवं राजनीतिक नेतृत्व के बीच आपसी तालमेल व समन्वय हो रहा है?

सारणी

क्रं.	**सहमति**	**उत्तरदाताओं की संख्या**	**प्रतिशत**
1	हाँ	180	60
2	नहीं	105	35
3	कह नहीं सकते	15	5
	योग	**300**	**100**

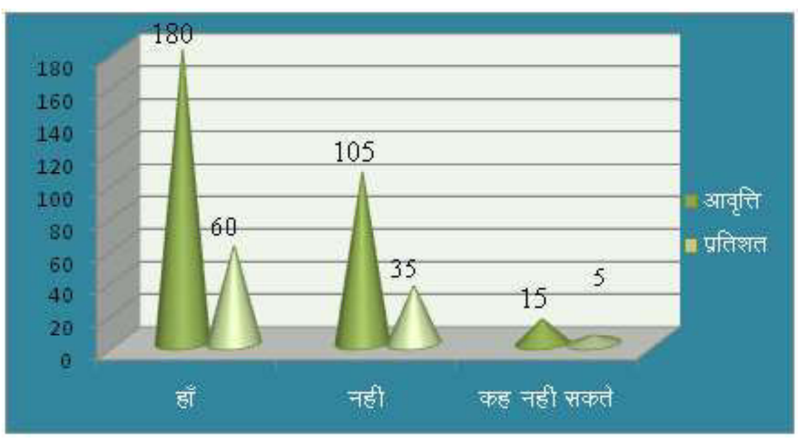

उत्तरदाताओं ने यह भी बताया है कि वर्तमान बस्तर जिला प्रशासन और राजनीतिक नेतृत्व का सफल संचालन एवं दोनो के बीच अंतर्संबंध मधुर होने का प्रमुख कारण यह भी है कि बस्तर जिले के सांसद, स्थानीय विधायक, मंत्री, बस्तर नगर निगम की महापौर

और बस्तर जिला पंचायत अध्यक्ष सभी एक राजनीतिक दल के है, इसलिए बस्तर जिला प्रशासन एवं राजनीतिक नेतृत्व के बीच किसी भी मामले में कोई अंतर्विरोध नहीं है और दोनों स्तर पर अंतर्संबंध का क्रियान्वयन सकारात्मक रूप से हो रहा है।

समय-समय पर जिला प्रशासन व राजनीतिक नेतृत्व के बीच बैठकें आयोजित कर समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता रहा है जिससे अनेक समस्याओं का निराकरण कर लिया जाता है। 35 प्रतिशत उत्तरदाता इस कथन से सहमत नहीं है उनके विचारो के अनुसार जिला प्रशासन एवं राजनीतिक नेतृत्व के बीच अलग-अलग समय व भिन्न भिन्न विषयों पर हमेशा मतभेद होते रहते है। चूंकि यह माना जा रहा है कि विपक्ष को राजनीतिक नेतृत्व के आपसी समन्वय से कोई लेना-देना नहीं होता फिर भी राज्य सरकार एवं जिला प्रशासन का हस्तक्षेप होता रहता है। कई मुद्दों को लेकर जिला प्रशासन एवं राजनीतिक नेतृत्व के बीच हमेशा शीतयुद्व चलते रहता है, वहीं 5 प्रतिशत उत्तरदाता तटस्थता बनाते हुए जवाब नहीं दिया।

प्रश्न- वर्तमान बस्तर जिला प्रशासन में जिलाधीश व पुलिस अधीक्षक के आपसी समन्वय का अभाव है?

सारणी क्रमांक

क्रं	सहमति	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	हां	60	20
2	नहीं	210	70
3	कह नहीं सकते	30	10
	योग	**300**	**100**

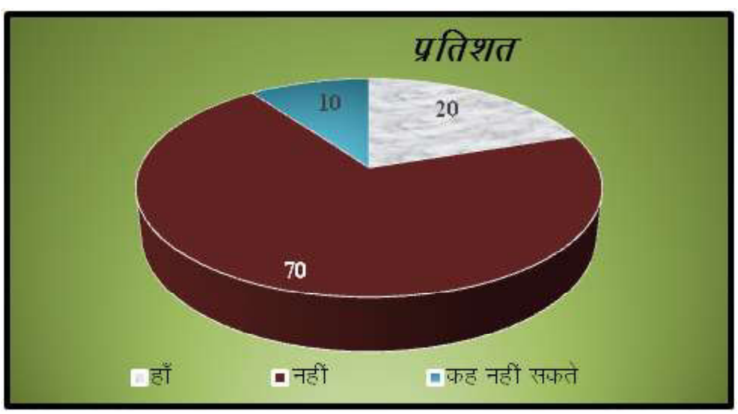

उक्त तालिका से ज्ञात होता है कि 20 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार करते हैं कि बस्तर जिला प्रशासन में जिलाधीश व पुलिस अधीक्षक के आपसी समन्वय का अभाव है क्योंकि दोनों का कार्यक्षेत्र अलग-अलग है। पुलिस विभाग का कार्य जिला प्रशासन को सहयोग प्रदान करना, शांति सुरक्षा स्थापित करना है। दोनों अलग-अलग राजनीतिक नेतृत्व के आधार पर समन्वय स्थापित करते है। वहीं 70 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात को स्वीकार नहीं करते उनके विचारों के अनुसार वर्तमान में बस्तर जिला प्रशासन

में जिलाधीश व पुलिस अधीक्षक दोनों के बीच आपसी समन्वय है। दोनो ही युवा हैं और दोनों एक दूसरे को सहयोग करते है। वर्तमान समय में बस्तर जिले में नक्सली गतिविधियों को दोनों ने चिंता का विषय बताया है। दोनों स्तर पर समन्वय का क्रियान्वयन का सकारात्मक रूप से हो रहा है। क्योंकि जिले के लिये दोनों का सहयोग महत्वपूर्ण है, वहीं 10 प्रतिशत उत्तरदाता ने तटस्थता बनाते हुए जवाब नही दिया।

निष्कर्ष–

यह स्थिति वर्तमान परिप्रक्ष्य में प्रतिबद्व नौकरशाही के विकसित होने का संकेत करती है। अधिकारी, राजनीतिक नेतृत्व विशेष से जुड़े रहते हैं और उन्ही के आदेश का पालन करते हैं। बस्तर जिले में छत्तीसगढ़ राज्य की स्थापना के बाद से ही यहां दो प्रमुख राजनीतिक दलों का वर्चस्व कायम है। कांग्रेस और भाजपा। पहली सरकार कांग्रेस की थी तो अभी वर्तमान सरकार भाजपा की है। दोनों ही दलों में जनप्रतिनिधि अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये विभिन्न प्रकार से जिला प्रशासन पर दबाव डालते रहते है तो सत्तारूढ़ दल भाजपा का नेतृत्व, स्थानीय विधायक, मंत्री सांसद और मुख्यमंत्री स्तर से दबाव डालकर अनेक उद्देश्यों को पूरा करना चाहते है।

वर्तमान में जिला प्रशासन और राजनीतिक नेतृत्व का सफल संचालन एवं दोनों के बीच अंर्तसंबंध मधुर होने का प्रमुख कारण यह भी है कि बस्तर जिले के सांसद, स्थानीय विधायक, मंत्री, बस्तर नगर निगम की महापौर और बस्तर जिला पंचायत सभी भाजपा के है। इसलिये बस्तर जिला प्रशासन एव राजनीतिक नेतृत्व के बीच किसी भी मामले में कोई अंतर्विरोध नहीं है और दोनों स्तर पर अंतर्संबंध का क्रियान्वयन सकारात्मक रूप से हो रहा है। इसलिये उनका नेतृत्व भी महत्वपूर्ण होता है। बस्तर जिले में वर्तमान जिलाधीश और जिला पुलिस अधीक्षक दोनों ही युवा है और दोनों का तालमेल वर्तमान राजनीतिक नेतृत्व को प्रभावित करता है। अतः बस्तर जिला प्रशासन एवं राजनीति का ढांचा राजनीतिक और प्रशासनिक नेतृत्व के अंतर्संबंधों में किसी प्रकार से विवादास्पद नहीं रहा है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. तरक्की का सफर, बस्तर जिला छत्तीसगढ, पृष्ठ 1-50, संस्कृति विभाग छत्तीसगढ़ शासन 2008
2. समर्थन रायपुर छ.ग. वर्ष 2005 पृष्ठ विविध आयाम।
3. जिला पंचायत बस्तर का वार्षिक प्रतिवेदन 2007
4. बदली तस्वीर बदली तकदीर छत्तीसगढ़ जनसंपर्क छत्तीसगढ़ शासन रायपुर, छत्तीसगढ़, 2007 पृष्ठ 25
5. छत्तीसगढ़ विकास पथ पर छत्तीसगढ़ संवाद रायपुर छत्तीसगढ़ 2006 पृष्ठ 15
6. गोंड के. के. (2001) भारत में ग्रामीण नेतृत्व का उदीयमान स्वरूप मानक पब्लिकेशन दिल्ली, पृष्ठ 35
7. चौधरी डी. एम. (2001) इमजिंग रूरल लीडरशिप इन इंडिया, स्टेट्स लंदन पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृष्ठ 28
8. घोष भोलानाथ (1996) रूरल लीडरशिप एंड डेव्हलपमेंट मोहित पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृष्ठ 48

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

गोवंश एवं ग्रामीण पुनर्रचना

* दीपक कुमार पाण्डेय
** देवेन्द्र प्रसाद पाण्डेय

सारांश– *गोवंश एवं ग्रामीण एक दूसरे के संपूरक हैं। गोवंश को भारतीय समाज में एक विशेष स्थान मिला हुआ है। गोवंश को ये सम्मान केवल धार्मिक दृष्टि अथवा आस्था के चलते नहीं मिला है । गोवंश के दैवीय गुणों की कारण ही गोवंश को विशेष जीव माना गया है। मानव की भांति गोवंश की भी एक प्राकृतिक जोड़ी है नर–मादा की जोड़ी। दोनो का अपना अलग–अलग महत्त्व है। गाय और बैल दोनों ने ग्रामीणजनों को स्वावलंबी बनाया है और उन्हें आर्थिक रूप से सशक्त भी किया है। निश्चित रूप से ग्रामीणों ने भी सदियों से गोवंश को अपने सबसे करीबी माना है और उसे अपने परिवार का सदस्य मानकर अपने जीवन का निर्वाह करता चला आ रहा है। भारत के कई दार्शनिकों ने ये माना है कि राष्ट्र की आत्मा गांवो में ही बसती है। गाँव में धारणीय विकास की जड़े विद्यमान हैं।गांवों को स्वयंपोषी बनाने के लिए गोवंश का बहुत योगदान है। सदियों से गोवंश किसानों,पशुपालकों तथा लघु उद्योगकर्मियों का साथी बना रहा। जिसके कारण वे समय के साथ स्वावलंबी होते चले गए। गांवों में विकास की परिकल्पना बिना गोवंश के नहीं की जा सकती है। क्योंकि गोवंश के नर और मादा की जोड़ी केवल जीवमात्र नहीं हैं। यह ग्रामीणों के बहुत से उद्देश्यों को पूरा करने वाली एक जैविक मशीनरी है। इसलिए कहा जा सकता है कि गोवंश एवं ग्रामीणों का अन्योन्याश्रय का संबंध है। आज के मशीनी युग में गोवंश ही ग्रामीणों को आर्थिक रूप से सशक्त बना सकता है। प्रस्तुत शोध में "गोवंश का ग्रामीणों से सम्बन्ध का अध्ययन किया गया है तथा "गोवंश द्वारा ग्रामीणों का उत्थान कैसे हो " इस पर प्रकाश डाला गया है। यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।*

मुख्य शब्द– गोवंश, किसान, पशुपालन, ग्रामीणों का उत्थान, संशोधन

1. प्रस्तावना– राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ने गांवों को भारत की आत्मा कहा था। उनकी बात सही भी थी क्योंकि शहरीकरण की बावजूद आज भी भारत की 68.4 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्र में ही निवास करती है।[1] इसका मतलब ये है कि दो तिहाई भारतवासी ग्रामीण हैं। ग्रामीणजन सशक्त होंगे तभी समूचा राष्ट्र सशक्त होगा। गाँव भारतीय समाज की सूक्ष्म ग्रामीण इकाई है। इसलिए गाँव का विकास होना अतिआवश्यक है। भारत रत्न नानाजी देशमुख जी ग्राम विकास को दूसरी दृष्टि से देखते थे।उन्होने

* शोधार्थी, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)
** महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

ग्रामीण विकास को"युगानुकूल ग्रामीण पुनर्रचना" शब्द से परिभाषित किया था।भारत रत्न तथा पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम ने भी ये माना था कि ग्रामीण विकास गाँव के संसाधन के अनूकूल होना चाहिए।[2] विकास का यह दृष्टिकोण भौतिक और आध्यात्मिक दोनों था। ग्रामीण विकास का यही ढांचा होना भी चाहिए।

ग्रामीण विकास का सही अर्थ है ग्रामीणजनों के आर्थिक तथा सामाजिक स्तर में सुधार लाना। लोकतंत्र स्थापित होने के बाद देश की सरकारें विभिन्न योजनाओं के माध्यम से ग्रामीणों के सामाजिक स्तर को बढ़ाने में प्रयासरत हैं। देश को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाने के लिए नित नई-नई योजनाओं की रूपरेखा रखी जाती रहीं है। ग्रामीण ही नहीं अपितु किसी भी राष्ट्र का शहर अथवा नगर निकाय तभी समृद्ध बनेगा जब वहाँ के लोग संसाधन आधारित क्रियाकलापों में अपना श्रम और समय देंगे। इसी परिप्रेक्ष्य में ग्रामीणों ने गोवंश को हमेशा दिव्य संसाधन का रूप माना है तथा उसे सनातन काल से ही अपने जीवन की अधिकतम गतिविधियों में उसकी भरपूर सहायता ली है।

किसानों अथवा गोपालकों को व्यक्तिगत रूप से लाभान्वित करने के अलावा गोवंश ने सामाजिक स्तर पर भी ग्रामीणों को लाभ पहुंचाया है। गोवंश की उपस्थिति से ग्रामीणों के अंदर सहकारी समाज स्थापित करने की भावना जागृत हुई है। एक अकेला गोवंश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ग्रामीणों को इतना लाभ पहुंचा सकता है कि जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। हमारे पूर्वजों ने गोवंश के लाभ और उसकी महत्ता को देखते हुए अनगिनत साहित्यों की रचना कर डाली। वेद,पुराण,उपनिषद,वेदांग,स्मृति के अलावा और बहुत से धर्म ग्रंथ हैं जो गोवंश के वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा धार्मिक महत्त्व का भली भाँति उल्लेख करते हैं।[3]

2. ग्रामीणों क्षेत्रों में निहित हमारी परंपरागत व्यवस्था-

ये सार्वभौमिक सत्य है कि ग्रामीण क्षेत्र ही सामाजिक जीवन का प्रथम चरण था। मानव जंगल से निकलकर जो कस्बा बनाया,वह गाँव ही था। मानव अन्य जीवों की भांति नैसर्गिक रूप से स्वावलंबी था। इसलिए जंगल से निकलकर भी वह अपने मूलभूत गुणों को नहीं भूला था। उसने गाँव के रूप में जो आशियाना बनाया वह संसाधन सम्पन्न था। आग की खोज और अन्न के उत्पादन के अलावा पशुपालन की दृष्टि भी मानवों को सामाजिक प्राणी बनाने लगी थी। मानवों ने अपनी चेतनाशक्ति का इस्तेमाल करके उन्हीं जीवों को पाला जो मानव को लाभान्वित कर सकते थे। इस प्रकार गोवंश को पाल कर मानव चराचर जगत का एक अभूतपूर्व जैविक संसाधन प्राप्त कर चुका था।

मानव परंपरागत तरीके से अपने जीवन का निर्वाह करने लगा। मानव पहले जंगली था। अब वह ग्रामीण बन चुका था। शनैः शनैः ग्रामीणजन की मुख्यतः चार व्यवसायों में लिप्त होते गए। इन सभी कार्यों में कृषि कार्य ग्रामीणों द्वारा जाने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। ग्रामीणों के मुख्यतः चार व्यवसाय निम्नलिखित थे-

1. पशुपालन
2. कृषि कर्म
3. घरेलू अथवा लघु उद्योग
4. अन्य परंपरागत कार्य

दण्डचार्ट : 2.1 ग्रामीणों का व्यवसाय

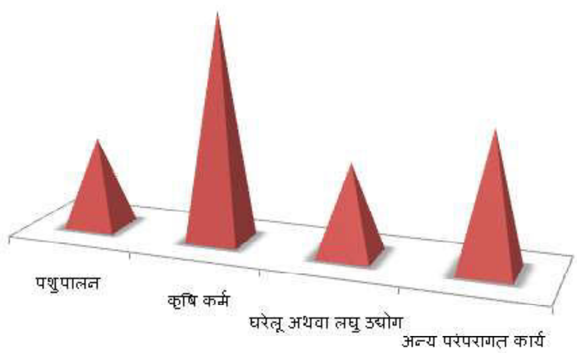

समय के साथ ग्रामीणों और गोवंश के बीच में अद्‌भुत संबंध बनता चला गया। गोवंश ग्रामीणों के सभी कार्यों में सहयोग करता था। गोवंश से मिलने वाला प्रत्येक द्रव्य ग्रामीणों के लिए खास पदार्थ था। गोवंश के मिलने वाला दूध, गोबर, गोमूत्र एवं नर गोवंश की श्रमशक्ति ग्रामीणों द्वारा की जाने वाली सभी गतिविधियों में उपयोग की जा सकती थी। ग्रामीण क्षेत्रों की रचना मानवों की कर्मठता और गोवंश जैसे दिव्य जीवों की उपस्थिति से संभव हो पाया। गोवंश की आर्थिक ताकत जानकर ग्रामीणों ने उसे अपने परिवार का हिस्सा मान लिया। ये भी सार्वभौमिक सत्य है कि चराचर जगत का समस्त जीव अपना जीवन निर्वाह करने के लिए स्वतंत्र है। जीव अपने जरूरत के मुताबिक संसाधनों को देखते हुए कहीं भी बस सकता है। ग्रामीणों के गांवों में बसने की घटना प्राकृतिक प्रव्रजन ही है। ग्रामीण लोगों ने गोपालन के अनुभवों से काफी कुछ सीखा और उसे तकनीकी का नाम दिया। आज की नवविकसित भले ही तकनीकियाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शब्दावली बन चुकीं हों किन्तु इन तकनीकियों का प्रादुर्भाव ग्रामीणजनों ने गावों में ही किया था।[4]

ग्रामीणजन गोवंश के प्राप्त द्रव्य को जनमंगलकारी वरदान मानते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि किसी जीव का दुग्ध, गोबर और गोमूत्र इतना विशिष्ट होना किसी वरदान से कम नहीं है। संसार में और भी बहुत से विचित्र जीव हैं।वे भी ग्रामीणों को लाभान्वित करते हैं। लेकिन गोवंश से तुलना करने पर कोई और जीव गोवंश जितना लाभ नहीं पहुंचा सकता है। बात केवल गोदुग्ध तथा गोवंश के मल-मूत्र की नहीं है। बात है उस प्रकृति प्रदत्त लाभकारी द्रव्य की,जो ग्रामीणों के साथ-साथ सम्पूर्ण परिस्थितिकी तंत्र के लिए उत्तम द्रव्य है। गोवंश से मिलने वाले लाभ को निम्नलिखित दण्डचार्ट से प्रदर्शित किया जा रहा है।

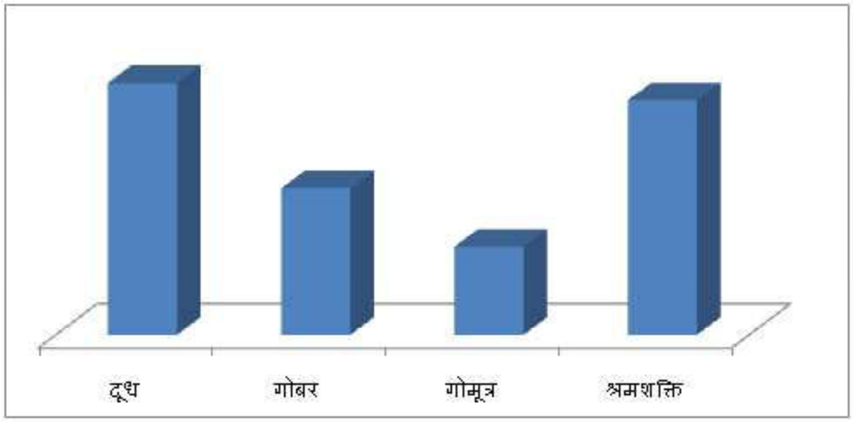

3. **स्वावलंबी थे हमारे ग्रामीण**– ग्रामीणजन स्वावलंबी थे। स्वावलंबन का यह गुण उनके अंदर व्याप्त कर्मठता एवं गोवंश के सहयोग से भी आया था। कृषिकर्म में ग्रामीण स्वावलंबी तब बना जब कृषि में उपयोग होना वाला खाद एवं उर्वरक गोवंश के त्याज्य पदार्थ अर्थात गोबर तथा गोमूत्र से बनाए जाने लगे। पौधों को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़े मकौड़ों को मारने के लिए गोमूत्र आधारित दवाइयाँ बनाई जाने लगी। गोमूत्र आधारित कीटनाशक फसलों को जीव-जंतुओं से होने वाले नुकसान से बचाते थे। बीज के अतिरिक्त खेतों में इस्तेमाल किया जाने वाला प्रत्येक अपद्रव्य गोवंश द्वारा प्राप्त होता रहा। इन अपद्रव्यों के अतिरिक्त खेतों की जुताई करने के लिए गोवंश का नर अर्थात बैल अपना श्रमदान करता रहता था।[5]

खेती के अतिरिक्त ग्रामीण पशुपालन भी करता रहा है। ग्रामीणों द्वारा पशुपालन करने का एक विशेष ध्येय था। दुग्ध प्राप्त करना। गोवंश इसमें भी पीछे नहीं रहा। गोवंश की मादाएँ (गाय) ग्रामीणों को भारी मात्रा में दुग्ध उपलब्ध कराने में सक्षम थी। गोवंश की कुछ नस्लें ऐसी भी हैं जो एक दिन में 22-40 लीटर तक दूध मुहैया करा सकती हैं। इजराइल ने भारतीय गोवंश की नस्ल गीर से एक दिन 120 लीटर दूध का उत्पादन करके दिखाया है। गुजरात राज्य की मूल गोवंश गीर के अतिरिक्त हरियाणा,थारपारकर,बेचूर,काकरेज,गंगातीरी तथा साहिवाल भी गोवंश की उच्च्य दर्जे की नस्लें हैं।[6]

ग्रामीणों को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए भोजन पकाना पड़ता है। उसके लिए ईंधन बहुत आवश्यक सामग्री है। गोवंश ने इस आवश्यकता को पूरा करने का भी जिम्मा ले लिया है। गोवंश ठोस तथा गैसीय ईंधन दोनों प्रकार के ईंधन उपलब्ध करा सकता है। यदि गोवंश के मल अर्थात गोबर को एक आकृति देकर सुखा लिया जाये तो गोबर का एक टुकड़ा ठोस ईंधन में बदल जाता है। यह ईंधन ग्रामीणजनों की रसोई में खाना पकाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त गोबर अपने विशेष गुणों के कारण गैसीय ईंधन में भी परिवर्तित हो जाता है। यदि गोबर और जल के मिश्रण में कीण्वन अभिक्रिया होती है तो उत्पाद के रूप में मीथेन गैस बनती है। ग्रामीणों ने इस

गैस का जनन करके धूम्ररहित ईंधन की नींव डाल दी थी।ग्रामीणों को खेती और पशुपालन के अतिरिक्त रोजमर्रा की गतिविधियों में वाहन की आवश्यकता थी।

ग्रामीणों को ऐसी वाहन चाहिए थे जो नाना प्रकार की सामग्री का भी परिवहन कर सकें तथा मानव झुंड को यातायात सुविधा प्रदान कर सकें। इस सुविधा को प्रदान करने के लिए नर गोवंश (बैल) बैलगाड़ी का रूप लेकर ग्रामीणों को भरपूर सेवाएँ दी हैं। बैल अपनी शारीरिक शक्ति से इतना सक्षम है कि यह इतना भारी -भरकम कार्य बड़ी आसानी से कर सकता है।

गोवंश के नर- मादा की जोड़ी ने ग्रामीणों को इतना स्वावलंबी बना दिया था कि वे विकास के मार्ग पर अनवरत रूप से चल पड़े थे। ये विकास विध्वंसक नहीं बल्कि धारणीय था। गोवंश ने स्वावलंबी ग्रामीण समाज के अतिरिक्त स्वयंपोषी समाज की आधारशिला रख दी थी। ग्रामीणजन गोवंश से निम्नलिखित कार्यों को पूरा कर सकते थे।[7]

1. दुग्ध उत्पादन
2. कृषि कार्यों के लिए खाद निर्माण
3. कीटनाशक का निर्माण
4. ठोस तथा गैसीय ईंधन का निर्माण
5. सामग्री परिवहन

वृत्तचित्र 3.1 गोवंश के अनुप्रयोग

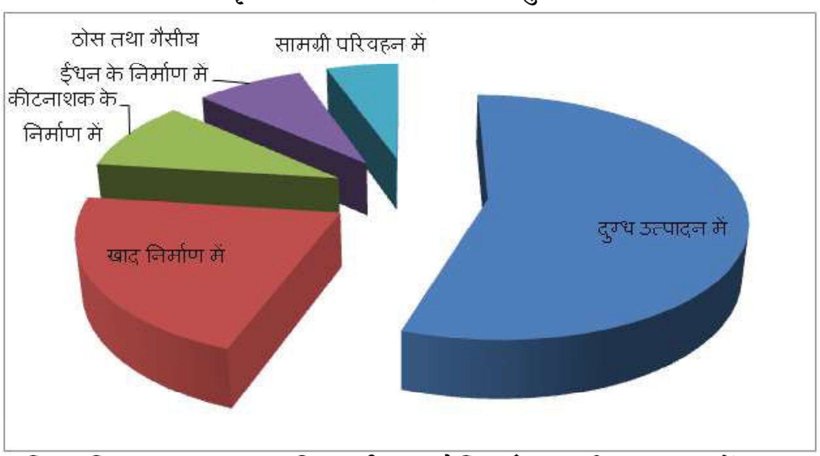

4. **विकसित समाज की नई चुनौतियाँ**– ग्रामीण भारत में आज की आवश्यकता नई तकनीकियों की है। ये तकनीकियाँ ऐसी होनी चाहिए जो किसी कार्य को शीघ्रता से पूरा कर सके। वर्तमान के दौर में भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में कई बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए,गांवों में वैकल्पिक विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता है। जहां लघु सिंचाई मशीन, चारा काटने की मशीन तथा बैल आधारित छोटे किन्तु नए उद्योग चलाये जा सके। गोवंश बायोगैस के रूप में ईंधन ऊर्जा प्रदान का सकता है। बैल की श्रमशक्ति से बिजली पैदा की जा सकती है। गाय और बैल के द्वारा सम्पन्न होने वाले कार्य के अलग उन्हें नए कार्यों में शामिल किया जाना चाहिए। ग्रामीण

पुनर्रचना की दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ कार्य होगा।

इस परिप्रेक्ष्य में भारत का भारतीय प्रौद्यौगिकी संस्थान निरंतर शोध कर रहा है। इस संस्थान ने बायो गैस आधारित कई नवीनतम तकनीकियाँ विकसित कर ली है। यहाँ ऐसा सिंचाई पंप बनाया गया है जो बायो गैस से चलता है। इस संस्थान में भी ऐसे भी प्रयोग सफल हुए हैं जो बायो गैस के माध्यम से हल्के वाहन को भी चला सकें।ग्रामीण पुनर्रचना के लिए यह बहुत ही अच्छा कदम है। यदि इस शोध का इस्तेमाल ग्रामीण ग्रामीण क्षेत्रों में किया जाएगा तो वर्तमान दौर में भी गोवंश नई तकनीकियों में समाहित होकर उत्कृष्ट बनाता जाएगा।[8]

अमेरिका में एक विश्वविद्यालय है - मिशीगन विश्वविद्यालय। यहाँ हुए एक शोध में पाया गया है कि गाय की आंतों में बायोयूल होता है। यह इंजाइम के रूप में होता है। यदि इसके इंजाइम को किसी पादप पौधे पर डाल दिया जाय तो पर्याप्त मात्रा में बायोयूल का जनन किया जा सकता है। निश्चित रूप से यह शोध ग्रामीण क्षेत्र में एक नई क्रान्ति ला सकता है।[9]

5. **गोवंश एवं ग्रामीण पुनर्रचना**– ग्रामीण विकास प्रदूषणकारी मशीनों से नहीं अपितु संधारणीय तकनीकियों से ही संभव है। साथ दी ये भी आवश्यक है कि ये तकनीकियाँ पर्यावरण हितैषी हों। भारत में ग्रामीण पुनर्रचना बिना गोवंश के संभव नहीं है क्योंकि यह अद्‌भुत जीव कई प्रकार से ग्रामीणों को उपयोगी द्रव्य तथा श्रम के रूप में यांत्रिक ऊर्जा प्रदान कर सकता है। विज्ञान, आध्यात्मिकता, कला और सामाजिकता ग्रामीण भारत के लिए महत्त्वपूर्ण है। इन बुनियादी तत्वों के बिना गांवों की कल्पना संभव नहीं है।इन सभी बुनियादी तत्वों में गोवंश ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है। विज्ञान की खोज आज अपने उन्नत शिखर पर है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीणजन आधुनिक तकनीकों से निर्मित यंत्रों उपयंत्रों तथा कृषि उत्पादों का इस्तेमाल कर रहें हैं। हम विकास के अत्याधुनिक माडल को पीछे नहीं धकेल सकते किन्तु इन तकनीकियों में गोवंश का सदुपयोग सुनिश्चित कर सकते है। यही ग्रामीणजनों तथा राष्ट्र को आर्थिक तथा सामाजिक स्तर पर मजबूत बनाएगा।

6. **शोध का परिणाम एवं भावी निहितार्थ**– आज भी दो तिहाई भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। राष्ट्र की उन्नति के दृष्टिकोण से उन्हें नजरंदाज नहीं किया जा सकता। ग्रामीणजन कमजोर होंगे तो समूचा राष्ट्र कमजोर हो जाएगा। इसके अलावा गोवंश जैसे दिव्य जीव को विज्ञान की उन्नत तकनीकियों से अलग-थलग रखना हमारी लापरवाही को दर्शाता है। विश्व की 16 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या भारत में हैं। किंतु दुनियाँ के कुल कोयले का पाँच प्रतिशत ही भारत में उपलब्ध है। भारत में हाइड्रोकार्बन रिजर्वायर की प्रतिशतता भी दशमलव के अंक में है। वैश्विक स्तर पर ऊर्जा की आवश्यकता को देखते हुए ये निष्कर्ष निकलता है कि भारत में गोवंश को एक महत्त्वपूर्ण जैविक ऊर्जा स्रोत मानते हुए हरित उत्पादकता की ओर आगे बढ़ाना पड़ेगा।[10] जिसके लिए

1. वर्तमान में विकसित नई तकनीकियों में गोवंश के अनुप्रयोगों को सुनिश्चित करना पड़ेगा।
2. बायोगैस का प्रयोग वाहनों में करने के लिए तकनीकी बदलाव करने होंगे।इससे बायो गैस उत्पादक गावों में आर्थिक समृद्धि आएगी।

3. **अधिक दुग्ध उत्पादक गोवंश नस्लों का प्रवर्धन कर गोवंश की जनसंख्या को बढ़ाने का प्रयास करना पड़ेगा।**
4. **उच्च शिक्षा एवं तकनीकी पाठ्यक्रम में गोवंश शामिल होना चाहिए। जिसमें उसके वैज्ञानिक तथ्यों का उल्लेख हो। इससे विद्यार्थियों को गोवंश के प्रति रुझान बढ़ेगा तथा और भी शोध कार्य सम्पन्न होंगे।**

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. http://www-dataforall-org/dashboard/censusinfoindia_pca/ अभिगमन तिथि 21 जनवरी 2019
2. http://vskbharat-com समाज-और-स्वयंसेवक-मिलकर-क अभिगमन तिथि 21 जनवरी 2019
3. गोयंदका श्रीजयदयालजी(1945), गो महिमा औरगोरक्षा की आवश्यकता,गोअंक,गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 29-35
4. बंका दीपक(2012), ग्रामीण स्वावलंबन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 79-83
5. दीक्षित राजीव (2013), गौ-गौवश आधारित स्वदेशी कृषि, स्वदेशी प्रकाशन,वर्धा, पृष्ठ संख्या 23
6. बंका दीपक(2012), ग्रामीण स्वावलंबन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 99
7. करपात्री जी महाराज (1995), गोवंश भारतीय जीवन का मूलाधार, गोसेवा अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या 67 से 71
8. भारद्वाज, गौरीशंकर, गोरक्षा-राष्ट्र रक्षा (2008), गोसेवा जन सेवा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 55
9. भारद्वाज, गौरीशंकर, गोरक्षा-राष्ट्र रक्षा (2008), गोसेवा जन सेवा, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 56
10. बंका दीपक(2012), ग्रामीण स्वावलंबन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 161

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

जिला सहकारी केंन्द्रीय बैक द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड के अन्तर्गत अल्पावधि कृषि ऋण के वितरण एवं वसूली का अध्ययन

* अमित कुमार ठाकुर
** ओ.पी. चन्द्राकर

सारांश– *राष्ट्रीयकृत तथा अन्य व्यावसायिक बैंकों के साथ प्रतिस्पर्धा में बने रहने हेतु बैंक द्वारा अपनी समस्त शाखाओं को कम्प्यूटरीकृत कर कोर बैंकिंग सुविधा से जोड़ा जा चुका है। शहरी सहकारी बैंक क्रेडिट प्रदान करने तथा कृषकों की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने का कार्य कर रही है। भारत के सहकारी साख ढ़ॉचे को शहरी एवं ग्रामीण दो भागों में विभाजित किया गया है। जहाँ एक ओर देश की ग्रामीण सहकारी समितियाँ सेवाएं प्रदान करती हैं, दूसरी ओर अर्धशहरी एवं शहरी क्षेत्र कृषकों को शहरी सरकारी बैंकों द्वारा सेवाएं प्रदान की जाती है। इस शोधपत्र में सहकारी बैंकों द्वारा कृषकों को दी जाने वाली विभिन्न वित्तीय सहायताओं का अध्ययन किया गया है।*

मुख्य शब्द– सहकारी, बैंकिंग क्षेत्र, कृषि साख, ग्रामीण विकास, ऋण योजनाएं।

छत्तीसगढ़ राज्य भौगोलिक स्थिति, मृदा संरचना एवं जलवायु की दृष्टि से धनाढ्य राज्यों की श्रृंखला में सबसे आगे है। इसके पश्चात् भी प्रारंभ से ही यहां के कृषकों की आर्थिक स्थिति दयनीय रही है। जिन कृषकों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी, वे कृषक भी उचित ब्याज दर पर ऋण एवं कृषि संबंधी लाभदायक योजनाओं के अभाव में आर्थिक रूप से कमजोर होते जा रहे थे। विगत कुछ वर्षो में जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक की विभिन्न योजनाओं एवं ऋण नीतियों से कृषकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है, परंतु सुधार की प्रक्रिया काफी धीमी है। कृषकों की वर्तमान आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति की वास्तविक जानकारी प्राप्त करने एवं बैंक की योजनाओं व ऋण नीतियो का कृषकों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने हेतु यह अध्ययन किया गया है

प्रस्तावना– कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख स्थान है। तथ्य यह है कि राष्ट्रीय आय का आधा कृषि आधारित उत्पादों के निर्यात से ही योगदान किया जा रहा है। देश के अधिकांश लोग कृषि पर निर्भर करते हैं, एक तरह से लोगों का कल्याण और उनकी आर्थिक स्थिति और देश का आर्थिक विकास, उत्पादन पर निर्भर करता है। कृषि क्षेत्र की इतनी महत्वपूर्ण भूमिका भारतीय अर्थव्यवस्था में होने के बावजूद कृषि आबादी का आधा हिस्सा दयनीय गरीबी रेखा के नीचे है और अधिकांश ऋणी हैं। अतः कृषि

* सहायक प्राध्यापक, प्रगति कॉलेज, रायपुर (छ.ग.)
** प्राचार्य, संत गुरू घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद (छ.ग.)

विकास को कई देशों की सरकार द्वारा प्राथमिक रणनीति बनाया गया है।

शहरी सहकारी बैंक शहरी और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में बढ़ती ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। छ.ग. शासन की किसान हितैशी नीति के अनुरूप बैंक द्वारा क्षेत्र के कृषकों को 0% ब्याज पर कृषि ऋण उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके अतिरिक्त गौपालन, मत्स्य पालन एवं औद्यौगिकी हेतु भी ऋण की सुविधा दी जाती है। मध्यकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण के अंतर्गत लघु सिंचाई, तारफेंसिंग, उपकरण आदि के लिए ऋण की सुविधा दी जाती है।

उद्देश्य–

* जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित द्वारा चलाये जा रहे अल्पकालीन ऋण योजनाओं की जानकारी प्राप्त करना ।
* जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित द्वारा विभिन्न ऋण योजनाओं में ऋण वितरण एवं ऋण वसूली संबंधी जानकारी प्राप्त करना।

परिकल्पना–

* बैंक द्वारा अल्पकालीन ऋण वितरण में कृषकों हेतु लाभप्रद ऋण सुविधाएं प्रदान की जा रही है।
* बैंक के ऋण वितरण व ऋण वसूली की प्रक्रिया के मध्य तालमेल है।

विश्लेषण एवं समीक्षा– किसान क्रेडिट कार्ड के अन्तर्गत अल्पावधि कृषि ऋण, फसलों के लिए अल्पकालीन ऋण एक वर्ष की अवधि के लिए दो भागों में दिया जाएगा। (1) नगदऋण, वस्तुऋण

व्यक्तिगत अल्पकालीन नगद एवं वस्तु ऋण की अधिकतम सीमाएं कृषकों को क्रेडिट कार्ड पर ऋण निम्नानुसार दिया जाता है।

	ऋण	**नगद ऋण**	**वस्तु ऋण**	**योग**
1.	किसान क्रेडिट कार्ड पर अधिकतम ऋण	3.00 लाख रू.	2.00 लाख रू.	5.0 लाख रू.

(2) **कृषि हेतु निवेश ऋण–** अल्पकालीन ऋण सीमा समाप्त होने के पश्चात कृषकों की त्वरित आवश्यकता को देखते हुए बैंकों द्वारा निवेश ऋण प्रदाय अनिवार्य है जिसकी साख सीमा का 20 प्रतिशत या अधिकतम 30000 तक का ऋण उन समितियों के सदस्य कृषकों को प्रदाय किया जाता है, जिस समिति की ऋण वसूली विगत वर्ष 30 जून पर 65 प्रतिशत से अधिक हो।

(3) **बहु फसल उत्पादित ऋण–** बहुफसल उगाने पर अधिकतम ऋण व्यक्तिगत अल्पकालीन नगद एवं वस्तु ऋण की निर्धारित सीमा से अधिक नहीं होना चाहिए।

(4) **किसान क्रेडिट कार्ड से अल्पकालीन ऋण–** किसानों को बैंकिंग अर्थव्यवस्था से जोड़ने तथा सहजता से ऋण उपलब्ध कराने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा किसानों को क्रेडिट कार्ड जारी किया गया है। यह 3 वर्ष हेतु होता है। वह प्रत्येक वर्ष नवीनीकृत होता है।

(5) **संयुक्त खाते पर ऋण प्राप्ति की पात्रता–** संयुक्त खाते पर अलग-अलग कृषि करने वाले कृषकों को उनकी मांग के अनुसार अलग-अलग ऋण न देकर प्रमुख सदस्य को ही ऋण दिया जाता है।

(6) **आम मुख्तियारनामा पर अल्पकालीन ऋण–** यदि कोई कृषक अपनी

मापदण्ड की देखरेख के लिये एक आम मुख्तियारनामा लिख कर उन्हें ऋण लेने हेतु अधिकृत करता है तो ऐसे प्रकरणों में कृषक को मुख्तियारनामा के आधार पर अल्पकालीन ऋण ही स्वीकृत किया जाता है।

(7) **साग भाजी हेतु ऋण**– (क) यह ऋण लघु कृषकों की प्राथमिकता के आधार पर वितरित किया जाता है। इस हेतु प्रत्येक सदस्य का सामान्य ऋण पत्रक अनिवार्य है। (ख) नदी के किनारे निवासरत कृषक जो खरबूज, ककड़ी आदि की फसल लेना चाहते है, उन्हें अल्पकालीन ऋण दिया जाता है।

(8) **लघु एवं सीमांत कृषकों को मध्यावधि ऋण**– सामान्य मध्यावधि ऋण को छ.ग. राज्य सहकारी अधिनियम-1960 की धारा 41 के अंतर्गत वर्णित प्रावधानों के अनुसार घोषणा पत्र लेकर दिया जाता है जिसकी राशि 10000 से अधिक होने पर अपनी जमीन संस्था के पक्ष में रजिस्टर्ड कराना होता है।

विगत पाँच वर्षों में अल्पकालीन कृषि ऋण का वितरण एवं वसूली की स्थिति निम्नवत पाई गई है।

(रू.लाखों में)

वर्ष	**मांग**	**वसूली**
2011–12	148090	114660
2012–13	170730	133680
2013–14	188860	68220
2015–16	200730	115659

स्रोत-सहकारी विभाग प्रतिवेदन

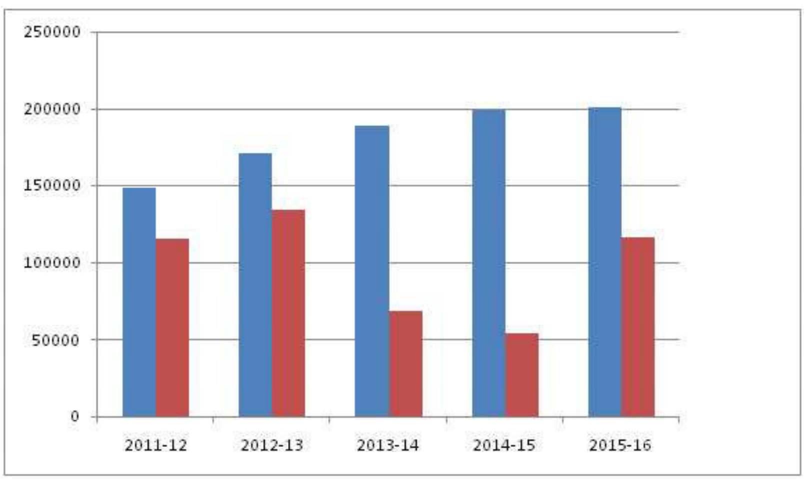

ऋण वितरण (रू. करोड़ में)

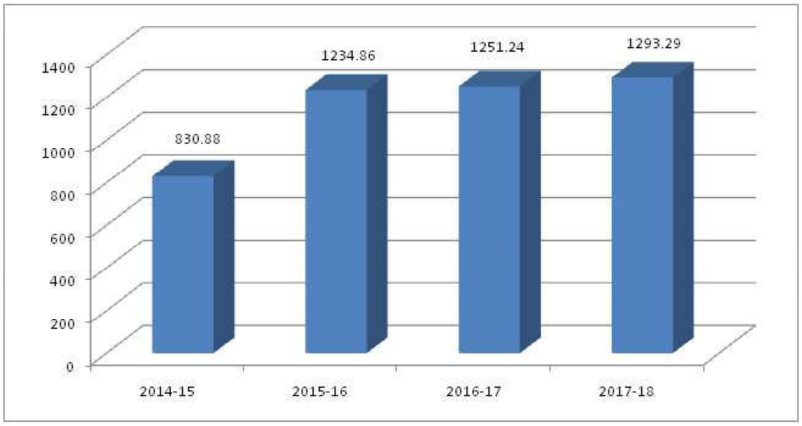

ऋण वसूली का प्रतिशत (रू. प्रतिशत में)

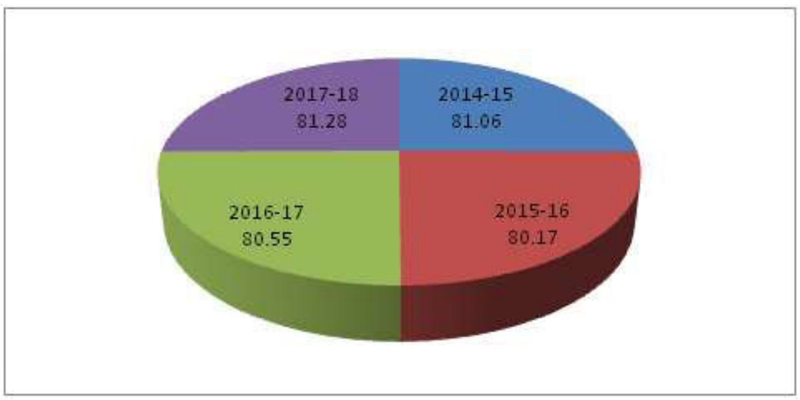

सहकारी साख

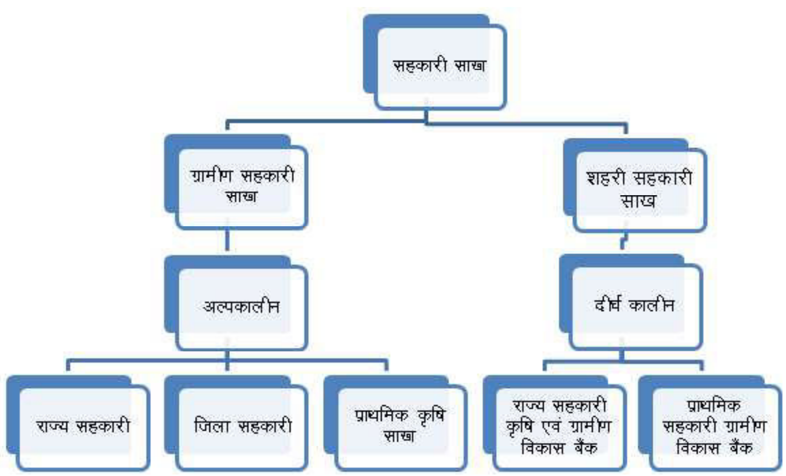

सुझाव–

1. जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित द्वारा चलाये जाने वाले सभी योजना संबंधी जानकारी कृषकों (समस्त वर्ग) को प्राप्त हो ।
2. लाभान्वित कृषकों से योजनाओं संबंधी प्रतिक्रिया समय-समय पर ली जाय।
3. कृषकों को पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हो, सुविधाओं की कमी में योजना के क्रियान्वन में आने वाली परेशानियों को दूर किया जाए
4. छ.ग. में काफी संभावनाएँ है, बनी हुई नीतियों पर नियंत्रण आवश्यक है।
5. जिला सहकारी केंन्द्रीय बैक द्वारा वितरित ऋणों में लगातार वृद्धि हुई है परन्तु ऋण वसूली का प्रतिशत विगत चार वर्षो से लगभग समान है अतः बैंक को ऋण वसूली की प्रक्रिया को सुधारने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा यह निष्कर्ष निकलता है कि जिला सहकारी केन्द्रीय बैंक मर्यादित द्वारा कई योजनाएँ सफलता पूर्वक चलायी गयी है और चलाई जा रही है तथा सभी वर्ग के कृषक अब उन योजनाओं से लाभान्वित है तथा इससे उनकी कार्य कुशलता में भी वृद्धि हुई है। सरकार द्वारा चलायी जाने वाली प्रत्येक आर्थिक विकास की योजना का संचालन व कृषकों की जागरूकता उनके जीवन शैली व आर्थिक सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। ऋण वितरण में 2014-15 से 2017-18 तक काफी वृद्धि हुई है परन्तु वसूली का प्रतिशत लगभग समान रहा है अतः ऋण वसूली में कमी आई है जो बैंक हेतु एक चिंतनीय विषय है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. वार्षिक प्रतिवेदन एवं लेखा विवरण 2015-16, 2016-17, 2017-18, जिला सहकारी केन्द्रींय बैंक।
2. ऋण नीति 2010-11, जिला सहकारी केन्द्रींय बैंक।
3. छत्तीसगढ़ प्राकृतिक भाग-1, मुस्कान पब्लिकेशन, रायपुर।
4. अविनाश वी.रूईकर (श्रनसल 2006) भारत में सहकारी साख संस्थाएं।
5. आचार्य एस. मोहन्ती, (2006) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के कार्यो का विश्लेषण, कल्याण पब्लिकेशन, रायपुर।
6. नवभारत, दैनिक समाचार पत्र, रायपुर
7. दैनिक भास्कर, दैनिक समाचार पत्र, रायपुर

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

आध्यात्मिक पर्यटन का महत्व

* आर.के.मरावी

सारांश– *पर्यटन आर्थिक विकास का एक शक्तिशाली उपकरण है क्योंकि यह रोजगार पैदा करता है, व्यापार के नए अवसर प्रदान करता है और स्थानीय अर्थव्यवस्था को मज़बूत करता है। जब सांस्कृतिक विरासत को आध्यात्मिक पर्यटन के विकास के संदर्भ में सोचते हैं तो यह स्पष्ट होने लगता है कि जहाँ यह हमारे देश के प्राकृतिक और सांस्कृतिक ख़ज़ानों की रक्षा करता है वहाँ यह स्थानीय लोगों और विदेशी प्रवासी भारतीयों और दूसरे विदेशी आगंतुकों के लिए एक बेहतर गुणवत्ता से युत्त जीवन के निर्माण में मदद् भी करता है। सांस्कृतिक विरासत पर्यटन के क्षेत्र की मूल संकल्पना है कि हम सब अपनी विरासत और अपनी संस्कृति को पहचानें, उसे जानें और बचाएँ, और इस प्रकार सांस्कृतिक वैविध्य की सुन्दरता को बनाए रखें और आगंतुकों के साथ इसे साझा करें।*

मुख्य शब्द– पर्यटन, सांस्कृतिक विरासत, देशाटन, देशी–विदेशी पर्यटक

पर्यटन को अब अंग्रेजी के टूरिज्म शब्द से समझना अधिक आसान हो गया है जब हम टूरिज़्म (Tourism) कहते हैं तो कुछ दिन और रात के पैकेज के साथ किसी दूर की जगह पर समय बिताना टूरिज्म हो जाता है, इसका केन्द्रीय भाव आज के संदर्भ में यह अधिक है कि रोज-रोज के काम और परिवार की जिन्दगी से थोड़ी फुर्सत निकालकर कहीं वक्त बिताना, जो ज्यादातर कुदरती खूबसूरती के बीच होता है इसमें कोई बुराई भी नहीं है, लेकिन समृद्ध परंपराओं वाले देश में पर्यटन का अर्थ यहीं तक सीमित होते देखने पर चिंता जरूर होनी चाहिए जिस देश में टूरिज्म या पर्यटन से भी पहले देशाटन की संस्कृति मौजूद हो और जिसका समाज से करीब का रिश्ता हो, वैसी परंपराओं का एक दूसरी परंपरा में तब्दील होना थोड़ी तकलीफ तो देता ही है, वह भी ऐसे वक्त में, जब टूरिज्म कराने वालों का ध्यान देशी-विदेशी टूरिस्ट बढ़ाने और उसी हिसाब से लाभ-हानि के गणित में ज्यादा लगता हो।

पर्यटन एक अस्थायी और ऐच्छिक देशाटन है, जिसमें किसी प्रकार का पारिश्रमिक नहीं मिलता। वस्तुतः अँग्रेज़ी, शब्द 'टूरिज़्म' का संबंध 'टूअर' से है, जो लैटिन भाषा से लिया गया है। एक शब्द है 'टोरस', जिसका अर्थ है एक औज़ार, जो पहिए की भाँति गोलाकार होता है। संभवतः इसी शब्द का प्रयोग विभिन्न स्थानों की यात्रा, मनोरंजन-भ्रमण, पर्यटन तथा विभिन्न राष्ट्रों व क्षेत्रों के स्थलों के भ्रमण या यात्रा करने के लिए किया गया। सामान्य शब्दों में पर्यटन का अर्थ है- अपने निवास-स्थान को छोड़कर कहीं बाहर जाना, लेकिन आज जिस अर्थ में पर्यटन शब्द का प्रयोग होता है, वह विशेष बन गया है।

* सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, शासकीय महाविद्यालय, पुष्पराजगढ़, जिला अनूपपुर (म.प्र.)

इस विचार से पर्यटन आराम एवं विश्राम की क्रिया है, जिसमें स्वदेश में अर्जित धन को पर्यटन-क्षेत्रों में व्यय किया जाता है। अब तो यह एक सामाजिक आंदोलन बन चुका है, ताकि मनुष्य के आराम, विनोद, क्रीड़ा व सांस्कृतिक आवश्यकताओं की अभिपूर्ति हो सके। इससे जुड़कर 'पर्यटन' को इस प्रकार परिभाषित कर दिया गया। 'एक व्यक्ति जो कि आवश्यकतानुसार विदेशी पार-पत्र पर किसी स्थल की यात्रा कम-से-कम चौबीस घंटे तक करे तथा उसका समय छह माह से अधिक न हो, बशर्ते यह यात्रा बिना देशांतर-वास व रोज़गार दोनों से विहीन हो। इस प्रकार पर्यटन का उद्देश्य, अध्ययन, धर्म, क्रीड़ा, पारिवारिक कार्य अथवा धर्मार्थ कार्य आदि है।'

क्या वास्तव में पर्यटन से समाज का वास्ता है.....? क्या पर्यटन का मतलब केवल पांच-सितारा होटल, रिसॉर्ट और हवाई यात्राएं ही है...? क्या पर्यटन की एक नीति बनाते समय समाज, उसकी सुरक्षा, पर्यटन क्षेत्रों के ज़रिये समाज को जानने और समझने की प्रक्रिया नहीं चलती....? क्या पर्यटन का मतलब केवल छुट्टी के कुछ दिन बिताना है...? जिस तरह का प्रचार-प्रसार किया जाता है, उसमें तो यही लगता है कि केवल पूंजीपति पर्यटकों और उनकी विलासिता की जरूरत को ही पूरा करना है।

पर्यटन और उसका महत्व-

पर्यटन का महत्व प्रत्येक देश में स्वीकार किया जा चुका है। पाश्चात्य जगत् के प्रख्यात विचारक मांटेन का कथन है कि पर्यटन के अभाव में कोई व्यक्ति पूर्ण शिक्षित नहीं कहा जा सकता है। आधुनिक युग में प्रत्येक शिक्षा-प्रणाली में पर्यटन की योजना अनिवार्य रूप से सन्निविष्ट है। आदिकाल से मनुष्य पर्यटन का प्रेमी रहा है। मनुष्य की प्रकृति में पर्यटन का बीज परमपिता ने बोया। मानवीय सभ्यता उसी के प्रस्फुटन का परिणाम है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, पर्यटन का तात्पर्य देश-विदेश में परिभ्रमण है। पर्यटन निरूद्देश्य नहीं होता।

ईश्वरीय ज्ञान मानी जाने वाली सृष्टि की सबसे प्राचीन पुस्तक वेद में एक स्थान पर आता है कि हे मनुष्यों, तुम ईश्वर की बनाई हुई इस सृष्टि को देखो, परखो व जानों, जो न कभी नष्ट होती है, न पुरानी और जीर्ण होती है। दार्शनिक सिद्धान्त भी है कि रचना को देखकर रचयिता का ज्ञान होता है इसी प्रकार से सृष्टि की सुन्दरता, भव्यता व रचनादि विशेष गुणों को देखकर इसके रचयिता सृष्टिकर्ता अर्थात् ईश्वर का ज्ञान होता है। अतः यात्रा का उद््देश्य ऐसे स्थानों पर जाना होता है जो सुन्दर, सुविधापूर्ण सुख की अनुभूति कराने वाले हों व इसके साथ वहां के लोगों के पहनावें, बोलचाल, व्यवहार, आचार व संस्कृति आदि का अनुभव कराने वाले हों। मनुष्य को सुखद जीवन व्यतीत करने के लिए संसार में जड़ व चेतन की संगति करना अपरिहार्य है।

पर्यटन का अर्थ है- घूमना। बस घूमने के लिए घूमना। आनंद-प्राप्ति और जिज्ञासा-पूर्ति के लिए घूमना। ऐसे पर्यटन में सुख ही सुख है। ऐसा पर्यटन दैनंदिन जीवन की भारी-भरकम चिंताओं से दूर होता है। जो व्यक्ति इस दशा में जितनी देर रहता है, उतनी देर तक वह आनंदमय जीवन जीता है। जीवन का असली आनंद घुमक्कड़ी में है, मस्ती और मौज में है। प्रकृति के सौंदर्य का रसपान अपनी आँखों से उसके सामने उसकी गोद में बैठकर ही किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है पर्यटन।

अध्यात्मिक पर्यटन क्यों?

आध्यात्मिक पर्यटन वास्तव में मानव-मस्तिष्क के धार्मिक व दार्शनिक चिंतन की देन है, जो कि ईश्वर पर आधारित है। अर्थात् धार्मिक यात्राएँ ईश्वर के निमित्त की जाती हैं। प्रकृति की तमाम अव्यक्त अविजित प्राकृतिक शक्तियों व गूढ़-रहस्यों को जिनको मानव न तो जीत पाया है। इन तमाम शक्तियों में मृत्यु-भय मानव का सबसे प्रमुख अनबूझा, अव्यक्त एवं अविजित भय है, जिससे आतुर होकर उसने आध्यात्मिक एवं धार्मिक-दार्शनिक चिंतन प्रारंभ किया। चिंतन के इसी क्रम में ईश्वर, पुनर्जन्म, पाप, पुण्य, मोक्ष आदि विचारों का जन्म हुआ, जिनके निमित्त तीर्थयात्राएँ आरंभ हुईं और जारी रहेंगी। विश्व का कोई भी धर्म हो, धार्मिक-तीर्थयात्राएँ सभी में प्रचलित हैं और सभी जगह तीर्थयात्रा के मूल में मानव की असमर्थता निहित है। मृत्यु-भय के अतिरिक्त मनुष्य की असीमित इच्छाएँ भी हैं, जिनकी पूर्ति में जब वह असमर्थ रहता है तो ईश्वर का सहारा लेता है। यदि मृत्यु-भय से मुक्ति पाने व सभी इच्छाओं की पूर्ति करने में मानव स्वयं सक्षम हो तो ईश्वर का अस्तित्व ही न रहेगा। फलतः धार्मिक तीर्थयात्राएँ समाप्त हो जाएँगी।

जहाँ तक पर्यटन का प्रश्न है, यह सैर-सपाटे, आनंद, खेल, शिकार, पर्वतारोहण, आध्यात्मिक, चिकित्सा, शैक्षिक, साहसिक, कला आदि के लिए की गई यात्राएँ है, जो कि प्राचीन समय से ही प्रचलित रही है। अभी भी भाव-प्रवण लोग आध्यात्मिक तीर्थयात्रा कर आए लोगों को सामान्य बुराईयों से मुक्त मानते हैं और उनकी बातों पर औसत चरित्र से कुछ ज्यादा ही विश्वास करते हैं। परंपरा से जुड़े और शक्ति व प्रेरणा लेने वाले लोग उस विश्वास को झुठलाते भी नहीं हैं। कौन सा पारस छू जाता है आध्यात्मिक पर्यटकों, तीर्थयात्रियों को, जो कंचन बना देता है? महाभारत में इसका उत्तर आध्यात्मिक तीर्थों को अतिशय पुण्यप्रद बताकर दिया गया है। शरीर के रूप से तीर्थ का महत्त्व समझाते हुए कहा गया है कि सभी अंग समान रूप से शक्तिशाली नहीं होते। हृदय, नाभि और भूमध्य में विशेष शक्ति रहती है, जो हाथ-पैर आदि अंगों में नहीं होती। पृथ्वी पर तीर्थ भी हृदय, नाभि और भूमध्य की तरह पुण्यदायक होते हैं।

आध्यात्मिक पर्यटन का महत्व-

भारत मूलतः देशाटन करने वाला राष्ट्र है, जहाँ लोग एक खास मकसद से यात्रा करते रहे हैं, यहां की परंपराओं और रीति-रिवाजों में वह ऐसे पगा है कि सीधे तौर पर दिखाई भी नहीं देता कि यह पर्यटन ही है, वह आध्यात्मिक यात्राओं के बहाने हो या पौराणिक कहानियों के, वह हमें सीख भी देता है और संतुष्टि भी, लंबी पैदल और सामूहिक यात्राएँ कराना, ताकि स्थान और समाज को जड़ों से जाना जा सके, किस देश-स्थान में कौन-सी फसलें हैं, किस नदी के पानी की क्या खासियत है, किन जंगलों में कौन-से पेड़-पौधे, जंगली औषधी और फल खास हैं, यह छोटी-छोटी चीजें प्राथमिकताओं से नदारद है, अब यदि वैष्णों देवी, हिमालय या सम्मेद शिखर के पहाड़ों की यात्रा हवा में की जाए, तो क्या कुछ जाना जा सकेगा...? क्या वास्तव में उस स्थान के अध्यात्म और सौंदर्य को सुकून से महसूस किया जा सकेगा....? हो सकता है, इससे समय की बचत हो जाती हो, जो आज की भागमभाग के दौर में बेहद मुश्किल से मिलता है, लेकिन सही मायनों में सुकून और शांति से किया गया पर्यटन ही सही संतुष्टि देता है और

उद्देश्यों को पूरा करता है।

अध्यात्मिक पर्यटन का दूसरा लाभ है- देश विदेश की जानकारी। इससे हमारा ज्ञान समृद्ध होता है। पुस्तकीय ज्ञान उतना प्रभावी नहीं होता जितना कि प्रत्यक्ष ज्ञान। पर्यटन से हमें देश-विदेश के खान-पान, रहन-सहन तथा सभ्यता-संस्कृति की जानकारी मिलती है। इससे हमारे मन में बैठे हुए कुछ अंधविश्वास टूटते हैं। हमें यह विश्वास होता है- विश्व-भर का मानव मूल्य रूप से एक है। हमारी आपसी दूरियाँ कम होती है। मन उदार बनता है। पूरा देश और विश्व अपना-सा प्रतीत होता है। राष्ट्रीय एकता बढ़ाने में आध्यात्मिक पर्यटन का बहुत बड़ा योगदान है।

आध्यात्मिक विकास का एक और परिणाम, दिन प्रतिदिन के जीवन में सबसे लाभकारी यह होता है कि यह चित्त की शांति और प्रत्युत्पन्नमति देता है। हमारे जीवन निरंतर परिवर्तनशील हैं और अपने साथ कई कठिनाइयाँ लाते हैं। एक शांत और स्पष्ट चित्त से सामना करने पर समस्याओं का समाधान सफलतापूर्वक होता है। इसके विपरीत जब हम घृणा, स्वार्थ, ईर्ष्या और क्रोध के कारण चित्त पर नियंत्रण खो देते हैं तो हम अपनी निर्णय क्षमता भी खो बैठते हैं। हमारे चित्त अंधे हो जाते हैं उन मति भ्रष्ट क्षणों में कुछ भी हो सकता है, भारतीय संस्कृति सहित विश्व की सभी संस्कृतियों में आध्यात्मिक तीर्थ यात्रों का महत्वपूर्ण स्थान है। हमारे शास्त्रों और पुराणों में भी आध्यात्मिक तीर्थ यात्रा की महत्ता का वर्णन मिलता है। आध्यात्मिक तीर्थ यात्रा एक, ईश्वरीय और पवित्र अनुभूति है। भारत में प्रायः हर व्यक्ति अपने जीवनकाल में कम से कम एक बार आध्यात्मिक तीर्थ यात्रा पर जाने की चाहत रखता है, लेकिन कई बार कमजोर-आर्थिक स्थिति की वजह से तीर्थ यात्रा से वंचित रह जाता है। शासकीय व्यय पर राज्यों के वरिष्ठ नागरिकों को देश के महत्वपूर्ण तीर्थ स्थलों की यात्रा कराने के लिए अनेक प्रदेशों द्वारा तीर्थ यात्रा हेतु योजनाएँ बनाई गयी हैं। इन योजनाओं से भारतीय संस्कृति को संजोए रखने की इन राज्यों की एक अनुकरणीय और सार्थक पहल है।

अध्यात्मिक पर्यटन का महत्त्व यह भी है कि भारत सनातन धर्म (हिन्दू) एवं उसके प्रस्फुटित अंग बौद्ध, जैन एवं सिक्ख-संप्रदाय की जन्मस्थलीय है, जिसके अनुयायी देश-विदेश से लाखों की संख्या में इन धर्म-संप्रदायों के पुण्यस्थलों के दर्शन हेतु आते हैं, उन्हें यथोचित आदर-सत्कार मिलना चाहिए। भारत संस्कृति, संस्कृत, हिन्दी एवं उर्दू भाषा एवं साहित्य का जन्मस्थल है। इन भाषाओं और साहित्य के शोधछात्र यहाँ आते हैं। केवल एक दशक में भारतीय पर्यटन की छवि इन उपायों से बदल सकती है और पुनः 'अतिथि देवो भव' व' वसुधैव कुटुंबकम् वाला देश बन सकता है।

पर्यटन एक उद्योग–

भारत में, पर्यटन उद्योग का विशेष स्थान हैं पर्यटन उद्योग की दृष्टि से देखा जाये तो यह एक वृहद उद्योग है तथा इसमें एक जीवन रक्त के रूप में प्रवाहित होता है। चूकिं इसमें न केवल उच्च्य दर पर विकास करने की छमता है अपितु अपने अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष संबंधों और अंतर क्षेत्रीय सहक्रियाशीलताओं के माध्यम से कृषि, बागवानी, कुक्कुट पालन, हस्तशिल्प, परिवहन, निर्माण आदि के साथ अन्य आर्थिक क्षेत्रकों को भी अभिप्रेरित करता है। अर्थात यह देश में दूसरे उद्योगों को बल प्रदान कर सकता है और अंतरराष्ट्रीय ऋण चुकाने में सहायता करने के लिए पर्याप्त धन का अर्जन कर सकता है।

यह देश के लिए तीसरा सबसे बड़ा निवल विदेशी मुद्रा का अर्जक है। यात्रा और पर्यटन क्षेत्र राष्ट्रीय अखंडता में योगदान देता है, प्राकृतिक और सांस्कृतिक माहौल का संरक्षण करता है तथा लोगों का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन समृद्ध बनाता है। इसके पास स्थायी रोजगार के अवसरों का सृजन करने की क्षमता है विशेषकर अकुशल और अर्थ कौशल कर्मगारों के लिए और देश में गरीबी हटाने की क्षमता है। इसलिए इस भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य क्षेत्रक माना जाता है।

भारतीय अर्थ व्यवस्था पर पर्यटन प्रभाव–

भारत में पर्यटन सबसे बड़ा सेवा उद्योग है, जहां इसका राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में 6.23% और भारत के कुल रोज़गार में 8.78% योगदान है। भारत में वार्षिक तौर पर 50 लाख विदेशी पर्यटकों का आगमन और 5620 लाख घरेलू पर्यटकों का आगमन होता है। 2008 में भारत के पर्यटन उद्योग ने लगभग अमेरिकी +100 बिलियन अर्जित किया और 2018 तक 9.4% की वार्षिक वृद्धि दर के साथ, इसके US +275.5 बिलियन तक बढ़ने की उम्मीद है। भारत में इसे बढ़ाए जाने की अपार संभावनाएं भी हैं, लेकिन उसके लिए जरूरी यह है कि नीतियों में उसे किस रूप में सोचा-समझा जा रहा और उसका प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। यदि हम दुनिया की केवल कुदरती खूबसूरती से आकर्षित होते हैं और ऐसे इलाकों के आसपास की संस्कृति और समाज के बारे में ठीक ढंग से सोचते-समझते हुए उसे केंन्द्र में अपनी नीतियों में समाहित नहीं करते हैं, तो यह हमारी सोच का एक सीमित दायरा ही है लेकिन सोचना इस बात को भी पड़ेगा कि पर्यटकों को बढ़ाए जाने के साथ ही क्या समाज के मूल स्वरूप का संरक्षण भी किया जा रहा है या नहीं। भारत में पर्यटन के विकास और उसे बढ़ावा देने के लिए पर्यटन मंत्रालय प्रमुख एजेंसी है जो ''अतुल्य भारत'' अभियान की देखरेख करती है।

विश्व यात्रा और पर्यटन परिषद के अनुसार भारत 2018 तक पर्यटन का सर्वाधिक आकर्षिक केंन्द्र बन जाएगा। यात्रा एवं पर्यटन प्रतिस्पर्धा रिपोर्ट 2007 ने भारत में पर्यटन को प्रतियोगी कीमतों के संदर्भ में 6वां तथा सुरक्षा व निरापदता की दृष्टि से 39वां दर्जा दिया है। होटल के कमरों की कमी के रूप में कुछ रूकावटों के बावजूद 2007 से 2017 तक 42% तक पर्यटन राजस्व में उछाल की उम्मीद है। दिल्ली में आयोजित किए गए 2010 में राष्ट्रमंडल खेलों के बाद से भारत में पर्यटन को विशेष रूप से बढ़ावा मिलने की संभावना बढ़ गई है।

पर्यटन में एक मसला सुरक्षा का भी जुड़ता है। जब तक हम अपनी आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था को चाक-चौबंद नहीं कर लेते, पर्यटन को सुरक्षित और सम्मानजनक नहीं बना देते, पर्यटकों के संख्या उस गति से नहीं कर लेते, पर्यटन को सुरक्षित और सम्मानजनक नहीं बना देते, पर्यटकों के संख्या उस गति से नहीं बढेगी। और उस पर्यटन की स्थिति तो बिल्कुल ही बदलनी चाहिए, जिसके लिए दुनिया के दूसरे देशों में इसे माना जाता है। जब कोई विदेशी पर्यटक भारत में गरीब-लाचार लोगों की तस्वीरें लेता है, कुपोषित बच्चों की तस्वीरें उतारता है, सड़क पर भीख मांगते लोगों को दया का पात्र मानता है, ढाबों-होटलों में बच्चों को टेबल साफ करते देखता है, तो वह समझता है, यही भारत है, ऐसे भारत पर हमको भी दया आती है। हम कॉमना करते हैं किसी भी पर्यटक को ऐसा भारत खोजने से भी न मिले।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. Chattisghar Janman Patrika
2. Business Hindi Magazin
3. Dharohar Magazin. Govt. of Bihar Tourism
4. Dev Bhumi ka kan kan me Devta Patrika, Nainital
5. Chandra Prabha Book
6. Bharat our Bhartiye

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

महिलाओं के सशक्तिकरण पर स्व-सहायता समूहों के प्रभाव का अध्ययन (कांकेर जिले के चारामा ब्लॉक के विशेष संदर्भ में)

* वन्दना विश्वकर्मा
** नीलम अग्रवाल

सारांश- *प्रस्तुत अध्ययन में महिलाओं के सशक्तिकरण पर स्व-सहायता समूहों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में महिला सशक्तिकरण के लिए किये गये प्रयास का अध्ययन, महिलाओं का स्व-सहायता समूह के माध्यम से आत्मविश्वास में परिवर्तन की स्थिति का अध्ययन, महिलाओं का पारिवारिक निर्णय में सहभागिता की स्थिति का अध्ययन,शासकीय योजनाओं से निदर्श महिलाओं की जागरूकता की स्थिति का अध्ययन किया गया है।*

मुख्य शब्द- महिला सशक्तिकरण के लिये किये गये प्रयास, आत्मविश्वास में परिवर्तन, पारिवारिक निर्णय में सहभागिता।

भूमिका-

स्व-सहायता समूहों के द्वारा न केवल ग्रामीण महिलाओं की व्यक्तिगत आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है बल्कि परिवार और समाज भी इससे लाभान्वित हो रहा है। ग्रामीण विकास में स्व-सहायता समूहों के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। समूह की महिलाऐं आपसी वार्तालाप से कई समस्याओं के हल स्वयं निकाल रही हैं जिनमें रोजमर्रा के मसलों से लेकर ग्राम विकास तक की समस्याएं सम्मिलित हैं। समूह की महिलायें सामाजिक स्तर पर भी प्रभावशाली भूमिका निभा रही है। एक ओर इन महिलाओं की सहभागिता शासन की विभिन्न योजनाओं जैसे, पल्स पोलियो, एड्स जागरूकता अभियान में देखी जा रही है तो दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार कर पिछड़ेपन के कारणों को दूर करने सहायक हो रही जैसे- शराबखोरी, जुआ, दहेज प्रथा, बाल विवाह आदि। स्व-सहायता समूह की महिलाएं अपने परिवार को आर्थिक संबल प्रदान करने के साथ-साथ ग्रामीण सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक गतिशीलता में भी अभूतपूर्व योगदान दे रही है। इन महिलाओं में स्वयं के, परिवार के, ग्राम के, व्यवसाय के एवं राजनीति के सम्बध में निर्णय लेने की क्षमता को विकसित होते देखा जा रहा है जिसे ग्रामीण महिला सशक्तिकरण के एकयुग का प्रारम्भिक स्तर कहा जा सकता है।

* शोधार्थी, शोध छात्रा, अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, पं.रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
** निर्देशक, विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, महाप्रभु वल्लभाचार्य स्ना. महाविद्यालय, महासमुंद।

राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति इस नीति को भारत सरकार ने 20 मार्च 2001 को स्वीकार किया था। महिलाओं की उन्नति एवं विकास और सशक्तिकरण एवं उनके प्रति हर भेदभाव को खत्म करना तथा जीवन व सामाजिक गतिविधियों के हर क्षेत्र में उनकी भागीदारी को सुनिश्चित करना है। आर्थिक व सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में महिलाओं के सशक्तिकरण एवं निर्णय की प्रक्रिया में उन्हें शामिल किया जाना एवं न्यायिक कानून व्यवस्था को उनके प्रति संवेदनशील बनाना, उनके प्रति सब प्रकार की हिंसा को खत्म करना, इन सबके अलावा बालिकाओं को जन्म के साथ ही उनके सम्पूर्ण मौलिक अधिकारों की प्राप्ति इसका मुख्य लक्ष्य है। इस नीति का एक मुख्य बिन्दु महिलाओं को शिक्षा विशेषकर व्यवसायिक शिक्षा प्रदान करना है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि महिलाओं में इन नीतियों के प्रति जागरूकता लाई जाये। इस परिप्रेक्ष्य में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में किया गया कार्य निश्चित ही महिला सशक्तिकरण की दिशा में उठाया गया एक उल्लेखनीय कदम साबित हो सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य–

1. महिला सशक्तिकरण पर स्व-सहायता समूह के प्रभाव का अध्ययन।
2. स्व-सहायता समूह के महिला सशक्तिकरण के लिए किये गये प्रयास का अध्ययन।
3. निदर्श महिलाओं का स्व-सहायता समूह के माध्यम से आत्मविश्वास में परिवर्तन की स्थिति को ज्ञात करना।
4. निदर्श महिलाओं का पारिवारिक निर्णय में सहभागिता की स्थिति को ज्ञात करना।
5. शासकीय योजनाओं से निदर्श महिलाओं की जागरूकता की स्थिति को ज्ञात करना।
6. स्व-सहायता समूहों के विकास हेतु आवश्यक एवं उपयोगी सुझाव।

शोध प्रविधि–

प्रस्तुत अध्ययन महिलाओं के सशक्तिकरण पर स्व-सहायता समूहों के प्रभाव का अध्ययन (कांकेर जिले के चारामा ब्लॉक के विशेष संदर्भ में) प्राथमिक एवं द्वितीयक संमको पर आधारित है।

न्यादर्शो की संख्या–

अध्ययन के लिए चयनित कांकेर जिले के चारामा ब्लॉक के 535 स्व-सहायता समूहों में से 300 महिलाओं का दैव-निदर्शन पद्धति से चयन करने के पश्चात् उनका सर्वेक्षण किया गया।

आंकड़ो का विश्लेषण– तालिका क्रमांक 1 के अंतर्गत स्व-सहायता समूह के महिला सशक्तिकरण के लिए किया गया प्रयास का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक 1

स्व-सहायता समूह के महिला सशक्तिकरण के लिए किये गये प्रयास का विवरण

क्रमांक	विवरण	निदर्श महिलाओं की संख्या
1	महिला रोजगार योजना	67 (22.3)
2	सक्षम योजना	53 (17.7)
3	उक्त दोनों योजना	180 (60)
	कुल	300 (100)

नोट - कोष्ठक में दी गई संख्याऐ प्रतिशत में है।

स्त्रोतः- व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

तालिका क्रमांक 1 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि स्व-सहायता समूह की महिलाओं को सशक्त करने के लिए जो योजनायें चलायी जा रही है उनमें 22.3 प्रतिशत महिलाऐं महिला रोजगार योजना से, 17.7 प्रतिशत महिलाऐं सक्षम योजना से सशक्त हो रही है एवं 60 प्रतिशत निदर्श महिलाऐं उक्त दोनों योजना से सशक्त हो रही हैं।

आत्मविश्वास में परिवर्तन की स्थिति का अध्ययन- तालिका क्रमांक 2 के अंतर्गत निदर्श महिलाओं का स्व-सहायता समूह के माध्यम से आत्मविश्वास में परिवर्तन की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक 2

निदर्श महिलाओं का स्व-सहायता समूह के माध्यम से आत्मविश्वास में परिवर्तन की स्थिति

क्रमांक	स्थिति	निदर्श महिलाओं की स्थिति
1	हां	250 (83.3)
2	नहीं	50 (16.7)
	कुल	300 (100)

नोट - कोष्ठक में दी गई संख्याऐ प्रतिशत में है।

स्त्रोतः- व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 83.3 प्रतिशत निदर्श महिलाओं में स्व-सहायता समूह के माध्यम से आत्मविश्वास का स्तर बढ़ा है, केवल 16.7 प्रतिशत महिलाओं का कहना है कि उनके आत्मविश्वास में परिवर्तन नहीं हुआ हैं। लेकिन जिन महिलाओं के आत्मविश्वास में परिवर्तन आया है समूह संलग्नता के पश्चात् बढ़ा है। यह विश्लेषण महिला स्व-सहायता समूह और महिला सशक्तिकरण के अन्तर्सम्बंधों को दर्शाता है।

पारिवारिक निर्णय में सहभागिता की स्थिति का अध्ययन- तालिका क्रमांक 3 के अंतर्गत निदर्श महिलाओं का पारिवारिक निर्णय में सहभागिता की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक 3

निदर्श महिलाओं का पारिवारिक निर्णय में सहभागिता की स्थिति

क्रमांक	सहभागिता	निदर्श महिलाओं की स्थिति
1	हां	219 (73)
2	नहीं	81 (27)
	कुल	300 (100)

नोट - कोष्ठक में दी गई संख्याऐ प्रतिशत में है।

स्त्रोतः- व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

तालिका क्रमांक 3 से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 73 प्रतिशत निदर्श महिलाओं की हभागिता पारिवारिक निर्णय में लेने में है, जैसे- घर के खर्च, बचत, बच्चों की शिक्षा,

घरेलू वस्तुओं की क्रय आदि सभी विषयों में होती है, केवल 27 प्रतिशत महिलाऐं जो पारिवारिक निर्णय लेने में सहभागी नहीं है। परिवार के समस्त निर्णयों में सहभागी महिलाओं का प्रतिशत महिलाओं की सशक्त पारिवारिक स्थिति को दर्शाता हैं।

महिलाओं की जागरूकता की स्थिति का अध्ययन– तालिका क्रमांक 4 के अंतर्गत शासकीय योजनाओं से निदर्श महिलाओं की जागरूकता की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक 4

शासकीय योजनाओं से निदर्श महिलाओं की जागरूकता की स्थिति

क्रमांक	विवरण	निदर्श महिलाओं की संख्या
1	हां	244 (81.3)
2	नहीं	56 (18.7)
	कुल	300 (100)

नोट - कोष्ठक में दी गई संख्याऐ प्रतिशत में है।

स्त्रोतः- व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

तालिका क्रमांक 4 के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक 81.3 प्रतिशत निदर्श महिलाऐं ग्रामीण क्षेत्रों में चल रही शासकीय योजनाओं के प्रति जागरूक है जैसे- किशोरी शक्ति योजना, आयुष्मति योजना, सक्षम योजना, स्वावलम्बी योजना, महिला पोषाहार योजना आदि। केवल 18.7 प्रतिशत महिलाऐं शासकीय योजनाओं के प्रति जागरूक नहीं है। इन महिलाओं को चल रही शासकीय योजनाओं के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है, एवं उन्हें इन शासकीय योजनाओं से मिलने वाले लाभ की जानकारी देनी चाहिए जिससे ये महिलाऐं इन योजनाओं के प्रति जागरूक हो।

सुझाव–

1. सामाजिक, आर्थिक तथा रचनात्मक कार्य में समूह की महिलाऐं बढ़-चढ़कर हिस्सा लें।
2. समूह द्वारा किये गये आर्थिक सामाजिक व रचनात्मक कार्य का विवरण समाचार पत्र में प्रकाशित करवायें जिससे अन्य महिलाऐं भी समूह में जुड़ने के लिए प्रेरित हो।
3. समूह सभी शासकीय योजनाओं का लाभ उठाने का प्रयास करें।
4. समूह अपना निर्णय सामूहिक विचार-विमर्श कर लेवें।
5. बैठक की अध्यक्षता हेतु समूह के हर सदस्य को अवसर दें, बैठक में सदस्य को क्रमानुसार अध्यक्षता करने के लिए कहें।

निष्कर्ष–

उक्त विश्लेषण के आधार पर यह निश्चित हो गया है कि ग्रामीण महिलाओं में स्व-सहायता समूह के माध्यम से जागरण के स्वर्णिम युग का शंखनाद हो चुका है। भविष्य में एक ऐसे युग के आगमन की पूर्ण संभावना है जो भारत के केवल ग्रामीण क्षेत्र को नहीं बल्कि पूरे भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थिति को सकारात्मक परिणाम देगा। स्व-सहायता समूह निर्धन एवं ग्रामीण महिलाओं का वह ठोस धरातल

साबित हो रहा है जहां ग्रामीण महिलाऐं स्वतंत्रता पूर्वक अपने इच्छाओं के पंख फैला रही है, जिन्हें अब रोका नहीं जा सकता।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. प्रेमा, ''महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण'' मार्च 2005
2. जी एस काला, ''स्व-सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण'' नवम्बर 2004
3. लालकृष्ण शिवरामकृष्णान, ''स्व-सहायता समूहों के माध्यम से गरीबी उन्मूलन'' मार्च 2003
4. डॉ. कृष्ण चंद्र चौधरी, ''ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण'' कुरूक्षेत्र, अगस्त 2013
5. डॉ. आर.सी. गुप्ता एवं सुरेन्द्र कुमार पंथी, ''स्व-सहायता समूह के द्वारा ग्रामीण भारत का विकास'' कुरूक्षेत्र, जुलाई 2013

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

छतरपुर जिले के पान उत्पादक किसानों की समस्याओं का अध्ययन

* नीना चौरसिया
** एस.पी. शुक्ला, *** अजय आर चौरसिया

सारांश– *बुंदेलखण्ड कभी पान की खेती के लिए जाना जाता था तथा पॉच सौ करोड़ का कारोबार करता था, आज हालात दो–तीन करोड़ के सालाना कारोबार पर सिमट गया है। मजदूरों की अनुपलब्धता, प्रतिकूल बाजार कीटो के साथ मौसम में वरिवर्तन भी पान की खेती करने वाले किसानों के लिये एक समस्या बन गया है। साथ ही पान किसानों को फसल बीमा की सुविधा न मिलना छतरपुर जिले के पान उत्पादक किसानों में अरुचि के कारण बन गये हैं। लोग पान की खेती से तौबा कर रहे हैं और जिनके पास कोई विकल्प नहीं हैं वे मजदूरी करने को मजबूर हैं। यही हालात रहे तो वो दिन दूर नहीं जब अपने अलग स्वाद और तासीर के लिए पहचाना जाने वाला छतरपुर जिले का यह देशी पान समाप्त हो जाएगा। पान की खेती के लिए प्रशासन के कृषि विभाग का सक्रिय सहयोग एवं पान फसल विशेषज्ञों का कृषि विभाग में उपलब्धता आवश्यक है।*

मुख्य शब्द– पान, पान का उत्पादन, जलवायु परिवर्तन, बाधक तत्व, प्रशासन।

भारत के इतिहास एवं परंपराओं से पान गहरे से जुड़ा है। इसका उद्‌भव स्थल मलाया द्वीप है। पान विभिन्न भारतीय भाषाओं में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जैसे- ताम्बूल (संस्कृत), पक्कू (तेलगू), वेटिलाई (तमिल और मलयालम) और नागुरवेल (गुजराती) आदि। पान का प्रयोग हिन्दू संस्कार से जुड़ा है, जैसे- नामकरण, यज्ञोपवीत आदि। वेदों में भी पान के सेवन की पवित्रता का वर्णन है।

पान की विभिन्न किस्मों को वैज्ञानिक आधार पर पॉच प्रमुख प्रजातियों बंगला, मगही, सांची, देशावरी, कपूरी और मीठी पत्ती के नाम से जाना जाता है। यह वर्गीकरण पत्तों की संरचना तथा रासायनिक गुणों के आधार पर किया गया है। रासायनिक गुणों में वाष्पशील तेल का मुख्य योगदान रहता है। ये सेहत के लिये भी लाभकारी है। खाना खाने के बाद पान का सेवन पाचन में सहायक होता है। पान में वाष्पशील तेलों के अतिरिक्त अमीनों अम्ल, कार्बोहाइड्रेट और कुछ विटामिन प्रचुर मात्रा में होते हैं। पान के औषधीय गुणों का वर्णन चरक संहिता में भी किया गया है।

पान पाइपर विटिल पाइरेसी कुल का पौधा है। एक बेल (लता) के रूप में लगता है यह एक बहुवर्षीय, द्विबीजपत्री उभयलिंगी लता है। वर्किल तथा जिआंबार (1915) के

* शोध छात्रा, समाजशास्त्र, म.गां.चि.ग्रा.वि.वि. चित्रकूट
** वरिष्ठ प्रवक्ता (लाइब्रेरी साइंस) कला संकाय, म.गां.चि.ग्रा.वि.वि. चित्रकूट
*** एसोसिएट प्रोफेसर, समाजकार्य, कला संकाय, म.गां.चि.ग्रा.वि.वि. चित्रकूट

अनुसार पान की उत्पत्ति का स्थान नागलोक या पाताल लोक माना गया है। वर्तमान में इन्डोनेशिया, मलेशिया, सुमात्रा, जावा, वेर्निया एवं अन्य पूर्वी द्वीप समूह का यह देशी पौधा है।

बुंदेलखण्ड का अपना एक अलग अंदाज है। इस इलाके का पान भी अपनी एक अलग पहचान दुनिया भर में बनाये हुए है। अपने अलग खास स्वाद और तासीर के लिए पहचाने जाने वाला साधारण सा पान का पत्ता अब समय के साथ असाधारण होता जा रहा है। जिस पान की फसल और व्यवसाय से हजारों लोगों को रोजगार मिलता था अब वह ऑकड़ा धीरे-धीरे सिमटने लगा है। कल तक जो मालिक होते थे आज मजदूरी करने को मजबूर हैं।

रियासत काल में जिस पान की खेती को राजा का संरक्षण मिलता था। जिसका परिणाम यह था कि यहॉं का पान देश ही नहीं दुनिया के अनेकों मुस्लिम देशों में जाता था। देश आजाद हुआ, आजादी के बाद पान पर कर भी लगने लगा था। मध्य प्रदेश में पान की कोई बड़ी मंडी नहीं है, किन्तु उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद, अलीगढ़, रामपुर, मेरठ, बदायू, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर आदि स्थानों पर वहॉं की सरकार मंडी टैक्स लगा दिया था जिसे बाद में उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री, कमलापति त्रिपाठी ने समाप्त किया था। उत्तर प्रदेश से निपटने के बाद मध्य प्रदेश सरकार ने भी पान पर मंडी टैक्स लगा दिया। मध्य प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री, मोतीलाल वोरा ने समाप्त किया। मध्य प्रदेश में मंडी टैक्स के पहले पान किसानों से सेल टैक्स भी वसूला जाता था जिसे तत्कालीन मुख्यमंत्री, प्रकाशचन्द्र सेठी ने समाप्त किया था।

बुंदेलखण्ड का यह इलाका समशीतोष्ण जलवायु के लिए जाना जाता था, जो पान की फसल के लिए सर्वाधिक अनुकूल होता है। पिछले दो दशक पूर्व इस इलाके में बने एक विशाल उर्मिल बांध बनने, जंगलों के अधाधुंध कटाई के बाद से इस इलाके के मौसम में भी बड़ा परिवर्तन आया है। जिसका परिणाम ये हुआ कि यहॉं जमकर सर्दी और तीब्र गर्मी का प्रकोप रहने लगा। मौसम का यह परिवर्तन पान की फसल के लिए अनुकूल नहीं रहा। जिस कारण हर साल पान फसल किसी न किसी रूप में बर्बाद हो जाती है।

बुंदेलखण्ड इलाके के छतरपुर, पन्ना, टीकमगढ़, महोबा में देशी पान की खेती होती है। इन जिलों की तकरीबन 25 हजार एकड़ में पान की खेती लगभग 20 हजार से ज्यादा किसान करते हैं। छतरपुर जिले के ही गढ़ी मलहरा, महराजपुर, बारिगढ़, पिपट, पनागर ऐसे गॉंव हैं जहॉं 90 प्रतिशत लोग सिर्फ पान की खेती पर आश्रित हैं। जरूरत है पान की इस फसल के संरक्षण और अनुसंधान की। इसी को दृष्टिगत रखते हुये शोधार्थी ने छतरपुर जिले के पान उत्पादक किसानों की समस्याओं का अध्ययन' पर शोध कार्य सम्पन्न किया है।

शोध प्रविधि-

मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले को उद्देश्यपरक पद्धति द्वारा चयनित किया गया है। छतरपुर जिले में सात तहसील है जिसके अन्तर्गत छतरपुर, महाराजपुर, नौगॉंव, लौड़ी, गौरिहार, राजनगर एवं बिजावर आते है। इनमें से चार तहसीलों क्रमशः छतरपुर, महाराजपुर बिजावर एवं गौरिहार को उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से चयनित किया गया। प्रत्येक तहसील से 50-50 इस प्रकार कुल 200 पान उत्पादक परिवारों को अध्ययन

की इकाई के रूप उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से चयनित किया गया है। उत्तरदाताओं से विस्तृत जानकारी एवं अभिमत प्राप्त करने के लिये साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोत के अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता ने विषय से संबंधित लिखित प्रलेखों, ग्रन्थों, समाचार पत्रों, इन्टरनेट, शासकीय कार्यालयों आदि से प्राप्त अभिलेखों को समाहित किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय–

छतरपुर जिला विश्व प्रसिद्ध पर्यटन क्षेत्र खजुराहो से 46 किमी दूर है। छतरपुर जिले की स्थापना 1707 ई में राजा छत्रसाल ने की थी। बुन्देलखण्ड में पान का उत्पादन छत्रसाल के समय से होता आ रहा है। यह जिला मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग के मध्य में स्थित है। इसके उत्तर में उत्तर प्रदेश का बांदा व हमीरपुर, दक्षिण में दमोह तथा सागर जिला, पूर्व में पन्ना तथा पश्चिम में टीकमगढ़ जिला स्थापित हैं। छतरपुर जिले की पूर्व-पश्चिम में चौड़ाई 143 किमी, उत्तर दक्षिण में लम्बाई 1378 किमी है।

तथ्य संग्रहण एवं साख्यिकीय विश्लेषण–

शोध अध्ययन हेतु छतरपुर जिले के 200 पान उत्पादक किसानों से उनकी व्यावहारिक समस्याओं संबंधी तथ्यों तथा अभिमतों को प्राप्त कर उनका वर्गीकरण एवं साख्यिकीय विश्लेषण तालिका क्रमांक 1 में दर्शाया गया है।

तालिका क्रमांक 1 : पान उत्पादक किसानों की समस्याओं संबधी अभिमत का वर्गीकरण

N=200

क्र.	समस्यायें	अत्यधिक सहमत	सहमत	निरपेक्ष	असहमत	अत्यधिक असहमत	मध्य स्कोर	माध्य विचलन
1	खाद और उर्बरकों की अधिक लागत	66	72	13	32	17	**3.7**	**3.535**
		(33.0)	(36.0)	(6.5)	(16.0)	(8.5)		
2	पूंजी की कमी	80	81	9	16	14	**4.0**	**4.67**
		(40.0)	(40.5)	(4.5)	(8.0)	(7.0)		
3	अच्छी रोपण सामग्री की कमी	59	76	18	34	13	**3.7**	**3.301**
		(29.5)	(38.0)	(9.0)	(17.0)	(6.5)		
4	मजदूरों की अनुपलब्धता	60	70	22	32	16	**3.6**	**3.8**
		(30.0)	(35.0)	(11.0)	(16.0)	(8.0)		
5	प्रतिकूल बाजार	53	72	18	35	22	**3.5**	**2.915**
		(26.5)	(36.0)	(9.0)	(17.5)	(11.0)		
6	उत्पाद की कीमत में उतार चढ़ाव	60	68	17	35	20	**3.6**	**3.346**
		(30.0)	(34.0)	(8.5)	(17.5	(10.0)		
7	कीटो और रोगों की गंभीरता	52	73	9	47	19	**3.5**	**3.346**
		(26.0)	(36.5)	(4.5)	(23.5)	(9.5)		
8	ऋण सुविधाओं की कमी	66	69	17	34	14	**3.7**	**3.535**
		(30.0)	(36.5)	(7.5)	(21.5)	(4.5)		
9	पान के विक्रय की समस्या	46	65	23	35	31	**3.3**	**2.213**
		(23.0)	(32.5)	(11.5)	(17.5)	(15.5)		
10	जलवायु परिवर्तन	52	73	9	47	19	**3.5**	**3.346**
		(26)	(36.5)	(4.5)	(23.5)	(9.5)		

नोट - कोष्टक मे दर्शाये गये अंक प्रतिशत में हैं।

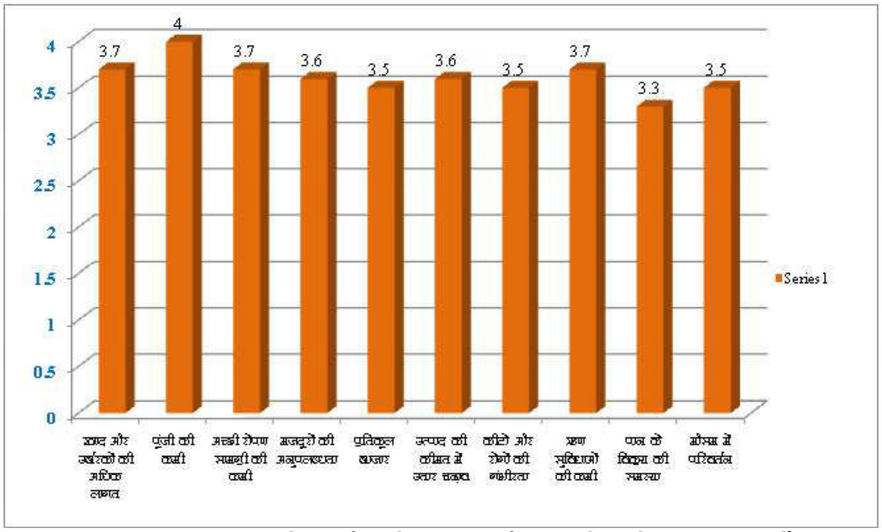

ग्राफ क्र. 1 : पान उत्पादक किसानों की समस्याओं संबधी अभिमत का वर्गीकरण

तालिका क्रमांक 1 में कुल 10 आयामों पर पान उत्पादन में आने वाली समस्याओं संबधी तथ्यों का वर्गीकरण उत्तरदाताओं से प्राप्त अभिमत के आधार पर लीकर्ट टैक्निक के प्रयोग से किया गया है।

सारणी का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि पान उत्पादन करने वाले किसानों की सबसे प्रमुख समस्या पूंजी की कमी है जिसका मध्यस्कोर 4.0 एवं माध्यविचलन 4.67 प्राप्त किया गया जो किसानों की आर्थिक स्थिति को प्रतिबिंबित करता है।

अच्छी रोपण सामग्री की कमी, खाद और उर्बरकों की अधिक लागत एवं ऋण सुविधाओं की कमी भी पान की खेती करने वाले उत्तरदाताओं की महत्वपूर्ण समस्या को प्रदर्शित करता है जिसका समान रूप से प्राप्त माध्य स्कोर 3.7 स्वत: इसकी गंभीरता को प्रमाणित करता है।

मजदूरों की अनुपलब्धता, उत्पाद की कीमत में उतार चढ़ाव के संबंध में उत्तरदाताओं से प्राप्त सहमति एवं असहमति संबंधित अभिमत के माध्य स्कोर 3.6 उत्तरदाताओं की अहम समस्याओं के रूप में परिलक्षित हुई।

प्रतिकूल बाजार, कीटो और रोगों की गंभीरता के साथ मौसम में वरिवर्तन भी पान की खेती करने वाले किसानों के लिये बाधक है। जिसे प्राथमिकता के स्तर पर अपनी सहमति प्रदान की गई जो तालिका में दर्शित ऑकड़ों से स्पष्ट परिलक्षित होते हैं एवं तत्संबंधित माध्य स्कोर 3.5 प्रासंगिकता की पुष्टि करते हैं।

छतरपुर जिले के पान उत्पादक किसानों की समस्याओं से संबंधित समस्त चयनित आयामों के माध्य स्कोर निरपेक्ष स्तर के ऊपर के थे तथा माध्य विचलन की स्थिति भी ऑकड़ों के माध्य के पास होने से, अंतर ऑकड़ों की गुणवत्ता को प्रमाणित करते हैं। फलस्वरूप इस संदर्भ के समस्त आयाम निश्चित ही समस्याओं को स्पष्ट रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं।

निष्कर्ष–

निष्कर्षतः पाया गया कि पान उत्पादन करने वाले किसानों की पूंजी की कमी, अच्छी रोपण सामग्री की कमी, खाद और उर्बरकों की अधिक लागत एवं ऋण सुविधाओं की कमी, मजदूरी की अनुपलब्धता, उत्पाद की कीमत में उतार चढ़ाव के साथ पान के विक्री हेतु उपयुक्त बाजार की अनुपलब्धता, पान संबंधी कीटों और रोगों की वृद्धि भी पान की खेती करने वाले किसानों के लिये समस्या के प्रमुख घटक के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं। जिसके चलते किसानों की संख्या लगातार घटती जा रही है। शासन की सक्रियता का अभाव पान की खेती पर नकारात्मक रूप से पड़ा है। जलवायु परिवर्तन के चलते जाड़े के महीनों में पान की फसल नष्ट हो जाती है।

अध्ययन से स्पष्ट है कि शोध में दर्शाई गई समस्याओं के कारण वर्तमान में पान की खेती करना आसान नहीं है। पान के उत्पादन को बढ़ाने एवं लाभ की खेती बनाने हेतु शासन स्तर पर कृषि विभाग का सक्रिय सहयोग, सकारात्मक नीति निर्धारण एवं पान फसल विशेषज्ञों में वृद्धि कर पान की खेती को प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. https://hi.wikipedia.org/wiki/Pan
2. दैनिक जागरण, मगध की शान, मगही पान, जुलाई 8, 2006, बड़े काम का है पान।
3. दैनिक जागरण, खान-पान-पाचक है पान, बड़े काम का है पान, जुलाई 8, 2006.
4. https://hi.wikipedia.org
5. Ravindra Vyas https:// bundelkhand.in/ news/pan-kisan- malik-se- bante-majdoor
6. https://www.jagran.com/uttar-pradesh/amethi, पान की खेती करने वालों को दावों का चूना, 13 जून 2017
7 बी.एल. (2002) अर्थकारी फसल, पान-ओ-पान, चास प्रजक्ती, (बंगाली में) पान पत्तीः एक नगदी फसल तथा इसकी उत्पादन तकनीकी, भारती, 30(9) 860.871
8 सिंह क.के. एवं अन्य (1990) पान पत्ती की जीर्णता तथा रखरखाव के व्यवहार पर विभिन्न रसायनों के उपचार तथा ताप दशाओं एवं विथानन पैकिंग पद्धतियों का प्रभाव- जर्नल पादप फसल, 16(1) 23-28
9 Changule B A (1960), Betel vine Cultivation in India. Farm Bulletin (Ed.) M G Kamathu, Directorate of Extension, Ministry of Food & Agriculture, New Delhi.

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

आदिवासियों (संथालों) का इतिहास

* बन्दे हुसैन अन्सारी

सारांश– *संथाल आदिवासी आदिकालीन सभ्यता के धरोहर तथा अपनी पृथक पहचानयुक्त सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के विरासत है। उनके पास अपनी परंपराओं का कोई लिखित इतिहास नहीं है। परंपराओ का लिखित वर्णन के नाम पर एकमात्र ''मारेहपरम कोरियक'' कथा पूर्वजो का इतिहास है। यह मौखिक श्रोतो पर आधारित संथालो की सामाजिक, धार्मिक संस्थाओ का वर्णन है। मनुष्य की उत्पति से संबंधित उनकी अवधारणा तथा उन विभिन्न स्थानों जिनसे गुजरते हुए संथाल अपने वर्नमान स्थान पर पहुँचे तथा उनका अनुभव जिसकी झलक हमें उनके लोकगीतो, प्रार्थनाओ मे मिलती है।*

मुख्य शब्द– संथाल जनजाति, भ्रमणशील, लोकगीत, प्रार्थना, विवाह लोकगीतों के स्वरूप

बिहार में संथाल सबसे बड़ी जनजाति है। इनकी संख्या बिहार की कुल आबादी का 8% और जनजातीय आबादी का 36% है। 1991 की जनगणना के अनुसार बिहार में इनकी जनसंख्या 66,16,914 थी।[1] यह एक द्रविड़ जनजाति है जो पश्चिम बंगाल, असम, बिहार, उत्तरी उड़ीसा और बंग्लादेश में भी पाये जाते है। 30 विभिन्न आदिवासी समुरायों की गणना की गई है। द्रविड़ जाति में संथाल के अतिरिक्त हो, मुण्डा और उराँव जनजातियाँ आती है।[2] आधे से अधिक संथाल परगना जिले में पाए जाते है और लगभग एक तिहाई हजारीबाग और सिंह भूम में बसते है। उन स्थानों के अतिरिक्त संथालो की जनसंख्या का एक छोटा हिस्सा धनबाद, पुर्णिया, मुंगेर और भागलपुर में भी पाए जाते हैं। जनजातियों की तुलना में संथाल एक ही स्थान पर अधिक दिनो तक कम ही रहते थे। शिकार करना जंगलो को काटकर खेती योग्य बनाना और एक जगह से दूसरी जगह लगातार भ्रमणशील बने रहना संथाली आदिवासीयों के जीवनयापन की विशेषता थी।[3]

बिहार में छोटनागपुर और संथाल परगनां दो ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ आदिवासियों की जनसंख्या सर्वाधिक है। बिहार मे जो जनजातियाँ बहुसंख्यक है उनमें संथाल, मुण्डा, हो, उराँव और पहाड़िया का नाम लिया जा सकता है। ये आदिवासी मुख्यताः पहाड़ों जंगलो और झीलों से घिरे दक्षिण बिहार मे संकेन्दित है। यहाँ रहने वाले आदिवासियों का जीवन-यापन कठिन है। संथालो को भारत की सबसे बड़ी सजातीय जनजाति माना गया है। संख्या के अधार पर गोण्ड और भील संथालों के उपर है।[4] टौरीसी का विचार है कि ये एक सामान्य नाम से जानने वाले आदिवासी समूहों के संघटक है।

* शोधार्थी, सामाजिक विज्ञान संकाय, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार

संथाल परगना (जहाँ संथाल आदिवासी संकेन्द्रित हैं), का गठन 1855 मे अधिनियम 37 के अंतर्गत हुआ। यह भागलपुर डिवीजन के दक्षिण -पूर्वी भाग में स्थित है। संथाल परगना जिला का क्षेत्रफल 5470 वर्गमील है। उसकी सर्वाधिक लम्बाई उतरी -पूर्वी गंगा से दक्षिण-पश्चिम मे बराकर नदी तक 120 मील है। पश्चिम से पूर्व तक की चौड़ाई भी लगभग उतनी ही है। संथाल परगना जिला का प्रशासनिक मुख्यालय दुमकर है।[5]

संथाल परगना का गठन उस विपुल संथाल विद्रोह का प्रत्यक्ष परिणाम था। संथाल परगना जिसमे अभी हजारीबाग, मुंगेर और भागलपुर के जिले शामिल है लेकिन बिहार के बटवारे के बाद मुंगेर और भागलपुर अलग हो गये है। 1765 में ईस्ट ईंउिया कंपनी को दीवानी मिलने के बाद इस क्षेत्र पर अंग्रेजो का अधिकार हो गया।[6]

अंग्रेजो के अधिकार मे आने के पूर्व संथाल परगना के क्षेत्रो का ऐतिहासिक वर्णन बड़ा कठिन है, क्योंकि प्रामाणिक साक्ष्यों के अभाव मे मुगल शासन तक का इतिहास अस्पष्ट है। मेगस्थनीज ने उन्हे मल्ली नाम से 302 ई0 पू0 मे संबोधित किया। हवेनसांग ने भी 645 ई0 में उसकी चर्चा अपनी पुस्तक मे की है।[7]

संथाल आदिवासी आदिकालीन सभ्यता के घरोहर तथा अपनी पृथक पहचानयुक्त सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के विरासत है। उनके पास अपनी परंपराओं का कोई लिखित इतिहास नहीं है। परंपराओ का लिखित वर्णन के नाम पर एकमात्र ''मारेहपरम कोरियक'' कथा पूर्वजो का इतिहास है।[8] यह मौखिक श्रोतो पर आधारित संथालो की सामाजिक, धार्मिक संस्थाओ का वर्णन है। मनुष्य की उत्पत्ति से संबंधित उनकी अवधारणा तथा उन विभिन्न स्थानो जिनसे गुजरते हुए संथाल अपने वर्नमान स्थान पर पहुँचे तथा उनका अनुभव जिसकी झलक हमें उनके लोकगीतों, प्रार्थनाओ मे मिलती है। मनुष्य की उन्पति के संबंध मे उनकी मान्यता है कि आदमी उगते हुए सूरज की दिशा मे पैदा हुआ।[9] ठाकुर जिऊ (जिसे संथाल ईश्वर का दूत मानते है) ने एक नर और एक मादा बत्तख का सृजन किया। उन दोनों अण्डों से पहले जीव दम्पति पिलचुहरम और मिलचु बुरही अस्तित्व में आए। तब ठाकुर के आदेश पर मारग बुरू (महानपर्व) ने उन जीवों की देखभाल की और वे टिहीरी -पिपीरी मे पले बढ़े। बड़े होने पर पिल्चुहरम और पिल्चुबुरही दुनिया के पहले दम्पति बने उस प्रथम दम्पति ने सात पुत्र ओर सातपुत्रियों को जन्म दिया जिन्होने वंश को आगे बढ़ाया। एक लम्बे समय तक उनके बीच विवाह के नाम पर एक दूसरे के हाथ मे हाथ दे देने का रिवाज प्रचलित रहा। विवाह का यह तरीका तब तक चलता रहा जब तक कि सामाजिक रीति रिवाज की शुरूआत नही हुई।[10] यही बढ़ी हुई जनसंख्या सात गोत्रों में बँट गई। ये सात गोत्र जो आज संथाल आदिवासियों के बीच प्रचलित हैं हरसंदक, मुरमु, किसकू, हेम्ब्रम, मार्डी, सोरेन और टुडू है।

संथाल अपना मूल निवास स्थान हिहिरी पिपरी को मानते हे। इस जगह की सही पहचान पर विद्वानों के बीच मतभेद हैं। स्क्रेफसर्ड का मानना है कि बेबीलोन ही हिहिरी पिपरी है। उनका ये भी मानना हे कि संथाल आदिवासियो ने आर्यो से पहले बोलन दर्रे से होते हुए भारत मे प्रवेश किया। स्क्रेफसर्ड के इस सिद्धान्त का खंडन ई0 टी0 डाल्टन ने किया है।[11] इन्होने संथालो की उत्पति का उत्तर पूर्वी सिध्दांत दिया। डाल्टन संथालो का आरंभिक निवास असम को मानते हैं। सर विलियम हन्टर और ए0के0 कीन का विचार है कि मुण्ड परिवार भारत मे उत्तर पूर्वी दर्रे से होकर भारत आये। आगे चलकर वे

द्रविडो मे समाविष्ट हो गए।

संथालो के लिखित श्रोतों के अभाव मे हम उनकी परपराओ के आधार पर अनुमान मात्र लगा सकते है। अपनी घुमक्कड़ प्रवृति और क्षूम खेती करने के कारण आगे बढ़ते हुए संथाल पीछे कोई उल्लेखनीय चिन्ह् नही छोड़ पाए। उससे इतिहासकारो के समक्ष उस रास्ते एवं दिशाओं को निश्चित कर पाना अत्यंत कठिन है, जिससे होकर संथाल जंगल महल पहुँचे। जंगल महल का क्षेत्र जिसमें वीर भूम, बाँकुरा, मिदनापुर आते थे। संथाल परंपराओं के अनुसार हिहिरी पिपरी उनका मूल निवास स्थान था जिसकी पहचान हजारीबाग जिले के अहूरी परगना से की गई है।[12]

मधु सिंह नाम के किसी जमीदार के अत्याचार ने उन्हे चाई चम्पा छोड़ने को बाध्य किया। इसके बाद वह छोटानागपुर की ओर बढ़े जहाँ वह मारंगबुरू (पर्वत) मुण्डाओ के देवता के करीब आए। इसके आगे उन्होने पटकुम मे बसने का प्रयास किया लेकिन भूमिजों के कारण संथाल वहाँ से आगे की ओर घकेल दिए गए। यह जगह काफी धने जंगलो से घिरा था। यही से इनलोगों ने ''सथाल'' नाम ग्रहण किया। इससे पहले ये खरवार कहलाते थे। यहाँ उन्होने कई गांव बसाए जो आज मानभूम जिला के पूर्वी भाग मे पड़ता है।[13]

इस बहस के आधार पर कहा जा सकता हे कि अपनी भ्रमणशील प्रवृति एवं घुमक्कड़ तरीके के अनुरूप संथाल अपनी मूल भूमि से भटकते हुए चाई-चम्पा और उसके बाद छोटानागपुर के पठार की ओर बढ़े। 18वीं सदी की अंतिम तिहाई तक वह रामगढ़ मे बस चुके थे।[14] इसके बाद वह सिंहभूम एवं मिदनापुर जिले मे आकर बसे। यहाँ से संथालो ने उत्तर की ओर बढ़ना शुरू किया और तब तक बढ़ते रहे जब तक कि 18वीं सदी के अंत में उनकी घुमकक्कड़ प्रवृति पर रोक लगाने एवं उनके व्यवस्थापन का सरकार की ओर से प्रयास आरंभ नही किया गया।

ये व्यवस्थापन का कार्य पूरी तत्परता के साथ शुरू हुआ। बड़ी संख्या मे अन्य क्षेत्रो से संथाल आकर यहाँ बसना शुरू किया। कंपनी की सरकार ने उन्हे प्रोत्साहन दिया ताकि वे यहाँ जंगल को साफ कर सके। 1795 ई0 एशियाटिक रिसर्च मे प्रकाशित किया गया था:- संथालो का जिक्र एक असभ्य एवं अशिक्षित जनजाति के रूप मे किया गया है, जो कंपनी द्वारा अधिकृत क्षेत्रो में सबसे कम सभ्य भाग रागमढ़ मे रहने थे।[15]

दामिनः ए-कोह में संथाल मिदनापुर, बाँकुरा, वीरभूम और पुरूलिया से आए जो जंगल महल के नाम से जाना जाता है। दमिन ए-कोह मे संथालो के आगमन एवं प्रवसन की गति लगातार बढती रही और संथाल उड़ीसा, घालभूम, पलामू, हजारीबाग, मिदनापुर, बाँकुरा और वीरभूम से आकर यहाँ बसे थे। भागलपुर के कलेक्टर डनवर के अनुसार 1836ई0 तक दामिन ए कोह मे 427 गाँव बस चुके थे।

1770 के भयंकर अकाल ने बंगाल के इतिहास को एक नया मोड़ दिया। अकाल के कारण जमीन की कीमत काफी गिर गई थी क्योकि जमीन ज्यादा हो कद्र था, जबकि उस पर खेती करने वालो की संख्या काफी कम हो गई थी। बंजर भूमि को खेती लायक बनाने के उद्देश्य से काफी नीचे दर पर सरकार की ओर से जमीन देने का लालच देकर बाहरी क्षेत्रो से मेहनती किसानो को आकर्षित किया गया।[16]

इस अवसर का संथालो ने फायदा उठाया। यदि कहा जाय कि 1770 के बाद उस

क्षेत्र मे खेतिहर किसानों की कमी को पूरा करने और इसे फिर से बसाने का काम संथालों ने किया तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। संथाल नए जमीन की तलाश मे थे जहाँ बस सके क्योंकि अब तक उन्होने अपनी खानाबदोश प्रवृति को लगभग त्याग दिया था और स्थायी कृषक बनने की उच्छा जागृत होने लगी थी। जमीन की तलाश और इसके लिए दूसरे आदिवासियो से संघर्ष की झलक मिलती है। 1790 तक संथाल नीचे के जमीन पर और उसके आस पास के क्षेत्र पर प्रायः हमला करते एवं लूट-पाट करते थे और उसी कारण कार्नवालिस ने विरभूम को सीधे अपने शासन मे ले लिया था।[17]

दुमका मे बसे ऐसे 500 संथाल परिवारो का उल्लेख है जिन्होने अपना असली घर पलामू और रामगढ़ को बनाया।[18] सदरलैड के अनुसार 1819 तक संथलो ने गोडडा सव डिवीजन में रास्ता बना लिया था और 1827 तक आते-आते इस क्षेत्र के पूरे उत्तरी भाग तक फैल गये थे।[19] उनके देखा देखी अन्य संथालो ने भी 1836-1851 के बीच भारी संख्या मे वहाँ पहुँचे। 1851 तक दामिन ए कोह में कम से कम 83265 संथाल 427 गाँव मे बस चुके थे।

संथाल गाँव बाहर से देखने पर बेढ़ंगे तथा गंदे दिखते थे लेकि भीतर से अपने घरों को साफ-सुथरा रखते थे। घर की दीवारों को वह लाल उजला या काले रंग की मिट्टी अथवा चारकोल से रंगते थे। सुअर, मुर्गी जैसे पालतू जानवरो के लिए अलग स्थान होता था जो घर से बाहर होता था। संथाल समाज शुरू से ही महिलाओं और पुरूषों के समन्वित सहयोग पर आधारित था। मछलियों को पकड़ने पशुओं की देख-भाल करने, फलों और पत्तों को एकत्रित करने तथा खेती के कामों को दोनो मिलकर करते थे।[20] लेकिन कुछ कार्यो में भेद था जैसे कि महिलाएँ हल चलाने तथा बीजों को रोपने का काम नही कर सकती थी। दूसरी तरफ थ्रेसिंग का काम महिलाओं का था और इसे पुरूष तब तक नहीं करते थे जब तक कि उनके घर में एक भी महिला सदस्य हो। दाह संस्कार में महिलाओं की भागीदारी वर्जित थी।

जहाँ तक संथाल आदिवासी के बीच शिक्षा के स्तर का सवाल है जो उनमें किसी तरह की औपचारिक शिक्षा का अभाव था। वह अपने माहौल से परंपराओं और रिवाजों को सीखते हुए जीवन-निर्वाह के पथ पर बढ़ते थे। पूरे जनजातीय समाज में ईसाई मिशनरियों के प्रयास का योगदान था।

छोटानागपुर के दूसरे आदिवासियों उराँव, मुण्डा, हो, खड़िया आदि की तरह संथाल आदिवासियों के बीच भी आमतौर पर वयस्क विवाह का प्रचलन रहा है। संथालों के बीच मुख्यतः 6 प्रकार के विवाह प्रचलित थे- 1. किरिंग बहू, 2. घण्टी जवाई, 3. किरिंग जवाई, 4. इतूत, 5. नीरबोलोक और 6. टुन्की पिपील वाप्ला। विवाह के इन तरीको में किरिंग बहू सबसें ज्यादा प्रचलित है। यह विवाह का एक परंपरागत तरीका था जिसमें बातचीत बतौर समझौता के द्वारा विवाह तय किया जाता था। किरिंग बहू में वधू की कीमत देकर उसे अपने घर ले आने की प्रथा थी।

इसके अतिरिक्त विवाह का एक अन्य प्रकार था ''संगवाप्ला''। यह विधवा महिलाओं के लिए प्रचलित था। इसमें वधू को वर के घर लाया जाता जहाँ वह अपने मित्रों, परिचितों के साथ एक छोटे से समारोह मे भाग लेती थी। फिर एक खास फूल से वधू के माथे पर वर सिन्दूर लगाता था। इस रिवाज से यह पता चलता है कि संथालों

के बीच विधवा विवाह का भी प्रचलन था। लेकिन ऐसी स्थिति में वधू की कीमत किसी अविवाहित कन्या की तुलना में आधी होती थी।[21]

संथाल आदिवासियों में विवाह-विच्छेद तथा विधवा पुर्नविवाह का प्रचलन था। तलाक की स्थिति में पति-पत्नी यदि दोनों तलाक के लिए राजी हो तो ऐसी स्थिति में साल वृक्ष के हरे पते को दो भागों में चीरकर तलाक संपूर्ण हुआ मान लिया जाता था। यदि पति दोषी पाया गया तो उसे कन्या मूल्य लौटाना पड़ता था तथा यदि पत्नी का दोष सिद्ध हो गया तो उसे कन्या मूल्य नही लौटया जाता था।[22]

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. हरिश्चन्द्र उप्रेती - भारतीय जनजातियों, जयपुर, 1995, पृ0 6
2. आर0 सी0 प्रसाद- 'बिहार', दिल्ली 1996, पृष्ठ- 34
3. एफ0बी0ब्रेड लेबर्ट- दि स्टोरी ऑफ इन इण्डियन उपलैण्ड, लंदन- 1905 पृष्ठ- 21
4. पी0सी0 चौधरी- द्वारा उद्धृत, बिहार में 1857, पटना, 1965, पृ0 676.
5. जोसेफ टोटीसी- दि संथाल आई0एस0आई0, 1976 भाग-8, 1980 पृ0 4
6. पी0सी0रॉय चौधरी- बिहार में, 1857, 1959 पृ0- 1,
7. उपरोक्त- बिहार में, 1857, 1959 पृ0-1
8. ओ0 स्केफसर्ड- द्वारा, 1887 में प्रकाशित
9. चारूलाल मुखर्जी- दि संथाल्स कलकता, द्वितीय सं0- 1962 पृ0-8
10. चारूलाल मुखर्जी- दि संथाल्स कलकता, द्वितीय सं0 1962, पृ0-36
11. ई0टी0 डाल्टन- डिस्क्रिप्टिव एथनोलॉजी ऑफ बंगाल कलकता, 1973 पृ0 64
12. चारूलाल मुखर्जी- दि संथाल्स कलकता, द्वितीय सं0- 1962, पृ0- 147
13. ई0टी0 डाल्टन- डिस्क्रिप्टिव एथनोलॉजी ऑफ बंगाल कलकता, 1973, पृ0- 208-209
14. सी0ई0ए0 डब्लू0- जर्नल ऑफ फ्रांसिस बुकानन जिसमें 1810-11 में भागलपुर जिले के सर्वे को रखा गया था, 1929, पृ0- 27
15. पी0सी0 राय चौधरी- 1857 ई0 बिहार, 1965, पृ0-13
16. एन0के0 सिन्हा भाग-2, कलकता, 1968, पृ0-62
17. डब्लू0डब्लू0 हन्टर- पूर्वोद्धत, दिल्ली- 1975, पृ0- 219
18. फ्रांसिस बुकानन - एन एकाउन्ट ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर इन 1810-11, पटना, 1939 पृ0-264
19. ई0 एस0 मैन- संथालिया एण्ड दि संथाल्स, कलकता- 1867, पृ0-12
20. बी0 बी0 सिन्हा- सोसायटी इन ट्राईबल इण्डिया, 1982, पृ0 145
21. डॉ0 हरिश्चन्द्र उप्रेती- भारतीय जनजातियों, जयपुर, 1985, पृ0- 243
22. डॉ0 हरिंश्चन्द्र उप्रेती- भारतीय जनजातियों, जयपुर, 1985, पृ0- 172

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

भावों की अभिवृद्धि में सहायक हैं वर्ण

* निशा गुप्ता

सारांश– *रंग प्रकाश का एक गुण है। यह चित्र को सौन्दर्यपूर्ण तथा भावपूर्ण बनाता है। भिन्न–भिन्न भावों को दर्शाने में भिन्न–भिन्न प्रकार के रंगो की विशेष भूमिका है। यदि रेखाएँ किसी चित्र के हड्डियों का ढ़ाँचा है तो वर्ण उसके आभूषण है। मौसम के अनुसार प्रयुक्त किये गयें रंग उष्ण एवं शीतल प्रभाव उत्पन्न करते हैं। रंग से पूर्ण चित्र सहसा ही दर्शक कोअपनी ओर आकर्षित कर लेता है।*

मुख्य शब्द– आकर्षण, सौन्दर्य, छटा, रूप, प्रकाश

वर्ण प्रकाश का गुण है, कोई स्थूल वस्तु नहीं। इसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, बल्कि अक्षपटल द्वारा मस्तिष्क पर पड़ने वाला एक प्रभाव है।[1]

भारतीय कला में वर्ण का प्रयोग साज-सज्जा हेतु प्रागैतिहासिक काल से होता आ रहा है। अपादर्शकता या घनत्व और हल्केपन या चमकीलेपन के विभन्न स्तरों और क्रमों में स्थापित वस्तु के बीच-बीच के अन्तराल और सीमा रेखाओं के भीतर के स्थान को भरने के लिए रंग का प्रयोग तो होता ही था, किन्तु रंग के मात्र इस व्यवहारिक उपयोग से भी बढ़कर उसका भारतीय चेतना में एक और गहरा महत्व था। स्टैला क्रेमरिश ने बौद्ध और ब्राहमण ग्रन्थों का उदाहरण देते हुए इस महत्व की व्यवस्था की है। इस महत्व को भारतीय जनमानस ने सरलता से समझ लिया था और स्वीकार कर लिया था।

समस्त तत्वों में सबसे अधिक संवेगात्मक तत्व वर्ण है। यह वैज्ञानिक तो है ही, साथ-साथ उसमें व्यवस्था के तत्व भी विद्यमान है। गहन रूप से विचार किया जाए तो यह स्पष्ट है कि वर्ण, प्रकाश की किरणों का विशेष गुण है। श्वेत प्रकाश में सभी वर्ण उपस्थित रहते हैं। सभी सतहों में सफेद प्रकाश की किसी एक अथवा कई स्रोतों की किरणों को सोखने की शक्ति होती है जो किरणे सतह द्वारा शोषित नहीं की जाती, वह आँख की ओर लौट जाती है। पदार्थ की सतह द्वारा शोषित न की गयी किरणें ही रंगत के लिए उत्तरदायी होती है, और वस्तु के वर्ण का निर्धारण करती है।

भारतीय कला में वर्ण अत्यधिक भावनापूर्ण तथा आत्मचेतना से सम्बन्धित तत्व है, जो पूर्ण रूप से प्रकाश और दृष्टि पर निर्भर करता है। देखा जाए तो प्रकाश और दृष्टि के बिना वर्ण का ज्ञान हो पाना असम्भव है। हमारे नेत्रों की देखने की शक्ति पर सर्वप्रथम सबसे प्रमुख प्रभाव वस्तुओं के रंग का पड़ता है, उसके बाद ही रूपाकार, रेखा एवं बल आदि पर दृष्टि जाती है, यदि कहा जाए कि संसार के लिए वर्ण ही जीवन है, इसके बिना संसार हमें मृत प्रतीत होगा, तो यह गलत नहीं होगा।[2]

==========================

* एसोसिएट प्रोफेसर, जे0के0पी0पी0जी0 कॉलेज, मुजफरनगर

क्रेमरिश कहती है- छान्दोग्य उपनिषद में एक अनुच्छेद ऐसा ध्वनित करता प्रतीत होता है कि स्वयं वर्ण ही रूप है, वस्तुतः 'रूप' शब्द का प्रयोग वर्ण का ही महत्व बताने के लिए किया गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि वर्ण और कुछ नहीं स्वयं वास्तविक रूप है। 'कथावस्तु' तथा 'अभिधर्मकोश' में जो क्रमशः हीनयान और महायान बौद्ध परम्परा की चर्चा है, वह ऐसा इंगित करती है कि वर्ण ही रूप का दृश्य रूप है, कि रूप और वर्ण अर्थात रूप और वर्ण एक ही चीज है। बाघ, अजन्ता बादामी जैसे स्थानों के प्राचीन भारतीय चित्रों में वर्ण की यह धारणा है कि वर्ण ही रूप का वास्तविक तत्व है।[3]

वर्ण के गुण– वर्ण के तीन गुण होते हैं। इन्हें हम वर्ण के अध्ययन की तीन दिशाएँ कह सकते हैं। ये तीनों गुण प्रत्येक वर्ण में विद्यमान रहते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी वस्तु में लम्बाई, चौड़ाई तथा मोटाई होती है। ये तीनों इस प्रकार है।

क) रंगत

ख) मान

ग) सघनता

कभी-कभी वर्ण के इन तत्वों को वर्ण का गुण, लक्षण एवं मात्रा भी कहा जाता है। हमारे नेत्रों पर वर्ण के इन गुणों का भी प्रभाव पड़ता है, जो साज-सज्जा के भाव को व्यक्त करने में सहायक है।

क) **वर्ण की रंगत**–

रंगत वह गुण है, जिसके द्वारा ही वर्ण को पहचाना जा सकता है, जिसके द्वारा ही हम एक वर्ण को दूसरे वर्ण से भिन्न कर सकते हैं।

यह रंग की प्रवृत्ति होती है, जैसे- पीलापन, लालपन, नीलापन। यह वर्ण का वह गुण माना जाता है, जसकी सहायता से नीले, पीले तथा लाल के मध्यान्तर को दर्शक जान पाता है।

विभिन्न प्रकार की रंगतों को रंगीन प्रकाश द्वारा अथवा रंग के प्रयोग से उत्पन्न कर सकते हैं। यदि किसी स्थान को लाल करने के लिए या तो उस पर लाल रंग कर दिया जाए, अथवा लाल रंग का प्रकाश डाला जाए तो इच्छित रंगत प्राप्त हो जाती है। विभिन्न रंगतों के मिश्रण द्वारा अन्य रंग प्राप्त किये जा सकते है। वर्णचक्र तथा वर्णक्रम में 'रंगत' वर्ण की स्थिति को दर्शाती है।

वर्णो का वर्णीकरण–

वर्णचक्र में अंकित वर्णो को तीन आधार का वर्णीकरण किया गया है। विभिन्न विद्वानों के वर्ण के सम्बन्ध में विभिन्न मत है।

प्रांग के अनुसार– वर्ण को तीन प्रकार के होते है। पीला, लाल, नीला

न्यूटन के अनुसार– वर्ण सात प्रकार के होते है। लाल, बैंगनी, नीला, लाल, हरा, पीला, नारंगी और लाल प्रकाश के होते हैं।

ए.एच.मुन्सैल के अनुसार– वर्ण पाँच प्रकार के होते है। पीला, नीला, हरा, लाल और बैंगनी।

मनोविज्ञान के अनुसार– वर्ण चार प्रकार के होते हैं। पीला, हरा, नीला तथा लाल।

भौतिक विज्ञान के अनुसार– वर्ण तीन प्रकार के होते हैं। लाल, हरा तथा बैंगनी।

विष्णु धर्मोत्तरपुरण के अनुसार–

भारतीय कला सिद्धान्त ग्रन्थ विष्णु- धर्मात्तर पुराण में मुख्य रंग पाँच माने गए है। लाल, सफेद, पीला, काला तथा हरा। इसी पुराण में दूसरे स्थान पर सफेद पीला, काला, नीला व हरा मुख्य रंग माने गए हैं। शिल्प रत्न में सफेद, लाल, पीला, काला व श्याम वर्णों की ओर मानसोल्लास में शंख-चूर्णी सफेद (सुधा) लाल, हरिताल व काजल को मुख्य वर्णों के अन्तर्गत माना गया है।

कला रचना के आधार पर वर्ण का वर्णीकरण तीन रूपों में किया गया है। प्राथमिक रंगत - द्वितीयक रंगत - तृतीयक रंगत

1) **प्राथमिक रंगत**– प्राथमिक वर्ण लाल, नीला एवं पीला है। इन वर्णो को किसी अन्य रंगत के मिश्रण से नहीं बनाया जा सकता है। वर्ण चक्र में ये अपने विरोधी रंगत के सामने स्थित होते हैं, जैसे - लाल वर्ण के सामने हरा वर्ण तथा पीले वर्ण के सामने बैंगनी वर्ण।

2) **द्वितीयक रंगत**– दो प्राथमिक रंगतो के मिश्रण द्वारा द्वितीय रंगते प्राप्त की जा सकती है, जैसे- लाल व पीला मिलाने से नारंगी तथा लाल व नीला मिलाने से बैंगनी, तथा पीला व नीला मिलाने से हरी रंगत बन जाती है। द्वितीय रंगतो की वर्ण चक्र में स्थिति दो प्राथमिक वर्णो के मध्य में होती है।

3) **तृतीयक रंगत**– एक प्राथमिक तथा एक द्वितीयक रंगत के मिश्रण से तृतीयक रंगत का निर्माण होता है। जैसे - लाल तथा नारंगी के मिश्रण से लाल, नारंगी, बैंगनी तथा नीले के मिश्रण से नीला बैंगनी रंगत बनती है।

ख) **वर्ण का मान–**

यह रंगत के हल्के गहरेपन का द्योतक है, जैसे - गहरा लाल तथा हल्का लाल। यदि किसी रंगत में सफेद रंग मिला दिया जाए, तो उस वर्ण का मान बढ़ जाता है और यदि काले के द्वारा मिश्रित किया जाए तब उसका मान कम हो जाएगा। इस प्रकार सफेद व काले की मात्रा किसी एक रंग से मिलाकर एक ही रंगत के विभिन्न मान प्राप्त किए जा सकते हैं, जो निम्न प्रकार है।

1,2,3 निम्नमान 4,5,6 मध्यम मान 7,8,9 उच्च मान स्तर कहे जाते है।

	10			
उच्च मान	9	सफेद	White	W
	8	पीला	High Light	HL
	7	पीला हरा, पीला नारंगी		
मध्यम मान	6	नारंगी	Low Light	LL
	5	लाल नारंगी, नीला हरा	Middle	M
	4	लाल, नीला	High Dark	HD
निम्न मान	3	लाल बैंगनी, नीला	Dark	D
	2	बैंगनी	Low Dark	LD
	1	काला	Black	B
	0			

पास-पास के मान के वर्ण सामंजस्यपूर्ण होते हैं तथा विरोधी मान की रंगते गहरी विपरीतता दिखाती है। पृथक-पृथक रंगतो का मान स्वतः एक सा नहीं होता। पीले वर्ण का मान स्तर अधिक नही बढ़ाया जा सकता। इसी प्रकार बैंगनी का मान अधिक स्तरों का मन नहीं किया जा सकता। वर्ण की प्रकाशित अवस्था को टिन्ट तथा अन्धकारपूर्ण को शेड़ कहते है। उच्च मान वस्तु का आकार बढ़ाते है, विस्तार का प्रभाव देते हैं, इसी कारण कमरे की छत सफेद अथवा उच्च मान की होने पर ऊँचाई का आभार देती है। सफेद तथा उच्च मान प्रकाश को परिवर्तित करते हैं। काले तथा गहरे मान की वस्तु का आकार छोटा दिखाई देता है। छोटे कमरे की दीवारें गहरे मान में पुती हुई होने पर वह और अधिक छोटे होने का प्रभाव देती है। गहरे मान का निकटता का आभास देते हैं, अतः गहरे मान के वर्ण फर्श को अधिक भार देते हैं, और स्थायीत्व प्रदान करते हैं। पास-पास के मान की रंगतो का प्रभाव शान्त तथा सुखद होता है। विरोधी मान आकर्षक एवं अधिक गति प्रदर्शित करते हैं। कई वर्ण का प्रयोग करते समय उनका मान एक सा रखने पर सुखद प्रभाव देते है। समान रूप की रंगतो का विरोधाभास इतना चमत्कृत नहीं करता जितना कि किसी एक ही वर्ण का छाया तथा प्रकाश का विरोधाभास। पृष्ठभूमि के साथ विरोधी मान के रूप अपनी आकृति में अधिक स्पष्ट होते हैं। काली पृष्ठभूमि पर श्वेत रूप अपने क्षेत्र से बड़ा प्रतीत होता है, जब कि श्वेत पृष्ठभूमि पर काला रूप अपने आकार में छोटा दिखाई देता है।

छाया एवं प्रकाश सदैव परिवर्तित होते रहते हैं जिसका स्पष्ट प्रमाण प्रातःकाल से सांयकाल तक के सूर्य का प्रकाश है, जो समय के अनुकूल परिवर्तित होता रहता है। पदार्थ पर जितना अधिक प्रकाश होगा, पदार्थ उतना ही अधिक प्रभावित करेगा, तभी तो जोहनंस इट्टन ने कहा है।

"Colours are the children of light, and light is their mother."[4]

ग) वर्ण की सघनता-

वर्ण की सघनता द्वारा वर्ण की चमक को अभिव्यक्त किया जाता है तथा वर्ण की यह विशेषता रंगत की शुद्धता की सूचक है। मान की सहज स्थिति में रंगत में सर्वाधिक सघनता होती है तथा उच्च अथवा निम्न मान स्थितियाँ सघनता को कम कर देती है।[5] यथा गुलाबी अथवा कत्थई की अपेक्षा शुद्ध लाल वर्ण में सबसे अधिक सघनता होती है।

पूर्ण शुद्धता के वर्ण अत्यन्त चमकीले तथा चमत्कृत करने वाले होते हैं। अशुद्धता में रंगते अधिक शान्त होती है। अधिक बड़े क्षेत्रों में कम शुद्धता की रंगते अधिक सुखद होती है तथा पूर्ण तीव्रता की रंगते छोटे-छोटे क्षेत्रों में रूचिकर प्रतीत होती है। वर्ण की तीव्रता में परिवर्तन उसकी विरोधी रंगत के साथ मिलकर किया जा सकता है। इसी प्रकार घूसर उदासीन रंगत मिलाकर भी वर्ण की सघनता कम की जा सकती है। विरोधी रंगते एक दूसरे को उदासीन करती है तथा निश्चित अनुपात में मिलाए जाने पर एक दूसरी रंगत को पूर्णतया समाप्त करके उदासीन घूसर बना देती है। एक मूल रंगत को उदासीन करने के लिए अन्य दो मूल रंगतो का मिश्रण विरोधी अथवा पूरक रंगत बनाता है। उदाहरण के लिए पीले वर्ण को उदासीन करने के लिए अन्दर दो प्रारम्भिक रंगतो नीले तथा लाल का मिश्रण बैंगनी उचित ठहरता है। द्वितीय रंगतो को उदासीन करने के लिए शेष प्रारम्भिक रंगत उचित होगी जो उस रंगत में उपस्थित नहीं है। जैसे नीले तथा पीले के मिश्रण से बने

हरे वर्ण का विरोधी लाल वर्ण होता है।

गर्म तथा ठंडी रंगतो को विरोधाभास में लगाये जाने से रंगो का आकर्षण बढ़ जाता है। काली तथा सफेद पृष्ठभूमि में कोई रंगत घूसर पृष्ठभूमि की तुलना में अधिक तीव्र होगी। धूमिल रंगत के पास लगी शुद्ध रंगत की तीव्रता और अधिक हो जाती है। हल्की और माध्यम तीव्रता की रंगत काली पृष्ठभूमि पर फीकी दिखाई देगी, क्योंकि मान का विरोधाभास रंगत तथा सघनता से अधिक प्रभावी होता है। यही वर्ण, श्वेत पृष्ठभूमि पर अधिक सघन दिखाई देगा। अधिक गहरी तान का नीला तथा लाल, सफेद पृष्ठभूमि पर काकले के निकट दिखाई देगा, किन्तु काली पृष्ठभूमि पर उनकी रंगत की चमक बढ़ जायेगी। बड़े क्षेत्र में लगे चमकीले वर्ण की तुलना में लगी धुंधली रंगत और अधिक प्रतीत होगी। विरोधी रंगते बहुत छोटे-छोटे क्षेत्रों में समान रूप से लगाए जाने पर दूरी से घूसर प्रभाव देती है।

वर्ण के प्रभाव–

रंगो के मानसिक प्रभाव होते हैं, जिनका हमारी भावनाओं से सम्बन्ध होता है और वर्ण उनको उद्वेनित करने की शक्ति रखते हैं। इस प्रकार वर्ण में वह गुप्त होती है, कि वह एक अनन्त गतिशीलता प्रदान कर सकती है। अतः किसी भी चित्र में रंग भरते समय वर्ण के इन प्रतीकात्मक मूल्यों का भी ध्यान रखना चाहिए। वर्ण के इन्हीं प्रभावों के कारण साधारणतया इन्हें ऊष्ण, शीतल वर्णों के बीच बाँटते हैं, जिन वर्णो की तरंग गति बहुत अधिक होती है और जो सूर्य तथा आग के वर्णो के समीप होते हैं तथा जिनको बहुत देर तक देखने से नयनों को कठिनाई अनुभव होने लगे, वे ऊष्ण वर्ण की श्रेणी में आते हैं। जैसे पीला, नारंगी, लाल आदि। इसके विपरीत जिन वर्णो का सम्बन्ध प्रकृति की हरियाली पर्वतों, बर्फ, जल और आकाश आदि से है, उनका प्रभाव भी शीतलता प्रदान करता है तथा उनसे नेत्र देर तक आनन्द प्राप्त कर सकते है। वे शीतल वर्णो की श्रेणी में आते हैं, जैसे - मुगल लघु चित्रों में नीला, हरा, पीतहरा आदि।[6]

अतः हम कह सकते है कि किसी भी चित्र में सौन्दर्य वर्धन के लिए रंगो की विशेष भूमिका है। ये मानव की मनःस्थिति को उजागर करने की क्षमता रखते है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. डॉ0 सी0एल0 झा, कला के मूल तत्व
2. चित्रसूत्र 41/11
3. वास्पति गैरोला, भारतीय चित्रकला
4. डॉ0 शर्मा एण्ड डॉ0 अग्रवाल, फन्डामेन्टल्स ऑफ प्लास्टिक आर्ट
5. हरर्बट रीड, दि मीनिंग ऑफ आर्ट
6. के0एस0 कुलकर्णी, कला त्रैमासिक

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

अस्तित्ववादी दर्शन का उद्‌भव एवं विकास : एक विश्लेषण

* श्याम रंजन पाण्डेय

सारांश– *अस्तित्ववादी दर्शन को सामान्यतया बीसवीं शताब्दी का दर्शन माना जाता है, किन्तु इसकी उत्पत्ति 19वीं शताब्दी के एक दार्शनिक सोरेन किर्केगार्द के विचारों मे हीं हो चुकी थी। यही कारण है कि किर्केगार्द को अस्तित्ववाद के जनक के रूप में माना जाता है। किर्केगार्द के विचारों के अतिरिक्त अस्तित्ववाद दर्शन के उद्‌भव और विकास में दो विश्व युद्धों की विभीषिका, वैज्ञानिक विकास के कारण पूर्ववर्ती मान्यताओं के प्रति मानव का अनास्था भाव तथा मानव के कुछ मनोभाव एवम् अनुभूतियाँ जैसे– अलगाव, अकेलापन, शुन्यताबोध, अथवा विसंगति, निराशा, संत्रास आदि भी अस्तित्वादी दर्शन के अद्‌भव और विकास के कारक रहे हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इन सभी बातों की स्पष्ट व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन द्वैतीयक स्रोतों पर आधारित है।*

मुख्य शब्द– अलगाव, अकेलापन, शून्यताबोध, व्यर्थताबोध, निराशा, संत्रास।

अस्तित्ववादी दर्शन एक ऐसा दर्शन है, जिसका सीधा सम्बन्ध मानवीय-अस्तित्व से है। मानव का अपने होने के प्रति प्राथमिक अनुभूति से है। अर्थात् अस्तित्ववाद के प्रारंभ के विषय में चर्चा करने का अर्थ मानव के प्रारंभ के विषय में चर्चा करना है। ''अस्तित्वबोध की चर्चा केवल आधुनिक युग की बात ही नहीं हो सकती। जब से व्यक्ति ने अपनी सत्ता का बोध किया होगा, तभी से उसमें वैचारिक प्रतिभा का भी उदय हुआ होगा। अतएव मानव बौद्धिक विकास के साथ अस्तित्व बोध के प्रति भी जागरूक बनता गया। यह बात अलग है कि एक विशिष्ट जीवन दृष्टि के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय उपर्युक्त कुछ चिन्तकों को दिया जा सकता है तथा इस चिन्तन के लिए मुख्यतः महायुद्धोत्तर परिस्थितियों को ही उत्तरदायी माना जा सकता है।'[1] यद्यपि अस्तित्ववादी दर्शन को बीसवीं शताब्दी का दर्शन माना जाता है किंतु इसकी उत्पत्ति उन्नीसवीं शताब्दी में ही डेनमार्क निवासी सोरेन कीर्केगार्ड के गोद में हो चुकी थी। यही कारण है कि कीर्केगार्ड को अस्तित्ववाद के जनक के रूप माना जाता है। कीर्केगार्ड ने ही सर्वप्रथम प्रकृतिवाद, आदर्शवाद एवं इतिहासवाद आदि के विरूद्ध आत्मनिष्ठवाद को स्वीकार किया तथा मानवीय अस्तित्व को महत्ता प्रदान किया एवं दर्शन के केन्द्र मे मानव को रखा। कीर्केगार्ड के विचारों के अतिरिक्त प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्धों की विभिषिका आदि का भी योगदान अस्तित्ववादी दर्शन के उद्‌भव एवं विकास के लिए रहा।

=========================

* यू.जीसी. नेट, आई.सी.पी.आर.-जे.आर.एफ., डीट टॉपर, सह शोधार्थी, स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड

अस्तित्ववादी दर्शन का उद्‌भव एवं विकास–

दो विश्व युद्ध :- ''अस्तित्ववाद के प्रचार और प्रसार के लिए दो विश्व युद्ध उत्तरदायी रहे। 1914 में हुए प्रथम विश्व-युद्ध ने मानव के समक्ष एक ऐसी स्थिति प्रस्तुत कर दी, जो उनके लिए कदापि अपेक्षित नहीं थी। विश्व-युद्ध ने मानव जीवन को पूरी तरह से झकझोर दिया। इस विश्व-युद्ध में जापान के छः करोड़ लोगों को झोंका गया और 57.6 प्रतिशत लोग दुर्घटनाग्रस्त हुए और जिनमें से 50 लाख से ऊपर लोग मारे गए। Ecyclopedia of wars में संकलित है कि प्रथम विश्व-युद्ध विश्व के लगभग आठ भागों – Western Front,Africa And Asia, World War At Sea, Balkans, Front, Italian Front, Mesopotamia, Turkish Front आदि में सामानान्तर रूप से चला। प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका से आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक अस्थिरता का जन्म हुआ, जिसमें साधारण जन-मानस वैमनस्य, निराशा, कुण्ठा आदि से ग्रस्त हो गया। मानव प्रथम विश्व-युद्ध की पीड़ा को अभी विस्मृत भी नहीं कर पाया था कि 1939 में एक और नए विश्व-युद्ध ने विनाश का नया दौर प्रारंभ कर दिया और इस बार मानव पूरी तरह से हतप्रभ रह गया। द्वितीय विश्व युद्ध भी प्रथम युद्ध की ही भांति ही समय में अलग-अलग खण्डों में चला। यह खण्ड थे-Africa and the Mediterranean,Atlantic Front, China-buma-India Theater, Greece and Balkans, Italian Front, Pacific OceanAnd Island, Russian Front, Western Front. युद्ध के समय व्यक्ति के पास सोचने के लिए एकमात्र विषय युद्ध था। युद्ध की विभीषिका ने मानव को पूर्व प्रतिस्थापित सभी मान्यताओं को निरस्कृत करने के लिए बाध्य कर दिया। दोनों विश्व-युद्धों का मानव-चेतना पर पड़ने वाला प्रभाव इस सीमा तक प्रभावकारी था कि उससे यूरोप में अस्तित्ववादी दर्शन का जन्म हुआ। अस्तित्ववादी दर्शन की पीड़ा, निराशा, ऊब, उदासी, आतंक, असुरक्षा आदि ने विश्व-संस्कृति मे एक नया आयाम जोड़ा, यह आयाम युद्ध का परिणाम था। इसलिए मध्यकालीन ईश्वरीयपरक धारणाएं तिरोहित हो गई। इस त्रासद स्थिति में मानव केवल अपने जीवन के लिए अनुकूल परिस्थितियों की खोज में निकल पड़ा और उसका स्वयं का अस्तित्व उसके लिए सर्वप्रमुख हो गया। युद्धों के पूर्व जिस अस्तित्व पर संदेह किया जाता था और कोई निर्णायक उत्तर नहीं मिलता था, उस समय अस्तित्व पर विचार करने के लिए मनुष्य विवश हो गया। विश्व की समग्रता मे अपने को खो देने की कल्पना समूल भंग हो गई। अब मनुष्य के पास केवल अपना अस्तित्व ही असंदिग्ध रह गया। अपने अस्तित्व की सार्थकता को सिद्ध करना मानव का एकमात्र लक्ष्य बन गया और इस लक्ष्य की सिद्धि में विद्रोह की भावना का विशेष महत्त्व रहा। यह विद्रोह निराशा, कुण्ठा, संत्रास आदि भावों को जन्म देने वाली विभिन्न सामाजिक मान्यताओं के प्रति था। मानव ने इन सभी भावनाओं का हल अस्तित्व, अस्तित्वबोध और अस्तित्व को प्रतिस्थापित करने के भाव में खोजना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार ''निराशा की काली रजनी में रेगिस्तान में झंझावतों से प्रताड़ित व्यक्ति के विश्वास की तरह उसकी आस्था एक शरण-स्थल की खोज के लिए आतुर हो उठी। वह शतुर्मुग की तरह अपने वैचारिक रेगिस्तान में कुछ समय के लिए अपने सिर को छिपाकर पलायनवाद की कोड़ में आश्रय खोजने के लिए आतुर हुआ पर निरंतर प्रवाहित झंझावतों के समक्ष उसका यह पलायनवादी आश्रय ठहर न सका। अंततोगत्वा उसे ऐसे कटु सत्य का सामना करना पड़ा, जिसके अन्तराल में निराशा की

अजस्र स्त्रोतस्विनी प्रवाहित हो रही थी। इसी कटु सत्य के परिणामस्वरूप अस्तित्ववाद का प्रार्दुभाव हुआ।''[2]

वैज्ञानिक विकास–

अस्तित्ववादी दर्शन के उत्पति में दो विश्वयुद्धो की विभिषिका के साथ-साथ वैज्ञानिक विकास का भी हाथ रहा है। वैज्ञानिक विकास ने मानव का मूल्य किसी मशीन के पुर्जे से अधिक नही छोड़ा। विज्ञान ने मनुष्य को मशीन का वह पुर्जा बना दिया है जिसे कभी भी किसी भी दूसरे पुर्जे के साथ बदला जा सकता है।

''वैज्ञानिक और यांत्रिक युग में मनुष्य के अस्तित्व को पीछे धकेल दिया गया था। मनुष्य मशीन की गड़गड़ाहट में अपने आपको अवरूद्ध पा रहा था। ऐसी स्थिति में डेनिश विद्वान और चिन्तक सोरेन कीर्केगार्द ने पूर्व निर्मित सामाजिक मान्यताओं, प्रचलित परम्पराओं तथा धार्मिक नियन्त्रणाधीन व्यक्तित्व विघटनकारी विचारधाराओं के विरूद्ध एक भिन्न जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया।'' विज्ञान ने मनुष्य के मनुष्यत्व को भी नष्ट कर दिया है। यंत्र बन चुके मानव के विषय में एरिकफ्राम लिखते हैं उन्नीसवीं शदी में ईश्वर मरा तो बीसवीं शदी में मनुष्य ही मर गया है।'' मनुष्य की मृत्यु से अभिप्राय मनुष्यत्व की मृत्यु से है। यन्त्र मनुष्य की सुविधा के लिए बनाए गए थे, मनुष्य उनका दास बन गया है। परिणामस्वरूप मनुष्य श्रेयस भावों से हीन हो गया है और तत्कालीन मानव की त्रासद स्थिति ने मानव को स्वयं के विषय में पुनः विचार करने के लिए बाध्य कर दिया, जिससे अस्तित्ववाद के उद्‌भूत होने के लिए उचित पृष्ठभूमि उपलब्ध हुई।[3]

अस्तित्ववादी चिन्तन के लिए प्रेरक मनोभाव एवं अनुभूतियाँ–

अलगाव– मानवीय जीवन कई बार स्वयं को अपने परिवेश से कटा सा महसूस करने लगता है। यही अलगाव की स्थिति है। अस्तित्ववाद में अलगाव भाव पर विशेष रूप से विचार किया गया है। अस्तित्ववाद में अलगाव की स्थिति का चित्रण बदलते, आधुनिक युग में परिणत होते परिवेश के संदर्भ में किया गया है। आधुनिक औद्योगिक संस्कृति और नगरीय संस्कृति में पुरानी मान्यतायें खंडित हो गई और मानव नये परिवेशानुरूप स्वयं को ढालने में असमर्थ रहा और अपने परिवेश से कट गया। यह स्थिति बाहरी अलगाव की थी। इसी के साथ एक अलगाव आंतरिक भी है। ''यह आन्तरिक अलगाव वस्तुपरक होने से अधिक धारणात्मक हुआ करता है। आंतरिक विलगाव की स्थिति में मनुष्य अपने को शेष परिवेश से कटा हुआ महसूस नहीं करता बल्कि वह अपने आप से भी अपने को अलग महसूस करता है। इसे हम आत्म-निर्वासन भी कह सकते है।[4]

अकेलापन– आधुनिक भाव-बोध में अकेलेपन का भाव भी अस्तित्ववादियों द्वारा विचारणीय रहा। अस्तित्ववादी चिन्तकों द्वारा वर्णित अकेलापन भोगे हुए यथार्थ और परिवेश के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया पर निर्भर है। आधुनिक मानव अपने परिवेश से कटा हुआ है। इसी लिए वह भीड़ में भी स्वयं को अकेला पाता है।

अकेलेपन के दो पक्ष है– आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक। मध्यकाल से ही आध्यात्मिक अकेलापन चर्चित रहा, जिसमें अपार्थिव अतिरंजनाओं की चर्चा रही। मनोवैज्ञानिक अकेलापन व्यक्ति के अन्तर्गत की दशा पर निर्भर करता है। इस प्रकार के अकेलेपन का कारण भी किसी प्रकार की कुण्ठा हो सकती है। अस्तित्ववादी अकेलापन यर्थाथ पर आश्रित है। अस्तित्ववादी ऐसे अकेलेपन की चर्चा करते है, जो मानव द्वारा

भोगा हुआ है और निरंतर भोगा जा रहा है। भीड़ में रहकर भी मानव वास्तव में अकेला ही है। मानव की आन्तरिक वेदना, परिस्थितिजन्य परिवर्तन, सामाजिक विखंडन आदि सब मानव मन में अकेलेपन के भाव के संचरण को अनिवार्य बना रहे हैं।[5]

* **शून्यताबोध/असारता–** ''अस्तित्ववाद को शून्यताबोध का दर्शन मुख्यतः सार्त्र और हाइडेगर ने दिया। अस्तित्ववादियों ने जितना विचार 'अस्तित्व' और 'सार' पर किया, उतना ही शुन्यताबोध पर थी। सार्त्र ने अपनी पुस्तक Being And Nothingnss में शून्यताबोध अथवा असारता पर विपुल रूप से विचार किया। सार्त्र का मानना है कि असारता बाप्रारोपित नहीं होती, अपितु अन्तःकरण में स्वतः उद्भूत होती है। Nothingness lies colled in the heart of being, likeA worm. हर 'अस्ति' में ही नास्ति का भाव विद्यमान रहता है। प्रत्येक वस्तु (Thing) अपने में शून्यता (Nothing) को छिपाए रहती है।

हाइडेगर शून्यता के मूल में संत्रास मानते है। हाइडेगर का मत है कि व्यक्ति अपने भूत और भविष्य को लेकर सदैव आतंकित रहता है। उसे अपनी मृत्यु की सम्भावना होती है और मृत्यु से बचने का उसके पास कोई उपास नहीं होता। वह स्वयं को क्षण प्रति क्षण मृत्यु की ओर उन्मुख होते हुए पाता है। मृत्यु-भय से बचना मुश्किल है और मृत्यु ही मानव-जीवन की अंतिम परिणति है। मृत्यु के उपरान्त केवल शून्य बचता है। मृत्युबोध से संत्रस्त व्यक्ति जब मृत्यु की भंयकरताओं पर विचार करता है, तब जीवन की उसारता ही उभरकर उसके समक्ष आ खड़ी होती है। इस प्रकार हैडेगर के अनुसार मनुष्य को शून्यता की अनुभति मृत्यु के विषय पर विचार करने पर होती है। मृत्यु की निश्चितता ही मनुष्य के संत्रास भाव से ग्रस्त करती है ओर मानव स्वयं को शून्य की स्थिति में महसूस करने लगता है।''[6]

व्यर्थताबोध अथवा विसंगति– विसंगति का तात्पर्य उस अनुभूति से है, जहाँ मानव संगकत सामंजस्य की अपेक्षा असंगति और असम्बद्धता अनुभव करता है। विसंगति समकालीन जीवन की निस्सारता और विडम्बना से सम्बद्ध धारणा है। अस्तित्ववादियों ने विसंगति और व्यर्थताबोध पर पर्याप्त चर्चा की है। कामू इस स्थिति के विषय में कहते हैं "Absurd is the clash between irrationalityAnd the desperate hunger for clarity which cries in man's deepet soul. TheAbsurd dependsAs much upon manAs upon the world." व्यर्थता मानव एवं समाज दोनों पर आधारित है। व्यर्थता के मूल में ही द्वन्द है, जो मानव और परिवेश के मध्य निरन्तर चलता रहता है। जगत अर्थात् परिवेश की अपनी एक गति होती है, जो मनुष्य और परिवेश को कभी भी सन्तुलन बिन्दु तक पहुँचने नहीं देती। सदैव मनुष्य व्यर्थता के समापन और एक नई सार्थकता की प्रतीक्षा में होता है। समाज और परिवेश की यही गति मनुष्य की इस उत्कंठ प्रतीक्षा को विफल और व्यर्थ सिद्ध कर देती है। मानवीय जीवन की अनिश्चिता अर्थात् मृत्यु की अनिवार्यता मानव को भय-त्रस्त रखती है। दूसरी ओर मानव में जीने की इच्छा प्रबल रहती है। इस जीवन और मरण के बीच के द्वन्द्व में वह अपने अस्तित्व को उचित रूप में व्याख्यायित ही नहीं कर पाता। यह समस्त विवशताएं मानव को व्यर्थता की मनः स्थिति की ओर अग्रसरित कर देती है। इस स्थिति में मानव तनाव और निराशा से ग्रस्त होता है। तनाव और विरोध की इसी स्थिति को कामू ने cult of tensionAnd contrast कहा है।[7]

निराशा– अस्तित्ववादी दर्शन की पृष्ठभूमि तैयार करने में निराशा भाव का विशेष

योगदान रहा। तत्कालीन परिवेश ने निराशाजन्य परिस्थितियों को जन्म दिया। भीषण विश्व युद्धों के बीच खड़ा मानव घोर नैराश्य का वहन कर रहा था। पीड़ादायक परिस्थितियों से उबरने का कोई ठोस हल न पाकर मानव निराशा से घिर गया। सार्त्र के अनुसार निराशा का सम्बन्ध इच्छा और उस इच्छा पूर्ति की सम्भावना से सम्बन्धित है, It merely means that limit ourselves to A reliance upon that which is within our will, on within the sum of probabilities which render our Action reasible. Whenever one wills Anythings, there Are Always these elements of probabilities. इसका तात्पर्य यही हुआ कि सम्भावनाओं के अघटित रह जाने पर मानव-मन निराशाजन्य स्थितियों में फंस जाता है। निराशा की स्थिति पीड़ादायिनी होती है। निराशा के क्षणों में ही मानव निरर्थकता जैसे भावों से ग्रस्त होता है। किन्तु कीर्केगार्द के अनुसार निराशा आवश्यक भी है, क्योंकि उनका विश्वास है कि इसकी गूढ़ता से इस बात का पता चलेगा कि मनुष्य का सत्यता में विश्वास है या नहीं। वह निराशा को एक साध्य और मन की वांछनीय अवस्था मानते है। विचार और अनुभूति के अन्तिम परिणाम के रूप में भग्नाशा का तात्पर्य यह है कि भय और कम्पन ऐइन्स्ट मनुष्य के अस्तित्व के सबसे अधिक आधारभूत गुण हो जाते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि निराशा मानव-मन के विचलन का कारण है। जब मानव स्वयं को अपनी समस्याओं के हल ढूँढ पाने में असमर्थ पाता है, तो वह अपने अस्तित्व को निराशजन्य वृत्तियों से आच्छादित पाता है। किन्तु यही मानवीय भाव मानव के उद्वेलित मन को उचित दिशा भी प्रदान करते है। निराशाजन्य परिस्थितियों से अवगत होन के उपरांत ही मानवीय चेतना जागृत होती है और वह सत्य से परिचय पाता है। यह परिस्थितियाँ उसे उसके अस्तित्व के प्रति क्रियाशील बनाती है। इसी लिए कीर्केगार्द निराशा का वरण परमावश्यक मानते हैं।[8]

संत्रास– अस्तित्ववादी दर्शन 'वाद' रूप में जिस पाश्चात्य भूमि पर अंकुरित हुआ, उस भूमि पर सर्वदा संत्रास का अत्यधिक प्रभाव रहा। यूरोप में अंकुरित और फलित होने वाले यह दर्शन युद्ध के परिणामस्वरूप उभरा। युद्ध में मृत्यु-भय अत्यधिक बढ़ जाता है। मानव प्रत्येक क्षण किसी अज्ञात भय से संत्रस्त रहता है। यह संत्रास ही तत्कालीन यूरोप का सत्य था। इस प्रकार संत्रास अस्तित्ववादी दर्शन की आधारभूमि है।[9]

उपसंहार– उपरोक्त समस्त चर्चा के उपरांत निष्कर्षतः यह विदित होता है कि अस्तित्ववादी चिन्तन मूलतः उस पाश्चात्य जगत की देन है, जो मानवीय जीवन की विद्रूपताओं, आपदाओं को बड़े लम्बे समय तक सहन करता रहा। फ्रांस की राज्य क्रांति, इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति ने जहाँ राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों के आह्वाहन किया, वहीं दो-दो विश्व युद्धों ने मानव-मन में घर कर चुकी ईश्वरीय सत्ता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए मानसिक द्वन्द्व की स्थिति पैदा कर दी। समस्त प्राचीन मान्यताएं क्षत-विक्षत हो गई और इसी ऊहापोह में मानव उपरोक्त सभी मनः स्थितियों से जूझने लगा, जिन्हें अस्तित्ववादी विचारकों ने विश्लेषित किया। इन्हीं स्थितियों के विश्लेषण के उपरांत विभिन्न अस्तित्ववादी चिन्तकों ने अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। विभिन्न विद्वानों ने कुछ विशेष अस्तित्वगत तथ्यों का विश्लेषण किया और अपने-अपने निष्कर्ष प्रस्तुत किए। यह सब अस्तित्ववादी दर्शन के चिंतन-तत्व कहे जा सकते है।[10]

अतः इस प्रकार से हम यहाॅ यह देख सकते है कि अस्तित्ववादी दर्शन के उद्भव एवं विकास में दो विश्वयुद्धो के विभिषिका, कीर्केगार्ड के विचारों, अतिवैज्ञानिकतावाद आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यह दर्शन मानवीय-अस्तित्व की गरिमा, महत्ता एवं स्वतंत्रता आदि का दर्शन है।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. कौर परविन्दर, आधुनिक काव्य में युगबोध पृष्ठ संख्या -131, वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 12 - 13
2. साही योगेन्द्र, अस्तित्ववादः अर्थ एवं स्वरूप विश्लेषण पृष्ठ संख्या 13 - 15
3. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 15 - 16
4. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 16-17
5. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 18-19
6. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 18-19
7. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 20-21
8. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 22
9. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 23
10. वही पुस्तक, पृष्ठ संख्या 25

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

आधुनिक हिंदी कहानियाँ और उनमें शब्द प्रयोग की प्रवृत्ति

* अमित शुक्ल

सारांश- *आज के सभी युवा कहानीकारों मे आम आदमी की भाषा से जुड़ने की आकुलता का आभास मिलता है। यही कारण है कि इनके शब्द प्रयोग जनभाषा से अनुप्राणित है। काव्यात्मक शब्द प्रयोगों का निषेध उनमें दिखाई देता है। चलतू शब्दों का उन्होंने बेधड़क प्रयोग किया है। कहीं-कहीं शब्दों में आक्रोश के तेवर भी दिखाई देते हैं। जितेन्द्र भाटिया, सुदर्शन नारंग, अशोक अग्रवाल, प्रभु जोशी, स्वयं प्रकाश, विश्वेश्वर, विजयकांत, इब्राहिम शरीफ, मृणाल पांडेय अन्यान्य कहानीकारों की भाषाइस दृष्टि से देखी जा सकती है।*

मुख्य शब्द- जीवन एवं जगत के यथार्थ, अन्तसंघर्ष, शब्द प्रयोग, कहानियाँ, जनवादी, अभिजात्य।

हिंदी की पहली कहानी से संबंधित विवाद की रूढ़ चर्चा अथवा कथ्य व शिल्प की दृष्टि से साहित्यिक मूल्य से रहित आरंभिक कहानियों का जिक्र आधुनिक हिंदी कहानियों के अध्ययन प्रसंग मे विशेष संगत प्रतीत नही होता इसमें संदेह नही कि जय शंकर प्रसाद, प्रेमचंद युग के कहानी साहित्य ने निर्माण की दिशा मे एक ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह किया था, फिर भी यथार्थ और मनोविज्ञान के पुष्टधरातल पर समसामयिक जीवन संदर्भ और भाव बोध की अभिव्यक्ति का प्रयास प्रेमचंदोत्तर काल में ही फलीभूत हो सका। प्रेमचंदोत्तर कालखंड में फ्रायड, एडलर युग और कार्ल मार्क्स की चिंतनधारा से प्रभावित कहानीकारों ने जीवन व जगत के यथार्थ तथा चरित्रों के अंतसंघर्षव बहिसंघर्षो को अभिव्यक्ति दी। कालांतर में स्वातंत्र्योत्तर कालखंड के तथा कथित नई कहानी के कहानीकारों ने सार्त्र कामू काका की अस्तित्वादी विचारधारा से प्रभावित होकर आंचलिक नगरीय व महानगरीय परिवेश मे संक्रांति, कुंठा, ऊब, व्यर्थता और अकेलेपन के भाव-बोध को अभिव्यंजित किया।[1]

आधुनिक हिंदी कहानी की इस विकास यात्रा का भाषिक स्तर पर विशेषतः शब्द प्रयोग की दृष्टि से परीक्षण करते समय प्रसाद व प्रेमचंद युग के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। स्थूल रूप से इस युग मे शब्द विन्यास की दो परम्पराएं स्पष्ट परिलक्षित होती है- शब्द प्रयोग की जनवादी परम्परा और शब्द प्रयोग की अभिजात्य परम्परा। प्रेमचंद संस्थान के गुलेरी, कौशिक, सुदर्शन, ज्वालादत्त शर्मा आदि कहानीकार शब्द प्रयोग की जनवादी धारा के प्रति समर्पित थे। इन कहानीकारों ने प्रायः सुबोध सरल भाषा को माध्यम बनाया। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो कहा जा सकता है कि इनकी

* प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

भाषातद्भव शब्द प्रधान थी तथा इसमे अरबी-फारसी एवं अंग्रेजी के शब्दो के प्रयोग के प्रति संकोच नही था। इन कहानीकारों का शब्द चयन पात्रानुकूल, भावानुकूल, विषयानुकूल तथा परिवेशोचित हैं।[2] लोक प्रचलित मुहावरों व कहावतो का विपुल प्रयोग भी इनमे प्राप्त होता है। दूसरी ओर प्रसाद संस्थान के राम कृष्णदास, गोविद वल्लभ पंत, चंडीप्रसाद, हृदयेश आदि कहानीकार आते हैं, जिनकी कथा भाषामें अभिजात्य हैं और जो समृद्धशाली संस्कृत भाषाकी तत्सम शब्दावली से युक्त तथा आंग्ल-मुगल प्रभाव से प्रायः मुक्त है। प्रसाद संस्थान के इन कहानीकारों की कहानियों में अनेक कोमलकांत अमूर्त शब्दो का विनियोग प्राप्त होता हैं।[3] वास्तव मे प्रसाद प्रेमचंद कालखण्ड शब्द संस्कार के इस विभिन्नता के कारण उस कालखंड के कहानीकारो की रचनात्मक प्रवृत्तियों का वैषम्य ही है। प्रसाद संस्थान के कहानीकार प्राय: ऐतिहासिक, अनुभूतिप्रवण, प्रेममूलक या काव्यात्मक व दार्शनिक हैं। इसके विपरीत प्रेमचंद संस्थान के कहानीकारों ने प्राय: सामयिक समस्याओं के ग्रामीण कथानकों पर कहानियों की रचना की अत: उनकी कहानियों में लोक प्रचलित भाषा मे शब्दो का प्रयोग सहज ही प्राप्त होता है। भाषा के गुणात्मक स्तर पर विचार करने से प्रसाद प्रेमचंद युग के कहानीकारों में उपमानो व रूपकों के प्रयोग की शाब्दिक प्रवृत्ति उद्घाटित होती है। इस कालखंड के अधिकांश कहानीकारो मे धैर्य की दीवार, आनंद की लहरें, विपत्ति की घटाएं, दासता की बेड़ी कर्तव्य की तुला, पाप का समुद्र, आशा का सूर्य, मित्रता रूपी वृक्ष, क्रोध रूपी अग्नि जैसे शब्द प्रयोग विपुल परिमाण मे उपलब्ध होते हैं।[4] यह प्रवृत्ति एक रूढ़ि के समान प्रयुक्त है तथा इसे इस कालखण्ड के शब्द विन्यास का वैशिष्ट्य माना जा सकता है।कहानी की भाषा क्योंकि जीवन मे समानांतर गतिशील होती रहती है अतः लोक भाषा से उसका पार्थक्य चिरिजीवी नही होता। यही कारण है कि प्रसाद संस्थान की शब्द प्रयोग की अभिजात्य परम्परा उतना विकास प्राप्त नहीं कर सकी जितना प्रेमचंद की शब्द परम्परा ने प्राप्त किया। प्रसाद की भाषा का व्योचित भाषाथी अत: वह गद्य-गीतो, भावप्रवण शब्द चित्रों व कतिपय कहानियो तक ही सीमित रह गई तथा प्रेमचंद की जनभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त करती गई।[5]

प्रेमचंदोत्तर कहानीकारों मे जैनेन्द्र कुमार ऐसे पहले कहानीकार थे जिन्होने कथा-भाषा को अपने निजी संस्कार प्रदान किए। उन्होंने भावोचित शब्द-चयन पर विशेषध्यान दिया और इस प्रकार कथा भाषा को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया। ध्वनि के परिवर्तन युक्त शब्द, पुनरूक्त शब्द, प्रतिध्वन्यात्मक शब्द और देशज शब्दों का उन्होने विपुल समीचीन प्रयोग किया। प्रेमचंदोत्तर कहानीकारों में अज्ञेय का भी निजी वैशिष्ट्य है। उनकी आरंभिक कहानियों मे कहीं-कहीं शब्द प्रयोग का अभिजात्य व सायास पांडित्य भी है जो क्लिष्ट व दुर्बोध प्रतीत होता है पर परवर्ती कहानियों मे वे इस प्रभाव से मुक्त हो गए हैं।[6] अभिनव शब्दों के प्रयोग और शब्दों के परिष्कार या 'फिनिशिंग' की दृष्टि से अज्ञेय की कहानियां विशेष रूप से पठनीय हैं। ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रकृत प्रयोग भी उनकी कहानियों की विशेषता है। इलाचंद जोशी की कहानियों मे संस्कृत शब्दों का प्रयोगाधिक्य है तथा उर्दू व अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का ही प्रयोग उन्होंने अपनी कहानियों में किया है इसके विपरीत भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में अंग्रेजी व उर्दू शब्दों के प्रयोग की स्वच्छंद प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। यशपाल में अधिकांशतः प्रेमचंदीय कथा भाषा व

अपवाद स्वरूप कहीं-कहीं संस्कृत गर्भित भाषाका प्रयोग प्राप्त होता है। उपेन्द्रनाथ अश्क की कुछ कहानियों में पंजाबी, मराठी, उर्दू, कश्मीरी व पहाड़ी भाषाओं के अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। सामान्यतः उनके शब्द प्रयोग भी प्रेमचंदीय परम्परा के अनुगामी हैं। गुणात्मक और प्रयोगात्मक दृष्टि से प्रेमचंदोत्तर कहानीकारों के शब्द प्रयोग विशेष महत्व रखते हैं। सांकेतिक और प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग जो स्वातंत्र्योत्तर कहानियों में प्राप्त होता वह इसी कालखंड में आरंभ हो चुका था। विभिन्न देशी-विदेशी भाषाओं और बोलियों के शब्दों के प्रयोग का आरंभ भी प्रेमचंदोत्तर कालखंड की विशेषता है।

स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों का भाषिक व शाब्दिक वैशिष्ट्य भी अपना पृथक अस्तित्व रखता है। कतिपय आचंलिक कथाकारों ने आंचलिक भाषा के नए रूप रंग इस कालखंड मे प्रस्तुत किए। फणीश्वरनाथ रेणू ने पूर्वी मैथिली, शिव प्रसाद सिंह ने बनारसी, भोजपुरी और लक्ष्मीनारायण लाल ने भोजपुरी अवधी आदि बोलियों के अनेक शब्दों से हिंदी पाठकों को परिचित कराया। राजेन्द्र अवस्थी, शैलेश मटियानी मार्कण्डेय आदि ने भी अंचल विशेष के देशज शब्दों का प्रयोग किया। विदेशी, नगरीय व महानगरीय परिवेश पर कहानियों की रचना करने वाले आधुनिक कहानीकारों ने उर्दू व अंग्रेजी के अनेक शब्दों का निर्बाध प्रयोग कहानियों में किया। निर्मल वर्मा, ऊषा, प्रियम्वदा व रामकुमार आदि ने विदेशी पृष्ठभूमि पर कहानियों की रचना की तथा अंग्रेजी की अप्रचलित भाववाची संज्ञाओं, विशेषणों व क्रियाओं को कहानी में स्वच्छंद रूप मे प्रयुक्त किया। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी आदि ने भी उर्दू व अंग्रेजी के शब्दों को बड़े परिमाण मे अपनी कहानियों में स्थान दिया है। वास्तव में अंग्रेजी व उर्दू शब्दों का इतना प्रयोग पूर्ववर्ती कहानियों में कभी नही हुआ था। गुणात्मक शब्द-प्रयोग की दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट दिखाई देगा कि स्वातंष्योत्तर कहानी में संकेतों व प्रतीकों की बाढ़ सी आ गई है। प्रायः सभी स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों ने प्रतीकात्मक व सांकेतिक शब्दों का प्रयोग किया। वस्तुतः जो स्थान पूर्ववर्ती कहानियों मे क्रियाओं और रूपकों का था वही स्थान स्वातंत्र्योत्तर कहानी प्रतीकों ने ग्रहण किया। प्रतीक शब्दों व संकेत शब्दों के प्रयोग ने हिन्दी भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को तीक्ष्ण किया तथा भाषा की सम्पन्नता में योगदान दिया। कथाकार निर्मल वर्मा ने गुणात्मक दृष्टि से अनेक मौलिक आलंकारिक शब्दों को प्रयुक्त किया। उनकी कहानियों मे शब्द बिम्ब भी प्राप्त होते हैं। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार उनकी भाषा ऐसी संगीतात्मक भाषा है जो शब्दातीत स्थितियों को भी व्यक्त कर सकने का सामर्थ्य रखती है। भाषा के प्रयोगात्मक स्तर पर भी स्वातंत्र्योत्तर कहानी में अनेक प्रयोगधर्मी शब्द प्राप्त होते हैं। नरेश मेहता ने अन्य प्रयोगधर्मी शब्दों मे अतिरिक्त प्रवेशते, सहनते, सम्पन्नते, प्रवाहेगी, स्वीकारना जैसे अनेक संश्लेषणात्मक शब्द प्रयोग किए। नरेश मेहता के शब्द संस्कार प्रयोगात्मक दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखते हैं। शिव प्रसाद सिंह ने रंगो के नामों के लिए प्रत्यय लगाकर अनेक सुंदर विशेषणों की रचना की है। जैसे-बादामी आंखे, चम्पई उंगलियां, सिंदूरी प्रकाश, ललछौहीं हथेली, मोरपंखी साड़ी, दूधिया वक्ष, मोतिया आभा, सुरमई रोशनी, तांबिया लाली, गुरूई बादल, लीन कुंतल, फिरोजी होंठ आदि। सन साठ के बाद के तथाकथित 'अकहानी' के कहानीकारों ने प्रतीकों, संकेतों व सम्मोंहनात्मक भावाकुलता से आक्रांत काव्यात्मक शब्दो का निषेध कर रूखड़ और अनगढ़ शब्दों के प्रयोग को विशेष

स्थान दिया। यद्यपि अपशब्दों के स्वच्छंद प्रयोग की शुरूआत कृष्णा सोबती ने यारों के यार और मित्रो मरजानी नामक कहानियों में कर दी थी तथापि एक प्रवृत्ति के रूप मे इनका प्रयोग साठोत्तरी कहानियों में ही प्राप्त होता है। काशीनाथ सिंह, दूधनाथ सिंह, ज्ञान रंजन, रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, महेन्द्र मेल्ता आदि की अनेक रचनाओ अपशब्दो अश्लील शब्दों का प्रयोग सहज ही मिल जाता है। अंग्रेजी-उर्दू के शब्दों के साथ-साथ देशज शब्दों का प्रयोग भी इन कहानीकारों में प्राप्त होता है। कहीं-कहीं कठिन संस्कृत शब्दों के साथ साथ कठिन उर्दू के शब्दों का असंगत प्रयोग भी इन कहानीकारों ने किया है। आज की हिंदी कहानी समांतर आंदोलन और प्रगतिशील आंदोलन के दो खेमो मे विभक्त हो गई है पर शब्द प्रयोग के स्तर पर इन कहानियों मे एक साम्य दिखाई देता है।

निष्कर्ष–

आज के सभी युवा कहानीकारों मे आम आदमी की भाषा से जुड़ने की आकुलता का आभास मिलता है। यही कारण है कि इनके शब्द प्रयोग जनभाषा से अनुप्राणित है। काव्यात्मक शब्द प्रयोगों का निषेध उनमें दिखाई देता है। चलतू शब्दों का उन्होंने बेधड़क प्रयोग किया है। कहीं-कहीं शब्दों में आक्रोश के तेवर भी दिखाई देते हैं। जितेन्द्र भाटिया, सुदर्शन नारंग, अशोक अग्रवाल, प्रभु जोशी, स्वयं प्रकाश, विश्वेश्वर, विजयकांत, इब्राहिम शरीफ, मृणाल पांडेय अन्यान्य कहानीकारों की भाषा इस दृष्टि से देखी जा सकती है।[7]

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. राट्रभाषा सन्देश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 30 अप्रैल 2009, पृष्ठ 06
2. हिन्दी कहानी की विकास यात्रा, राष्ट्रवाणी असामाजिक शोधपत्रिका, अंक 04 दिसम्बर 2009 पृष्ठ 31,
3. महरोत्रा रमेशचंद, हिन्दी संज्ञाओं के विकारी और अविकारी रूपों की सही प्रयोग, साहित्य अमृत, मासिक 4/19 आसिफ अली रोड नई दिल्ली अंक-11, जुलाई 2010, पृष्ठ, 58
4. कुमार राज, देशज आधुनिकता, भक्ति और कबीर, कथादेश, सहयात्रा प्रकाशन, नई दिल्ली, मासिक पत्रिका, अंक-06, अगस्त 2010, पृष्ठ 84
5. 21वीं सदी में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं की दशा और दिशा, डॉ0 अमित शुक्ल छत्तीसगढ़ विवेक, शोध पत्रिका, कल्याण अध्ययन विश्लेषण एवं अनुसंधान केन्द्र, कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर (छत्तीसगढ़), अंक 30 जुलाई-दिसम्बर 2010 पृष्ठ, 16
6. ज्योतिसिंह, मालती जोशी के रचनाकर्म में स्त्री विमर्श, सृजन विमर्श, संभासा की शोध पत्रिका, सम्पादक कला जोशी, इन्दौर, अंक 05, जुलाई-दिसम्बर 2009, पृष्ठ, 18
7. स्वयं का सर्वेक्षण एवं निष्कर्ष।

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

विद्यासागर नौटियाल का साहित्य एवं गढवाली संस्कृति (तीज-त्यौहार के विशेष सन्दर्भ में)

* गुड्डी बिष्ट, पँवार

सारांश- *पहाड़ी जनजीवन के लिए विद्यासागर नौटियाल जी ने जो लेखन कार्य किया, वह सर्वदा प्रसंशनीय है। उन्होने अपने लेखन में निम्न, मध्य एवं उच्च वर्ग का स्वरूप उजागर किया है जिसके अन्तर्गत अनेक प्रकार की परिस्थितियों एवं मनोदशाओं का चित्रण हुआ है। पहाड़ की सांस्कृतिक विरासत को नौटियाल जी ने अपने साहित्य का अभिन्न अंग माना है। पर्वतीय संस्कृति एवं समाज के प्रति गहरी समझ और संवेदना की धड़कन इनकी लेखनी में अनुभव की जा सकती है। विद्यासागर नौटियाल जी का साहित्य लोक के रंग में रंगा अपनी भाषा में बोलता हैं एवं प्रकृति मनुष्यों से साक्षात्कार करती है, इतना ही नही तीज-त्यौहार मानव जीवंतता का प्रमाण देते हैं।*

मुख्य शब्द– साहित्य, पर्वतीय संस्कृति एवं समाज, माटी, तीज त्यौहार, जीवंतता

संसार के किसी भी भूखण्ड को बयाँ करता है वहाँ का समाज एवं संस्कृति। सांस्कृतिक विरासत ही वह धरोहर है जो हमें अपनी माटी से अलग नही करती है और हमारे रक्त में संचारित करती है। तीज-त्यौहार लोक जीवन व लोक-संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। ये हमारी अमूल्य थाती हैं। ''तिथिवार मनाये जाने के कारण इन्हें त्यौहार कहा जाता है।''[1] तीज-त्यौहार हमारी सांस्कृतिक विरासत के रूप में अपना महत्व बनाए हुए है। इनमें हमारी भारतीय-संस्कृति पूर्ण रूप से विद्यमान है। ये तीज-त्यौहार मनुष्यों में आपसी सद्भावना व प्रेम को बढ़ाते है। मनुष्य ज्यों-ज्यों इन त्यौहारों को मनाने का उत्साह कम कर रहा है त्यों-त्यों वह स्वयं में ही केन्द्रित होता जा रहा है। सुरेशचन्द्र जी के अनुसार- ''त्यौहार हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीत हैं। शताब्दियों और सहस्त्राब्दियों से यह हमारे सामाजिक जीवन में नव-प्रेरणाओं का सन्देश देते आये हैं।''[2]

डॉ0 सत्या गुप्त के अनुसार, ''किसी भी देश की सजीवता और उसके जनजीवन का ठीक-ठीक अनुमान उसके त्यौहारों और उत्सवों से ही लगाया जाता है, जो देश जितना अधिक उत्सवप्रिय होगा उतना ही अधिक सुखी एवं समृद्ध होगा।''[3]

उत्तराखण्ड में प्रमुख रूप से होली, दीपावली, वैशाखी, मकर-संक्रान्ति, रक्षा-बन्धन, दशहरा, आदि त्यौहार बहुत धूम-धाम से मनाए जाते है इस सन्दर्भ में यह कथन द्रष्टव्य है, ''सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुसार यहाँ के प्रमुख त्यौहार विजयदशमी, दीपावली, बैशाखी, शिवरात्रि, कृष्ण जन्माष्टमी, घिया-सक्रान्ति, बसंत-पंचमी, अनन्त-चतुदर्शी,

* वरिष्ठ असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी हे.न.ब.ग.के. विश्वविद्यालय श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड

होली, रक्षा बन्धन आदि हैं। त्यौहारों, मेलों का मुख्यतः इसलिए भी अधिक महत्व आंका जाता है क्योंकि ये क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहरों को अक्षुण्ण बनाने तथा सामाजिक भावनात्मकता को बढ़ाने में मददगार साबित हो सकते हैं।''[4]

विद्यासागर नौटियाल भारतीय संस्कृति के प्रचारक व प्रसारक रहे हैं उनके सम्पूर्ण साहित्य में लोक संस्कृति ही अपने पूर्ण रूप में उजागर हुई है। उनके साहित्य में तीज-त्यौहारों की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से हुई है- 'फुलियारी' कहानी में 'फुलदेई' त्यौहार की विशिष्टता को दर्शाते हुए लेखक कहते हैं-

''मासांत-संगरांद, फागुन का मासांत, चैत की संगरांद, कुल सुबह हाथों में डाली लेकर वे गाते चलेंगे-

उल्यारि झुल्यारि मुलूक
चला छोरू फुलूक
अग्या लगी आग
पिछाड़ि फंडू बाग

कल से लगातार सात दिन तक ताजा फूल तोड़े जाएंगे। तोडेंगे और उसी वक्त दरवाजों पर लाकर डाल देगें। यूंली के प्यारे, पीले फूल, हाँ! यूंली फूल गई है, बसंत आ गया है। फूल जूठे नहीं होने चाहिए। सूर्य तब दिखाई देना चाहिए जब फूल डालना खत्म हो जाए। धूप लगने से फूल जूठे हो जाते हैं। कितनी सुन्दर खुशबू आती है फूलों से, और उन वादियों-घाटियों की हवा में कितनी सुन्दर महक फैलती है जिनमें ये फूल लगे रहते हैं। फूल हमारी खुशी के प्रतीक हैं, हर घर सम्पन्न रहे उसकी देहरी में इसलिए भी फूल डाले जाते है।

सात दिन के बाद पहला अठवाड़ा होगा। तमाम घरों से खाने-पीने की बढ़िया-बढ़िया चीजें इकट्ठा की जाएंगी और फूल डालने वाले बच्चे मिल कर भोजन बनायेंगे। सब बच्चे एक साथ भोजन करेंगे। विविध भांति के पकवान होगें।''[5]

भारत में कार्तिक मास के कृष्ण पक्ष की अमावस्या को 'दीवाली' बहुत ही धूम-धाम से मनाई जाती है। इस त्यौहार को गढ़वाल क्षेत्र में 'बग्वाल' भी कहा जाता है। इस त्यौहार में तरह-तरह के पकवान, पूरी तथा साबूत उड़द के पकौड़े बनाए जाते हैं। पहाड़ी क्षेत्र में दीवाली का वर्णन करते हुए नौटियाल जी लिखते हैं- ''पहाड़ों में दीवाली को त्यौहारों का त्यौहार माना जाता है। एक के बजाय दो-तीन दिनों तक मनाए जाने वाला त्यौहार। उड़द की दाल के सरसों के तेल में तले जाने वाले पकौड़े दीवाली के विशेष पकवान होते हैं। जिस वक्त घरों के बच्चे जंगल के अन्दर लकड़ी व लताओं की तलाश करते रहते हैं। घरों के अन्दर उन की माँ-बहनें और पर्व पर विशेष तौर पर वहाँ आई हुई रिश्ते की दूसरी महिलाएँ दीपावली के पकवानों को बनाने की तैयारियाँ करने लगती हैं। जाड़ों की शुरूआत होते ही दिन छोटे होने लगते हैं। वे साबुत उड़द की दाल को किसी बड़े बर्तन में रख देंगी और उस में इतना पानीडाल देंगी कि दाल ठीक तरह से भीग जाय। उस बर्तन को बाहर कहीं घाम के पास रख देंगी घरों के मर्द लोग और लड़के-बच्चे बसौले, दरांतियाँ लेकर आंगन में बैठ जाएंगे। वे दली की लकड़ियों को काटते-फाड़ते हुए उनकी गड्डियाँ बना लेंगे और उन्हें भैंसलगले से बाँध कर भेले तैयार करने लगेंगे। उधर रसोई में महिलाएं उड़द की दाल धोने, पीसने के काम में लग जायेंगी।

उस दाल से सरसों के तेल के पकौड़े तले जायेंगे।''[6]

'अपनी पारी मौन' कहानी में कहानीकार में 'ग्वैरहू' त्यौहार का वर्णन करते हुए कहा है- ''आज ग्वैरहू है - ग्वालों और गायों का त्यौहार, जो वर्ष में एक दिन मनाया जाता है।

सबला सुबह से भोजन सामग्री जुटा रही थी। जब घर से बाहर और अपने मकान से दूर खाना बनाना हो तो एक-एक चीज सोच सोचकर साथ ले जानी होती है। कहीं ऐसा न हो कि जंगल में पहुँचकर जब खाना बनाने के लिए अपनी पोटली खोले तो पता चले, कोई खास चीज लाना भूल गये। जैसे- नमक, जैसे कोई खटाई की चीज, जैसे गुड़ चीनी या कि एक माचिस ही। या यह बात मन में आई कि शायद कोई और ग्वाले-ग्वालिनें वह चीज लेते आयेंगे और अब पता चल रहा है कि उस चीज को कोई भी नहीं ला पाया। अब बना लो खाना, मना लो ग्वैच्छू।''[7]

इस त्यौहार में अविवाहित ग्वाले तथा ग्वालिनें मिलकर चारगाहों का अनेक प्रकार के पकवान बनाकर पहले गायों को भोग लगाते हैं तथा बाद में सब मिल बांटकर भोजन का लुफ्त उठाते हैं।

साहित्यकार अपने परिवेश का चतुर चितेरा होता है और अपने आस-पास की छोटी से छोटी वस्तु पर भी उनका ध्यान आकर्षित होता है जिसे कि साधारण व्यक्ति नहीं देख पाता। विद्यासागर नौटियाल जी ने पशु-पक्षियों, जीव-जन्तु तथा प्रकृति के रूप में संवेदना को साझा किया है। वे 'चाची मछली' नामक कहानी में मछलियों के त्यौहार (जो कि शरद की पूर्णिमा को मनाया जाता है) का वर्णन करते हुए लिखते है- ''बड़ी मछली उन्हें और आगे ले जाकर कहने लगी- आज शरद की पूर्णिमा की रात है। हम बड़ी मछलियाँ आज अपना त्यौहार मनाती हैं। साल में एक यही दिन होता है जब हम सारी नदी की सब बड़ी मछलियाँ एक साथ मिलकर किसी त्यौहार को मनाती हैं। आज हम उत्सव मना रही हैं, चारों ओर से बड़ी मछलियाँ आई हैं और हम सब एक साथ बैठेगें, घूमेंगे ओर भोजन करेंगे।''[8]

मेले हमारी संस्कृति के प्रमुख अंग है। ये हमारी परम्पराओं एवं रीति-रिवाज के द्योतक हैं। '''मेला' शब्द संस्कृत के 'मेलापक्' शब्द से बना है। इस शब्द का प्रयोग परस्पर मिलने या मेल-मिलाप के लिए किया जाता है। वस्तुतः मेलों का आयोजन किसी विशेष उद्देश्य से एक स्थान पर लोगों को एकत्रित करने के लिए किया जाता है।''[9] मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही वह अनेक प्रकार के काम करता है जिससे कि उसका तथा समाज में रहने वाले लोगों का हित हो। मेले मानव की सामाजिक भावना को अभिव्यक्त करते हैं।

विद्यासागर नौटियाल पर गढ़वाल की संस्कृति की गहरी छाप दृष्टिगोचर होती है। मेले यहाँ की संस्कृति के संवाहक होते हुए भी यहाँ की आर्थिक कड़ी को भी मजबूत करते हैं। क्योंकि ये मनोरंजन के साथ-साथ आर्थिक दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है। पहाड़ी क्षेत्र के मेले के बारे में बताते हुए नौटियाल जी कहते हैं- ''अद्‌भुत दृश्य है। मेला लगा हुआ है, सभी पहाड़ी इलाकों का सौन्दर्य मेरे सामने बिखरा पड़ा है। हँसते नीले और पीले फूल, मुस्कराते गुलाबी और बादामी फूल, खिलने को आतुर कलियाँ, सब मेरे सामने हैं। कश्मीर की सुन्दरियाँ जिनका बखान करते-करते लेखकों की कलमें टूट गई,

कांगड़े की छोरियाँ, कुमाऊँ की गोरियाँ, गढ़वाल की सिगरेट वालियाँ, मंसूरी की दूध वालियाँ, शिमले की दुपट्टेवालियाँ, कुल्लू घाटी और चम्बा की चुनरीवालियां, दार्जिलिंग की कुरतेवालियां, नैनीताल की घाघरेवालियां, लैंसडाउन की पतली कमरवालियां आदि-आदि मेरे इर्द-गिर्द मंडरा रही हैं और अपनी-अपनी भाषा में गीत गा रही हैं- परदेसी बाबू, तुम बहुत अच्छे हो।''[10]

पशुपालन व्यवसाय से जुड़े होने के कारण गढ़वाल क्षेत्र में पशुओं से सम्बन्धित मेले भी लगते हैं। घोड़े, खच्चर, भेड़-बकरियाँ आदि से सम्बन्धित मेले लगते हैं। व्यापारी दूर-दूर से अपने पशुओं को व्यापार तथा प्रदर्शिनी हेतु लाते हैं। 'आग की लपटें' कहानी में लेखक ने भेड़-बकरियों से सम्बन्धित मेले के विषय में लिखा है- ''गर्मियों का मौसम। पाजूधार के तप्पड़ में भेड़ों का मेला लगा था। चारों ओर से गांवों से भेड़-बकरियां लेकर लोग इस मैदान में आ पहुंचे। भेड़ें और उनके छोटे-छोटे मेमनें मिमिया रहे थे।''[11]

'उत्तर-बायां है' उपन्यास में उपन्यासकार ने मौण के मेले के सन्दर्भ में बताया है कि गांवों के लोग नदियों के किनारों पर इकट्ठा होते हैं तथा जंगल की जड़ी-बूटियों व पत्तियों को पीसकर उस रस को नदियों में डालते हैं जिससे कि मछलियां मरने लग जाती हैं। यह मेला सामूहिक रूप से अनेक गांवों के लोग मिलकर मनाते हैं जो कि मनोरंजन एवं मत्सय-उद्योग का द्योतक है-

''मौण का मेला सामुहिक तौर पर मछलियों को मारने-पकड़ने का त्यौहार होता है। गांव के गांव नदियों के किनारों पर जमा हो जाते हैं। टिहरी गढ़वाल रियासत के गोडर, जौनपुर और देहरादून जिले के जौनबार-बाबर के कुछ इलाकों में पारम्परिक तौर पर हर साल जड़ी-बूटियों, पत्तियों को पीसकर उनका रस नदियों के पानी में डाल देते हैं, जिससे मछलियां मरने लगती हैं।''[12]

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि उत्तराखण्ड में मनाए जाने वाले तीज-त्यौहारों को पूर्ण रूप से विद्यासागर नौटियाल जी के साहित्य में सजीव रूप में देखा जा सकता है। उनके साहित्य में यहाँ की संस्कृति के अभिन्न रूप की सौंदी खुशबू को महसूस किया जा सकता है। तीज-त्यौहारों के द्वारा उन्होंने इस क्षेत्र की संस्कृति को उजागर किया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साहित्यकार विद्यासागर नौटियाल का साहित्य गढवाली सभ्यता एवं संस्कृति का जीवंत दस्तावेज है। नौटियाल जी के साहित्य में गढवाल की संस्कृति अपने सस्वर रूप में मुखरित हुई है, यही कालजयी साहित्यकार की सबसे बड़ी विशेषता है।

==================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. गढ़वाल का ऐतिहासिक, सामाजिक एवं धार्मिक भावनाओं का अध्ययन, डॉ0 आशा बिष्ट, पृ0- 137
2. कौरवी प्रदेश की लोक संस्कृति, डॉ0 कविता त्यागी, पृ0- 106, 107
3. वहीं, पृ0-107
4. गढ़वाल संस्कृति कला एवं साहित्य, डॉ0 जे0के0 गोदियाल, डॉ0 कुसुम डोबरियाल, पृ0-22
5. 'फुलियारी', टिहरी की कहानियां, विद्यासागर नौटियाल, पृ0-82
6. 'अभाजा', मेरी कथा-यात्रा, विद्यासागर नौटियाल, पृ0- 374
7. 'अपनी पारी मौन', फट जा पंचधार, विद्यासागर नौटियाल, पृ0- 206

8. 'चाची मछली', मेरी कथा-यात्रा, विद्यासागर नौटियाल, पृ0- 296
9. गढ़वाल हिमालय के प्रमुख मेले एवं त्यौहार तथा सांस्कृतिक प्रादेशीकरण, डॉ0 मोहन सिंह पंवार, डॉ0 राकेश गैरोला, पृ0- 124
10. 'परी देश की कहानियां', टिहरी की कहानियां, विद्यासागर नौटियाल, पृ0-35
11. 'आग की लपटें', टिहरी की कहानियां, विद्यासागर नौटियाल, पृ0-33
12. 'उत्तर बायां है', विद्यासागर नौटियाल, पृ0-279

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

हिन्दी साहित्यः इक्कीसवीं सदी अध्ययन-अध्यापन और शोध के नये आयाम

* दिनेश श्रीवास

सारांश- *किसी भी भाषा का उदय सदियों की प्रक्रिया होती है। इसके बाद भी भाषा का स्पष्ट रूप कई वर्षो बाद प्राप्त होता है। हिन्दी भाषा के साथ भी ऐसा ही हुआ है। संस्कृत से लेकर हिन्दी तक की यात्रा में अनेक पड़ाव प्राप्त होते हैं। अपभ्रंश से हिन्दी का आविर्भाव एक दिन की प्रक्रिया नहीं थी। हिन्दी का स्पष्ट रूप कई वर्षो बाद प्राप्त हुआ। बारहवीं सदी से हिन्दी का स्पष्ट रूप प्राप्त होता है। आज तक के यात्रा में हिन्दी के कई रूप दिखाई देते हैं। आज इक्कीसवीं सदी में हिन्दी पर विचार करते हुए यह ध्यान आता है कि हिन्दी में परिवर्तन हो सकता है। हिन्दी की उपयोगिता की दृष्टि से अनेक विचारणीय पक्ष हमारे सामने उपस्थित हो जाते हैं। इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिक तकनीकी आवश्यकता के अनुरूप हिन्दी में समाहार और समन्वय करने की प्रवृत्ति का विकास होना चाहिए।*

मुख्य शब्द– प्रगामी, फॉन्ट, त्रिभाषा–नीति, भाषावाद, भाषायी–राजनीति, विश्वभाषा

शोध पद्धति– प्रस्तुत शोध आलोचनात्मक अध्ययन का उदाहरण है। प्रस्तुत शोध आलेख में मैंने द्वितीयक स्त्रोत का उपयोग किया है। हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास पर प्राप्त अनेक ग्रन्थों को संदर्भ के रूप में लिया गया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिन्ट मीडिया में व्याप्त हिन्दी भाषा की अनेक गतिविधियों को संदर्भ के रूप में लिया गया है।

परिचय– हिन्दी भाषा में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। हिन्दी, भाषा के रूप में कई प्रकार की भूमिकाएँ प्रस्तुत करती है, इसलिए हिन्दी को केवल साहित्य तक ही सीमित न रख कर उसके भाषायी पक्षों पर भी विचार करना चाहिए। हिन्दी भाषा के प्रयोग के दो मुख्य आयाम हैं-प्रथम है, हिन्दी भाषा का भाषागत प्रयोग और द्वितीय है हिन्दी भाषा में लिखा गया साहित्य। वर्तमान समय में हम हिन्दी भाषा का कई रूपों में प्रयोग कर रहे हैं। हम हिन्दी भाषा के लिए राष्ट्रभाषा, राजभाषा, संपर्कभाषा, मानकभाषा, वाणिज्य-व्यापार की भाषा, मीडिया की भाषा, विज्ञान प्रौद्योगिकी की भाषा, पत्रकारिता की भाषा आदि कई शब्द उपयोग करते हैं। अभी कुछ दिनों से एक और शब्द हिन्दी के लिए प्रयोग किया जाने लगा है, वह है विश्व भाषा। विश्व भाषा अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय भाषा, विश्व स्तर की भाषा या विश्व के अनेक देशों में व्यवहार की जानी वाली भाषा के रूप में, संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा के रूप में आदि।

इक्कीसवीं सदी में में हिन्दी के समक्ष चुनौतियाँ– हिन्दी भाषा का

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय ई.व्ही.पी.जी. महाविद्यालय, कोरबा (छ.ग.)

जिन-जिन रूपों में प्रयोग हो रहा है, इन सभी रूपों में उसे अनेक चुनौतियाँ मिल रही हैं। सुविधा की दृष्टि से इसे दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग- इस वर्ग में चुनौतियाँ प्रभावी और गंभीर हैं तथा यदि इनका समाधान नहीं किया गया तो हिन्दी भाषा का प्रचलन कम हो सकता है। जब हिन्दी भाषा का निम्नलिखित रूपों में प्रयोग होता है तो ये चुनौतियाँ हमारे सामने आती हैं-

1. राजभाषा
2. विज्ञान-प्रौद्योगिकी की भाषा
3. कम्प्यूटर की भाषा
4. मीडिया की भाषा
5. वाणिज्य-व्यापार की भाषा

द्वितीय वर्ग- इस वर्ग में हिन्दी भाषा के समक्ष अपेक्षाकृत कम चुनौतियाँ हैं।

1. धर्म संस्कृति की भाषा
2. संपर्क की भाषा
3. साहित्य की भाषा
4. राष्ट्र की भाषा
5. मातृभाषा

हिन्दी भाषा उपर्युक्त भाषाओं के रूप में बहुत पहले से प्रयुक्त की जा रही है। इन रूपों में हिन्दी भाषा अधिक सशक्त है।

हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन और शोध के विविध आयाम-

इक्कीसवीं सदी में हिन्दी भाषा को मिलने वाली चुनौतियों को ध्यान में रखकर ही अध्ययन-अध्यापन और शोध होना चाहिए। अध्ययन-अध्यापन तथा शोध में नए क्षेत्रों को भी स्पर्श किया जाना चाहिए। रोजगारमूलक भाषा और विज्ञान-प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए इसके अध्ययन-अध्यापन तथा शोध को और अधिक महत्व देना चाहिए। पाठ्यक्रमों में इसे सम्मिलित किया जाना चाहिए। केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली तथा वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग, दिल्ली इस दिशा में कार्यरत् हैं। वर्तमान में लगभग 3500 विज्ञान लेखक हिन्दी में लेखन का कार्य कर रहे हैं। 8000 से अधिक विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी में लिखी जा चुकी हैं। विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें और प्रतियोगी पत्रिकाओं के साथ कई विज्ञान पत्रिकाएँ हिन्दी में उपलब्ध हैं। हर्ष की बात है कि हिन्दी भाषा में विज्ञान की पत्रिकाएँ लोकप्रिय हो रही हैं, जो विज्ञान को लोकप्रिय बनाने की दिशा में सक्रिय है। विज्ञान लेखन पर 'आत्माराम विज्ञान लेखन पुरस्कार' जैसे अनेक पुरस्कार दिए जाते हैं। हाल के वर्षों में अनेक विज्ञान लेखक इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। इंजीनियर जगदीप डांगी के महत्वपूर्ण हिन्दी सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं, जिन्हें 'लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्ड 2015 पुरस्कार' मिल चुका है। इनका सॉफ्टवेयर 'सक्षम' प्रथम हिन्दी वर्तनी परीक्षक है तथा 'प्रखर' देवनागरी फॉन्ट परिवर्तक है। इसी प्रकार बालेन्दु शर्मा भी विज्ञान और टेक्नॉलाजी लेखन में सशक्त नाम है, जो हिन्दी सॉफ्टवेयर तथा वेब सेवाओं के विकास, हिन्दी में न्यू मीडिया (वेब पत्रकारिता) को प्रोत्साहित करने, तकनीकी विषयों पर विषद् हिन्दी लेखन के लिए अनेक पुरस्कार और सम्मान से अलंकृत किए जा चुके हैं। इन सशक्त लेखकों और इनके कार्यों पर पर शोध

का अभाव है।

राजभाषा से विश्व भाषा तक–

वर्तमान में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग को बल मिला है, लोक साहित्य को साहित्य में स्थान मिल गया है। ऐसे में हिन्दी को दोहरी भूमिका निभाना होगा। हिन्दी को सभी देशी भाषाओं का समाहार करते हुए आगे बढ़ना होगा। इसके लिए हिन्दी को देशी भाषाओं के शब्दों, शैलियो के साथ उनकी लोक संस्कृति और लोक साहित्य को स्वयं में समाहित करना होगा। इससे भाषावाद की समस्या से मुक्ति मिल सकती है। हिन्दी की दूसरी भूमिका यह होगी कि वह देश की भाषाओं में ही नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध समस्त ज्ञान-विज्ञान के साहित्य और साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों को अन्य भाषा के लोगों तक पहुँचाने का सफल माध्यम बने। इस लक्ष्य की प्राप्ति उसके दोनों रूपों से ही संभव होगी, जिन्हें हम राजभाषा और राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा और राजभाषा की संकल्पना में उच्च या निम्न स्तर की बात नहीं है। ये संकल्पनाएँ एक दूसरे की पूरक है और दोनों से ही हिन्दी भाषा की पूर्णता सिद्ध होती है।

हिन्दी हमारी राजभाषा और राष्ट्रभाषा दोनों है, इसे विश्वभाषा बनाने के लिए हम संकल्पित भी हैं। इसके लिए हिन्दी की समाहार शक्ति में वृद्धि करते हुए उसे भारत के जन-जन से जोड़ना होगा। भाषावाद के बंधनों को तोड़ते हुए स्पष्ट भाषा नीति की आवश्यकता है। भाषावाद के प्रति सामान्य जन की मानसिकता को परिष्कृत करने की आवश्यकता है। त्रिभाषा फॉर्मूला कितना सार्थक है, इसकी भी समीक्षा होनी चाहिए। कभी-कभी जाने-अन्जाने में हम भाषावाद को बढ़ावा देते हैं और गैर हिन्दी भाषाई जनता की मानसिकता को समझ नहीं पाते। जितना महत्व राष्ट्रभाषा हिन्दी को दिया जाता है उतना ही महत्व क्षेत्रीय भाषाओं को भी दिया जाना चाहिए। भाषावाद और हिन्दी के प्रति हीन भावनाओं को जीत कर ही हम हिन्दी को विश्व भाषा के रूप में स्थापित कर सकते हैं। भारत के बाहर हिन्दी लेखकों की संख्या बढ़ती जा रही है और भारतीय भाषाओं में हिन्दी भाषा को विदेशों में अधिक पसंद किया जाता है। अब तक आयोजित हुए आठ विश्व हिन्दी सम्मेलन इस बात का साक्षी है कि वैश्विक स्तर पर हिन्दी अपना सर्वमान्य धरातल निर्मित कर चुकी है। अनेक कम्प्यूटर कंपनियों के स्वामी हिन्दी की संप्रेषणीयता पर मुग्ध हैं, यह भी विश्व भाषा के रूप में हिन्दी की ताकत हो सकती है। कम्प्यूटर टाईपराइटर की दृष्टि से, विदेशी भाषाओं के शब्दों और शैलियों को समाहार-समन्वय करने की दृष्टि से भी हिन्दी खरी उतरती है तो हम कह सकते हैं इसका प्रयोग प्रगामी (प्रोगेसिव) है। अर्थात् उन्नतिकारक है अथवा हिन्दी भाषा में गतिशीलता है और उसके प्रयोग की गतिशीलता बनी रहेगी। उत्तरोत्तर रूप में यह भाषा प्रगतिशील रहेगी। भविष्य में आने वाली हर चुनौती का सामना कर सकेगी। यथा संभव भारत के बाहर रहने वाले भारतवंशियों द्वारा लिखित हिन्दी साहित्य को भी अध्ययन-अध्यापन और शोध के दायरे में लाना चाहिए। इसके लिए हमें शुद्धतावादी दृष्टिकोण तथा कट्टर भाषाई सोच को भी बदलना चाहिए। साथ ही हिन्दी साहित्य के विषय में अपनी मानसिकता को भी बदलने की आवश्यकता है। वर्तमान अंग्रेजी लेखन को अधिक महत्व दिया जा रहा है, जबकि विषय-वस्तु हिन्दी की है। संभवतः हमें दूधनाथ सिंह के इस कथन को भी ध्यान में रखना होगा कि 'हिन्दी साहित्य दुश्मनों का आपसी खेल है।' तभी हम हिन्दी में खेमेबाजी और

हिन्दी के प्रति हीनता के भाव को भूला सकेंगे और हिन्दी इक्कीसवीं सदी में भी हम हिन्दी जनों के लिए उपयोगी बनी रहेगी।

निष्कर्ष–

हिन्दी साहित्य का लेखन केवल मुद्रित साधनों तक ही सीमित नहीं रह गया है बल्कि वेब मीडिया (इंटरनेट, ब्लॉग, व्हाट्सअप) में साहित्य लेखन जारी है। विदेशों में भी हिन्दी के लेखक पर्याप्त संख्या में हैं। विज्ञान-प्रौद्योगिकी की पुस्तकें हिन्दी में लिखी जा रही है और अनूदित साहित्य भी पर्याप्त है। अतः इनका भी अध्ययन-अध्यापन होना चाहिए और इसे पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निम्नलिखित बिन्दुओं पर सम्यक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए-

1. हिन्दी साहित्य के उपेक्षित विधाओं (यथा-रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी लेखन, पत्र-वार्ता आदि) को पाठ्यक्रमों और शोध विषयों में सम्मिलित करना होगा।
2. कम्प्यूटर टायपिंग की दृष्टि से हिन्दी को और सुगम बनाने की आवश्यकता है।
3. विदेशों में लिखे गए हिन्दी साहित्य और इंटरनेट-ब्लॉग पर लिखित साहित्य पर भी विचार होना चाहिए।
4. शुद्धतावादी हिन्दी की अपेक्षा समाहार-समन्वय करने वाली हिन्दी को महत्व देना चाहिए।

वर्तमान अंग्रेजी लेखन द्वारा हिन्दी साहित्य को दी जा रही चुनौतियों से निपटने के लिए द्विपक्षीय रणनीति पर विचार करना होगा। प्रथम तो हिन्दी साहित्य लेखन में व्याप्त खेमेबाजी और हीनताभाव को भूलना होगा। द्वितीय अंग्रेजी लेखन के समानांतर स्तरीय साहित्य लिखकर नये पाठक तैयार करना होगा। तभी हिन्दी सशक्त होकर इक्कीसवीं सदी में भी जन-जन की भाषा बनी रहेगी।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. भोलानाथ तिवारी, मानक हिन्दी का स्वरूप, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, 1999
2. डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय, डॉ. प्रमिला अवस्थी, प्रयोजन मूलक हिन्दी, आशीष प्रकाशन कानपुर, 2007
3. डॉ. उषा शुक्ल, प्रयोजन मूलक हिन्दी, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2001
4. डॉ. नगेन्द्र (सम्पादक) हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बेक प्रकाशन नई दिल्ली, 2003
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, बनारस, 1991
6. डॉ. रविप्रकाश टेकचंदानी (मुख्य संपादक), देवनागरी लिपी तथा हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली 2016
7. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, बनारस 1985

पत्रिका-

1. पहल-सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर अंक 2003
2. आलोचना-जनवरी, फरवरी, मार्च अंक 2002
3. समयांतर-अगस्त, जुलाई, अंक 2000

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

वृद्ध महिलाओं की पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याएँ-एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

* के.के शर्मा
** निशा सिंह

सारांश– *भारतीय समाज की प्रमुख विशिष्टता 'परिवार' रहा है। विभिन्न आयु और पीढ़ी के सदस्य के मध्य सम्मान और अपनापन के भाव ने परिवार को एक सुदृढ़ सामाजिक इकाई का रूप दिया। भारतीय समाज की सामाजिक संरचना का मूल स्वरूप वैदिक कालीन परिदृश्य में समाहित रहा है। जिसका परिमार्जन और परिष्करण शनैः शनैः आगे हुआ। वैदिक काल में आदर्श समाज की संरचना के लिए आश्रम की परिकल्पनात्मक प्रारूप तैयार किया गया जो काफी प्रभावी रहा। वैदिक काल में प्रभावशील रही आश्रम व्यवस्था आधुनिक काल आते–आते मौन हो गयी। लिहाजा उत्तरावस्था में लोग वानप्रस्थ न अपना कर समाज और परिवार में ही रहने लगे। परिवार के वे सदस्य जिनकी आयु 50 वर्ष से अधिक होती थी, उन्हें उत्तरावस्था के लोग कहा जाने लगा। उत्तरावस्था के आगे का समय जब शरीर शिथिल होने लगता था, वृद्धावस्था कहा गया।*

मुख्य शब्द– विपन्नता, उत्तरावस्था, वैचारिक प्रौढ़ता, एकाकीपन

वृद्धावस्था में पहुँचने वाली महिलाओं के सामने कई प्रकार की मानसिक और शारीरिक समस्याएँ स्वाभाविक रूप से आ जाती हैं। वास्तव में यह उम्र का ऐसा पड़ाव है, जब मानव की इन्द्रियाँ धीरे-धीरे शिथिल होने लगती हैं, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता घटने लगती हैं। इस कारण आये दिन कोई न कोई व्याधि इस आयु के लोगों को परेशान करती रहती है। सक्रियता और कार्य क्षमता में कमी, नई पीढ़ी की उद्यम लालसा, बढ़ता व्यक्तिवाद, एकांगी परिवार का चलन, आपेक्षित साधनों का अभाव आदि ऐसी समस्याएँ हैं जिससे वृद्धावस्था में पहुँचे स्त्री-पुरूष अपने को सक्रिय समाज में उपेक्षित महसूस करने लगता है। यह उपेक्षा उनके मानसिक कष्ट का कारक बनती है। वर्तमान में संयुक्त परिवार तेजी से बिखर रहें हैं और युवा पीढ़ी भौतिकता की चकाचौंध से ग्रसित हो सब कुछ छोड़ अर्थ-साधना में जी-जान से जुटा रहा है। प्रौढ़ पीढ़ी के सामने दुविधापूर्ण स्थिति निर्मित हो रही हैं उनके सामने एक ओर जहाँ आगे बढ़ती नई पीढ़ी (संताने) हैं, वही दूसरी ओर उनके स्वजन (माता-पिता-चाचा आदि) हैं। उपेक्षा किसी की उचित नहीं, पर एक को समय चाहिए, दूसरे को धन। स्वाभाविक रूप से संतान प्रेम और आने वाले कल को महसूस कर अधिकांश लोग अग्रजों की अपेक्षा आगतों पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करते हैं

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा
** शोध छात्रा, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा

जिस कारण से उत्तरावस्था में पहुँचे वृद्धजन अपने को अपमानित महसूस करते है। समाज के इस पीढ़ी के लोगों की स्थिति और चिंतन कैसा है? इस परिपेक्ष्य का अध्ययन करने के लिए निदर्शन के द्वारा चयनित 100 वृद्ध महिलाओं का चयन रीवा नगर से किया गया है।

अध्ययन पद्धति एवं उपकरण– शोध प्रविधि का आशय उन सुव्यवस्थित तरीकों, विधियों से है जिनके द्वारा शोधार्थी अध्ययन विषय से सम्बन्धित विश्वसनीय एवं यथार्थ तथ्यों का संकलन करता है तथा उन्हें व्यवस्थित करता है। शोध पत्र को पूर्ण करने के लिए उपलब्ध प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है। समंक संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों के समस्त स्रोतों से समंक प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। प्राथमिक समंक व्यक्तिगत साक्षात्कार एवं प्रश्नावली द्वारा संकलित किए गए हैं। द्वितीयक समंक समाज में उपलब्ध साहित्य, शासकीय एवं अशासकीय प्रकाशनों, पत्र-पत्रिकाएँ, जर्नल्स एवं दैनिक समाचार पत्रों का अध्ययन कर प्राप्त किए गए हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन हेतु रीवा नगर के विभिन्न वार्डो से 100 वृद्ध महिलाओं का चयन किया गया है। वृद्ध महिलाओं से सबंधित विभिन्न तथ्यों का संकलन, अध्ययन हेतु किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य तथ्यों का संग्रहण, विश्लेषण तथा उनका सामान्यीकरण करना है। तथ्य संग्रहण के अनेक आधार एवं स्रोत हैं। सर्वेक्षण के आधार पर जो तथ्य संग्रहित किए जाते हैं, उनका आधार उत्तरदाता है। इस प्रकार उत्तरदाता शोध की आधारशिला है। प्रत्यक्ष सम्पर्क के माध्यम से शोधकर्ता उत्तरदाताओं से तथ्यों का संग्रहण करता है तथा इन तथ्यों का विश्लेषण, कर अपने निष्कर्ष निकालता है। इस दृष्टि से सवेक्षणपरक शोध में उत्तरदाताओं की अहम भूमिका होती

शोध क्षेत्र का संक्षिप्त विवरण– भारत वर्ष के मध्य में स्थित म.प्र. राज्य के उत्तरी-पूर्वी द्वार के नाम से प्रसिद्ध रीवा नगर एक मध्यकालीन ऐतिहासिक नगर है। भारत वर्ष के उन 250 नगरों में से एक नगर रीवा है जहाँ की जनसंख्या 2.00 लाख से ऊपर है। रीवा नगर मुख्य रूप से उपरहटी, तरहटी, समान, ढेकहा, विश्वविद्यालय चोरहटा, बिछिया आदि उपनगरों में विभाजित है। प्राचीन रीवा नगर किले के आस-पास तक ही विस्तृत था। किन्तु वर्तमान में रीवा नगर का सर्वाधिक विस्तार, इलाहाबाद रोड़, सतना रोड़, विश्वविद्यालय रोड़, सेमरिया रोड़, शहडोल रोड़ एवं गुढ़ रोड़ में सर्वाधिक पाया गया है। रीवा नगर को 45 वार्डो में विभाजित में किया गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या 235422 है। रीवा नगर बिछिया व बीहर नदी के किनारे बसा है। नगर का सम्पूर्ण ढाल दक्षिण से उत्तर की ओर है।

अध्ययनरत वृद्ध महिलाओं की उम्र– जीवन में उम्र महत्वपूर्ण घटक है फिर चाहे वह जीवन प्रा.तिक हो, पशु जगत का हो या फिर मानव का। उम्र का सम्बन्ध केवल गणना से न होकर इसका व्यक्ति की क्रियाकलापों से भी होता है। उम्र चक्र के अनुसार व्यक्ति की क्रियाएँ और उसके व्यवहारों में परिवर्तन होता रहता है। यह एक निर्विवाद सत्य है कि सभी उम्र के व्यक्ति समान प्रकार के कार्यो का सम्पादन नहीं कर सकते। प्रत्येक समाज में उम्र के आधार पर कार्यो का विभाजन किया जाता है। उम्र ही वह आधार है जो व्यक्ति की समाज में उसकी स्थिति का बोध कराती है तथा उसकी क्रियाकलापों का निर्धारण करती है। भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही उम्र के आधार पर सामाजिक

व्यवस्था का संचालन होता चला आ रहा है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है।

उम्र के आधार पर ही समाज में व्यक्ति के विभिन्न पदों का निर्धारण होता है। व्यक्ति के प्रदत्त पद और अर्जित पद दोनों में उम्र को ही आधार बनाया जाता है। यह समझा जाता है कि कम उम्र की अपेक्षा अधिक उम्र वाला व्यक्ति अधिक अनुभवी एवं ज्ञानी होता है। राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक निर्णय वैचारिक प्रौढ़ता को दर्शाती है। परम्परागत समाजों में अधिक उम्र वाले व्यक्ति के सुझावों का भी बहुत महत्व होता है। उम्र के आधार पर व्यक्ति का स्थायीकरण करके उसका पारिवारिक जीवन में प्रवेश होता हैं उम्र के महत्व को इस आधार पर भी देखा जा सकता है कि हिन्दू दर्शन में उम्र के आधार पर ही जीवन को चार प्रमुख भागों (आश्रमों) में विभाजित किया गया है। इस तरह कहा जा सकता है कि उम्र को मानव जीवन में सर्वाधिक जैविकीय तत्व माना जाता है। प्रस्तुत शोध में उत्तरदाताओं की उम्र को भी अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। सर्वेक्षण के आधार पर वृद्ध महिला उत्तरदाताओं की उम्र के सम्बन्ध में जो जानकारी प्राप्त हुई है, उसे निम्न सारणी में दिखाया गया है-

सारणी क्र. 01

अध्ययनरत वृद्ध महिलाओं की आयु का विवरण

क्र.	आयु समूह	संख्या	प्रतिशत
1	60—65	30	30
2	65—70	20	20
3	70—75	15	15
4	75—80	20	20
5	80—85	10	10
6	85 से अधिक	05	05
	योग	**100**	**100**

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि 30 प्रतिशत प्रतिशत वृद्ध महिला उत्तरदाता 60 से 65 वर्ष की आयु समूह में स्थित हैं। 20 प्रतिशत उत्तरदाता 65 से 70, 15 प्रतिशत उत्तरदाता 70 से 75, 20 प्रतिशत उत्तरदाता 75-80, 10 प्रतिशत उत्तरदाता 80-85 तथा 05 प्रतिशत उत्तरदाता 85 से अधिक आयु समूह की हैं। तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मिलित अधिकांश वृद्ध महिलाएँ 65-70 वर्ष की आयु समूह में स्थित हैं। जो कुल का 30 प्रतिशत है, जबकि सबसे कम 80 से 85 वर्ष के उत्तरावस्था आयु समूह के हैं जिनका प्रतिशत 05 है।

पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन– रीवा नगर के वृद्ध महिलाओं के समुदाय में भी परिवारों का सार्वभौमिक स्वरूप पाया जाता है। परिवार का निर्माण सामाजिक मान्यता प्राप्त वैवाहिक विधियों द्वारा ही होता है। यदि कोई व्यक्ति बिना वैवाहिक प्रक्रिया के ही परिवार बसा कर रहता है तो उसे निंदनीय एवं तिरस्कृत माना जाता है। रीवा नगर के नगरीय समुदाय में भी सभी परिवार पितृ सत्तात्मक, पितृ स्थानीय एवं पितृवंशीय है। प्रायः एक विवाही परिवार ही अधिकतर है। एक विवाही परिवार को आदर्श माना जाता

है, किन्तु यदा कदा बहु पत्नी विवाह के भी उदाहरण मिलते हैं।

सारणी क्रमांक-02

परिवार के आकार के आधार पर उत्तरदाताओं का विवरण

क्र.	उत्तरदाताओं का विवरण	संयुक्त परिवार		एकाकी परिवार	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
1	उच्चवर्गीय	05	10.00	10	20.00
2	मध्यवर्गीय	20	40.00	30	60.00
3	निम्नवर्गीय	25	50.00	10	20.00
	योग	**50**	**100**	**50**	**100**

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्यों के आधार पर।

शोधार्थी द्वारा शोध पत्र के अन्तर्गत पारिवारिक सूचनायें एकत्र की गई जिसमें शोधार्थी तीनों वर्ग के वृद्ध महिलाओं से साक्षात्कार लिया तो उच्च वर्गीय वृद्ध महिलाओं से पता चला कि 10 प्रतिशत वृद्ध महिलाएँ संयुक्त परिवार में रहती हैं, जबकि 20 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं से पता चला कि वे एकाकी परिवार में रहती हैं। मध्यवर्गीय वृद्धों में से 40 प्रतिशत महिलाएँ संयुक्त परिवार में व 60 प्रतिशत वृद्ध महिलाएँ एकाकी परिवार में रहना स्वीकार किया है। निम्नवर्गीय परिवारों में से 50 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने संयुक्त परिवार में व 20 प्रतिशत ने एकाकी परिवार में रहना बताया।

प्रमुख समाजवादी विचारक मैकाइवर ने लिखा है कि ''समाज की धारणा अन्य धारणाओं से ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि समाज की व्यक्ति की क्रियाओं पर नियंत्रण लगाता है और व्यवहार की सीमाओं को स्पष्ट करता है यदि इसमें कोई भी कमियाँ और दोष हो, सम्पूर्ण मानव इतिहास में समाज जीवन के सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सबसे महत्वपूर्ण आधार है।'

शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध पत्र में वृद्ध महिलाओं की वृद्धावस्था से पूर्व सामाजिक स्थिति को जानने का प्रयास किया है।

सारणी क्रमांक-03

वृद्धावस्था से पूर्व वृद्ध महिलाओं की सामाजिक स्थिति

क्र.	उत्तरदाताओं का विवरण	सामान्य थी		अच्छी थी		खराब थी		योग
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	मध्यमवर्गीय	05	12.00	05	12.00	05	33.00	15
2	उच्चवर्गीय	15	37.00	30	67.00	05	33.00	50
3	निम्नवर्गीय	20	50.00	10	22.00	05	33.00	35
	योग	**40**	**100**	**45**	**100**	**15**	**100**	**100**

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्यों के आधार पर।

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि शोधार्थी द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर कि वृद्धावस्था के पूर्व आपकी सामाजिक स्थिति कैसी थी? मध्यवर्गीय परिवार के 12 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने बताया कि वृद्धावस्था पूर्व उनकी सामाजिक स्थिति सामान्य थी। 12 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि वृद्धावस्था पूर्व उनकी सामाजिक स्थिति अच्छी थी। उच्चवर्गीय में 37 प्रतिशत की सामान्य, 67 प्रतिशत की स्थिति अच्छी थी। निम्नवर्गीय में 50 प्रतिशत

ने स्वीकारा कि वृद्धावस्था के दौरान उनकी सामाजिक स्थिति सामान्य थी।

सारणी क्रमांक 04

समय के समायोजन के संबंध में वृद्ध महिलाओं का मत

क्र.	उत्तरदाताओं का विवरण	समय काटना भारी लगता है		समय काटना भारी नहीं लगता है		योग
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	उच्च वर्ग	10	13.00	05	25.00	15
2	मध्यम वर्ग	40	50.00	10	50.00	50
3	निम्न वर्ग	30	37.00	05	25.00	35
	योग	**80**	**100**	**20**	**100**	**100**

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्यों के आधार पर।

शोधार्थी द्वारा तीनों श्रेणी के वृद्धों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय जब उनसे ये जानने की कोशिश की गई कि वृद्धावस्था के पूर्व के समय आपके पास अपना वक्त गुजारने के लिए कोई भी समस्या नहीं थी, लेकिन इसके पश्चात वर्तमान में जबकि कि कोई भी कार्य अब नहीं रहा। तब इस स्थिति में आप अपना समय किस तरह काटते हैं? उच्च वर्ग के 13 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने बताया कि उनको अब समय काटने की समस्या है। 25 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उनको समय काटना भारी नहीं लगता है। मध्यम वर्ग में से 50 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकारा कि उनको वर्तमान में समय काटना भारी पड़ता है। 50 प्रतिशत ने कहा कि उन्हें समय काटना भारी नहीं लगता है। निम्न वर्ग की श्रेणी में 37 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं को इस अवस्था में समय काटना भारी लगता है तथा 25 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं का मानना है कि उनका समय कट जाता है।

उपरोक्त आंकड़ों का तुलनात्मक विश्लेषण करने से शोधार्थी इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि समय काटने की समस्या मध्यम वर्ग में उच्च वर्ग से कम किन्तु निम्न वर्ग से अधिक है।

सारणी क्रमांक 05

वृद्ध महिलाओं की वर्तमान कार्यशीलता

क्र.	उत्तरदाताओं का विवरण	कार्यशील रहती है		कार्यशील नही रहती है		योग
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	उच्च वर्ग	10	14.00	05	17.00	15
2	मध्यम वर्ग	30	43.00	20	67.00	50
3	निम्न वर्ग	30	43.00	05	17.00	35
	योग	**70**	**100**	**30**	**100**	**100**

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण से प्राप्त तथ्यों के आधार पर।

शोधार्थी द्वारा उच्चवर्ग की वृद्ध महिलाओं से यह पूछे जाने पर की क्या आप सामाजिक उत्थान के लिए कुछ कार्य करते हैं? उच्चवर्ग में 14 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने बताया कि वे सामाजिक उत्थान के लिए कार्यशील रहती हैं, तथा 17 प्रतिशत महिलाओं ने माना कि वह कार्यशील नहीं रहती हैं। मध्यम वर्ग में 43 प्रतिशत महिलाएँ सामाजिक उत्थान के लिए कार्यशील रहती हैं परंतु 67 प्रतिशत महिलाएँ कार्यशाील नहीं हैं। इसी तरह निम्न वर्ग में सामाजिक उत्थान के लिए 43 प्रतिशत महिलाएँ पूर्णरूप से कार्यशील रहती

हैं। जबकि 17.00 प्रतिशत महिलाएँ कार्यशील नहीं हैं।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष– वृद्धावस्था में पहुँचने वाली महिलाओं के सामने कई प्रकार की मानसिक और शारीरिक समस्याएँ स्वाभाविक रूप से आ जाती हैं। वास्तव में यह उम्र का ऐसा पड़ाव है, जब मानव की इन्द्रियाँ धीरे-धीरे शिथिल होने लगती हैं, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता घटने लगती हैं। इस कारण आये दिन कोई न कोई व्याधि इस आयु के लोगों को परेशान करती रहती है। सक्रियता और कार्य क्षमता में कमी, नई पीढ़ी की उद्यम लालसा, बढ़ता व्यक्तिवाद, एकांगी परिवार का चलन, आपेक्षित साधनों का अभाव आदि ऐसी समस्याएँ हैं जिससे वृद्धावस्था में पहुँचे स्त्री-पुरूष अपने को सक्रिय समाज में उपेक्षित महसूस करने लगता है। यह उपेक्षा उनके मानसिक कष्ट का कारक बनती है।

प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन हेतु रीवा नगर के विभिन्न वार्डों से 100 वृद्ध महिलाओं का चयन किया गया है। वृद्ध महिलाओं से सबंधित विभिन्न तथ्यों का संकलन, अध्ययन हेतु किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 30 प्रतिशत प्रतिशत वृद्ध महिला उत्तरदाता 60 से 65 वर्ष की आयु समूह में स्थित हैं। 20 प्रतिशत उत्तरदाता 65 से 70, 15 प्रतिशत उत्तरदाता 70 से 75, 20 प्रतिशत उत्तरदाता 75-80, 10 प्रतिशत उत्तरदाता 80-85 तथा 05 प्रतिशत उत्तरदाता 85 से अधिक आयु समूह की हैं।

अध्ययन में सम्मिलित अधिकांश वृद्ध महिलाएँ 65-70 वर्ष की आयु समूह में स्थित हैं। जो कुल का 30 प्रतिशत है, जबकि सबसे कम 80 से 85 वर्ष के उत्तरावस्था आयु समूह के हैं जिनका प्रतिशत 5 है।

अध्ययन में सम्मिलित 10 प्रतिशत वृद्ध महिलाएँ संयुक्त परिवार में रहती हैं, जबकि 20 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं से पता चला कि वे एकाकी परिवार में रहती हैं। मध्यवर्गीय वृद्धों में से 40 प्रतिशत महिलाएँ संयुक्त परिवार में व 60 प्रतिशत वृद्ध महिलाएँ एकाकी परिवार में रहना स्वीकार किया है। निम्नवर्गीय परिवारों में से 50 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने संयुक्त परिवार में व 20 प्रतिशत ने एकाकी परिवार में रहना बताया।

शोधार्थी ने प्रस्तुत शोध पत्र में वृद्ध महिलाओं की वृद्धावस्था से पूर्व सामाजिक स्थिति को जानने का प्रयास करने पर पाया कि मध्यवर्गीय परिवार के 12 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने बताया कि वृद्धावस्था पूर्व उनकी सामाजिक स्थिति सामान्य थी। 12 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि वृद्धावस्था पूर्व उनकी सामाजिक स्थिति अच्छी थी। उच्चवर्गीय में 37 प्रतिशत की सामान्य, 67 प्रतिशत की स्थिति अच्छी थी। निम्नवर्गीय में 50 प्रतिशत ने स्वीकारा कि वृद्धावस्था के दौरान उनकी सामाजिक स्थिति अच्छी थी।

शोधार्थी द्वारा तीनों श्रेणी के वृद्धों का तुलनात्मक अध्ययन करते समय जब उनसे ये जानने की कोशिश की गई कि वृद्धावस्था के पूर्व के समय आपके पास अपना वक्त गुजारने के लिए कोई भी समस्या नहीं थी, लेकिन इसके पश्चात वर्तमान में जबकि कि कोई भी कार्य अब नहीं रहा। तब इस स्थिति में आप अपना समय किस तरह काटते हैं? उच्च वर्ग के 13 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने बताया कि उनको अब समय काटने की समस्या है। 25 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उनको समय काटना भारी नहीं लगता है। मध्यम वर्ग में से 50 प्रतिशत महिलाओं ने स्वीकारा कि उनको वर्तमान में समय काटना भारी पड़ता है। 50 प्रतिशत ने कहा कि उन्हें समय काटना भारी नहीं लगता है। निम्न वर्ग

की श्रेणी में 37 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं को इस अवस्था में समय काटना भारी लगता है तथा 25 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं का मानना है कि उनका समय कट जाता है।

शोधार्थी द्वारा उच्चवर्ग की वृद्ध महिलाओं से यह पूछे जाने पर की क्या आप सामाजिक उत्थान के लिए कुछ कार्य करते हैं? उच्चवर्ग में 14 प्रतिशत वृद्ध महिलाओं ने बताया कि वे सामाजिक उत्थान के लिए कार्यशील रहती हैं, तथा 17 प्रतिशत महिलाओं ने माना कि वह कार्यशील नहीं रहती हैं। मध्यम वर्ग में 43 प्रतिशत महिलाएँ सामाजिक उत्थान के लिए कार्यशील रहती हैं परंतु 67 प्रतिशत महिलाएँ कार्यशाील नहीं हैं। इसी तरह निम्न वर्ग में सामाजिक उत्थान के लिए 43 प्रतिशत महिलाएँ पूर्णरूप से कार्यशील रहती हैं। जबकि 17 प्रतिशत महिलाएँ कार्यशील नहीं हैं।

======================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1 अल्तेकर–'दि पोजीसन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, हिन्दू विश्वविद्यालय, कल्चर प्रकाशन बनारस 1938

2 शर्मा रतन–वरिष्ठजन का समाजशास्त्र, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर

3 भारद्वाज निधि ''महिला सशक्तिकरण प्रकाशक, सागर पब्लिशर्स 2012

4 डॉ. सिंह वृन्दा ''वृद्धावस्था जीवन की संध्या बेला'' गीतांजली प्रकाशन जयपुर 2009

5 वेदांलकर हरिदत्त–''परिवार मीमांशा सरस्वती सदन, दिल्ली 1973

6 व्होरा आशारानी–''भारतीय नारी अस्मिता एवं अधिकार–नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली 1986

7 भट्ट कृष्णा–''मध्य हिमालय की महिलाओं का सामाजिक आर्थिक जीवन, ईस्टर्न बुक लिंकति दिल्ली, 1988

8 सिंह रमा, शिक्षित हिन्दू महिलाएँ एवं धर्म वी.आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली 1988

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

स्थानीय स्वशासन के प्रबन्ध में नगर पालिक निगम दुर्ग के आय-व्यय का विश्लेषणात्मक अध्ययन

* एच. एस. भाटिया
** अंकिता नामदेव

सारांश- *वर्तमान जगत में स्थानीय स्वशासन की पंचस्तरीय व्यवस्था का अभिन्न अंग है। 14 अप्रैल 1993 से क्रियान्वित 73वें व 74वें संविधान संशोधन के फलस्वरूप स्थानीय सरकार भारत की तीसरे स्तर की सरकार बन गई है। किसी भी देश की प्रगति के लिए आवश्यक है कि लोकतन्त्र की सबसे निचली अवस्था को सुदृढ़ बनाया जाए। हम प्रायः लोकतन्त्र की उपरी व्यवस्था के बारे में सोचते है। परन्तु अगर हम स्थानीय संस्थाओं को मजबूत करने का प्रयास करेगें तो निश्चित रूप से हम शहर के साथ-साथ राज्यों का भी विकास कर सकेगें। जिससे हमारा देश समुचित रूप से विकसीत राष्ट्रों की भाँति उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर हो सकेगा। स्थानीय संस्थाओं के विकास के लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है। चूकिं वित्त किसी भी प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है। अतः हम वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत आय व व्यय का उचित संतुलन करके अपने निगम को सभी समुचित संसाधनों से युक्त एवं समृद्ध बना सकते है।*

मुख्य शब्द– नगरीय प्रशासन, वित्त, अनुदान, अंशदान दक्षता

यदि सही दिशा मे नगर पालिक निगमो या स्थानीय स्वायत्त शासन का विकास किया जाए उनमें सही राजनैतिक आर्थिक सामाजिक संस्कारो का समावेश किया जाए नेतागण उनका सही दिशा मे सामाजीकरण कर उन्हे सही दिशा मे आगे बढ़ने की स्वतंत्रता प्रदान की जाए तो किसी भी नगरीय प्रशासन को राज्य सरकार के समक्ष भीख का कटोरा लेकर खड़ा होना नही पड़ेगा। आज किसी भी स्थानीय स्वशासन की सफलता उसके कुशल प्रशासन पर निर्भर करती है जिस हेतु शासन व्यवस्था मे व्याप्त नौकरशाही का विरोध करना होगा और शक्तिशाली स्थानीय शासन का विकास करके समाज को लोकतांत्रिक दृष्टिकोण तथा दक्षता का दृष्टीकोण के बीच फँस कर दोहरी नीति का शिकार रहा हैं। लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के सर्मथको का मानना है कि स्थानीय शासन पर्याप्त शक्तियों और साधनों में संम्पन्न हो तथा जनता अपनी इच्छानुसार उसका संचालन करें। वही दूसरी ओर दक्षता के समर्थको का विचार है कि स्थानीय शासन सरकार द्वारा स्थापित एक प्रशासनिक व्यवस्था है जिसके कुछ काम दक्षतापूर्वक करने हेतु सौंप दिये जाते है इस पर सरकारी नियंत्रण रखा जाना चाहिए। इस प्रकार इन दोहरे नीतियों से परे

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय, राजनांदगांव (छ.ग.)
** शोधार्थी, शासकीय विश्वनाथ यादव ता. महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

स्थानीय शासन को एक स्वतंत्र इकाई मानकर कुशलतापूर्वक कार्य करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता है।

प्रस्तावना– स्थानीय संस्थाएं राजनीति की तृणमूल संस्थाएं होती है। इन संस्थाओं को राजनीति की प्रथम पाठशाला भी कहा जाता है। यहीं से प्रशिक्षण प्राप्त कर व्यक्ति मह›वपूर्ण राजनैतिज्ञ पद पर सफलतापूर्वक कार्य कर सकता है। नगर निगम व्यक्ति के जीवन में पालने से लेकर श्मशान तक के कार्यो का सम्पादन करता है। यह अपने नागरिको को प्राथमिक शालाओं की सुविधा, स्वास्थ्य सुविधा, व्यापार, आवागमन, वाणिज्य, जलपूर्ति एवं स्वच्छता आदि महत्वपूर्ण बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराती है। केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा संचालित महत्वपूर्ण योजनाओं का सफल संचालन स्थानीय सरकार द्वारा ही सम्भव है। स्थानीय संस्थाएं अपने क्षेत्र के नागरिको को यथासम्भव सुविधाएं प्रदान करती है। इनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है

1. पर्यावरणीय सुविधाएं/सेवा, जिसके अन्तर्गत हमारे जीवन को सुरक्षित करना, हमारी सम्पत्ति की सुरक्षा, सड़कें, स्वास्थ्य, जल आदि का ध्यान रखना पर्यावणीय सुविधाएं/सेवा के अन्तर्गत आता है। तथा

2 व्यैयक्ति सेवा/सुविधा के अन्तर्गत बच्चों के लिए स्कूल, अस्पताल, सामाजिक कल्याण विभाग आदि को रखा जा सकता है।

स्थानीय स्वशासन केन्द्र व राज्य सरकार के कार्यो का क्रियान्वयन करता है। सभी प्रजातांत्रिक व लोक कल्याणी राज्यो में शासन के बहुत से कार्य होते है। जिनका कियान्वयन राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा संभव नही होता। इन्ही कार्यो के कुशलतापूर्वक संचालन हेतु स्थानीय स्वशासन की जिम्मेदारी व्यापक हो जाती है।

भारतवर्ष में संघीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। जहॉं संघ व राज्य सरकार के आय के साधन निश्चित किये गये है। इनके वित्तीय अधिकार भी अलग अलग है। इस प्रकार संघ व राज्य सरकार के भॉति ही राज्य व स्थानीय सरकार के बीच भी साधनों का बटॅवारा अलग अलग कर दिया गया है। दोनो ही निकाय स्वतंत्र रुप से अपने अपने क्षेत्रो मे स्वतंत्र रुप से आयो का संग्रह व व्यय का वितरण करते रहते है।

विंत्त को किसी भी प्रशासन का जीवन रक्त कहा जाता है इनके बिना प्रशासनिक निर्णयो का कार्यान्वित करना असंभव सा बन जाता है। स्थानीय स्वशासन के सभी कार्यो को सुचारु रुप से संचालन हेतु आवश्यक वित्त के स्त्रोतो को हम निम्न प्रकार से वर्गीकृत कर सकते है।

निगम की आय का स्रोत–

आय

करगत स्रोत	गैर करगत स्रोत
स्थानीय संस्थाओं द्वारा लगाए गए कर	राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान
राज्य करो से प्राप्त अंश	ऋण व उपदान
	अन्य गैर करगत साधन

स्थानीय संस्थाओं द्वारा लगाए गए करो को दो भाग प्रत्यक्ष कर तथा अप्रत्यक्ष कर में भी बाँटा जा सकता है। प्रत्यक्ष करो के अन्तर्गत सम्पत्ति कर, वृत्तियों या पेशो पर कर,मार्ग शुल्क, गाड़ियों पर कर, बाजार कर, जलकर, जानवरों के क्रय विक्रय पर कर आदि सम्मिलित है। अप्रत्यक्ष करो के अन्तर्गत चुंगी कर, सीमान्त कर, टर्मिनल आदि को सम्मिलित किया जाता है। निगम को कुल आय का 68 प्रतिशत भाग कर से ही प्राप्त होता है।

सम्पत्ति कर, जलकर, स्वच्छता उपकर, प्रकाश कर, अग्नि कर, और स्थानीय निकाय कर को अनिवार्य कर धारा 132 (1) न. नि. / 127 (1) न.पा. के अर्न्तगत सम्मिलित किया जाता है और व्यवसाय कर, सीमा कर, प्रदर्शन कर, विज्ञापन कर, पंजीयन शुल्क तथा बाजार फीस को ऐच्छिक कर या विवेकाधीन कर धारा 132(6) न. नि. / 127(6) न. पा. के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है।

शोध अध्ययन का उद्देश्य–

1. नगर पालिक निगम दुर्ग की आय-व्यय का अध्ययन करना।
2. गत वर्षो के आय-व्यय में हुए परिवर्तन की दर का पता लगाना।
3. नगर पालिक निगम दुर्ग को शासन द्वारा प्राप्त अनुदान एवं अंशदान का अध्ययन करना।

अनुसंधान प्रविधि– इस शोध अध्ययन में प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों प्रकार के समंकों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक संमकों का संकलन आय व्यय पत्रक नगर पालिक निगम दुर्ग, के द्वारा किया गया है तथा प्राथमिक संमकों का संकलन हेतु अवलोकन विधि तथा अनुसूची विधि का प्रयोग कर नगर निगम के अधिकारी व कर्मचारियो के सैम्पलिंग के आधार पर साक्षात्कार लिया गया है ताकि शोध अध्ययन को व्यवहारात्मक स्वरुप प्रदान कर सके। परन्तु फिर भी शोध अध्ययन का मूल उद्देश्य आय व्यय का अध्ययन करना है इसलिए द्वितीयक संमकों पर अधिक जोर दिया गया है जिससे कि संमकों के द्वारा शुध्द परिणाम प्राप्त किये जा सके।

शोध अध्ययन का क्षेत्र– शोध अध्ययन का क्षेत्र नगर पालिक निगम दुर्ग का सम्पूर्ण कार्य क्षेत्र है। जिला दुर्ग छत्तीसगढ़ राज्य के 27 जिलों में एक मह›वपूर्ण घनी आबादी वाला जिला है , इस जिले में 3 नगर निगम स्थित है। जबकि छत्तीसगढ़ के 27 जिलों में कुल 13 नगर निगम ही है। इस शहर का क्षेत्रफल 8701.80 वर्ग मीटर है, तथा यहाँ की कुल जनसंख्या 2,68,806 है। शहर का औसत साक्षरता दर 72 प्रतिशत है। लिंगानुपात की दृष्टि से भी यह शहर राज्य के अन्य शहरों से अच्छा ही रहा है, यहाँ प्रति हजार पुरूषों में 908 महिलाएं है। समुद्र तल से इस नगर की ऊंचाई 317 मीटर है। औद्योगिक दृष्टि से यह शहर काफी विकसित ही रहा है। भिलाई में स्थित भिलाई स्पात संयंत्र के कारण दुर्ग शहर में शुरू से ही उद्योग धंधों की दृष्टि से उपयुक्त वातावरण उपलब्ध रहा है। दुर्ग नगर पालिका से नगर निगम 1981 में बना। दुर्ग नगर पालिका से नगर निगम में रूपान्तरण अधिसूचना क्रमाकं 291- XVIII I- 81 (दिनांक 31/03/1981) असाधारण राजपत्र (दिनांक 01/04/1981) पृ.सं 468 मे प्रकाशित करके 02/04/1981 को किया गया। औघोगिक दृष्टि से भिलाई में स्थित स्टील प्लाण्ट के कारण दुर्ग शहर भी शुरु से ही विकसित ही रहा है। दुर्ग भिलाई को ट्वीन सिटी के नाम से जाना जाता

है और भिलाई मिनी इंड़िया के नाम से भी प्रसिध्द है। दुर्ग शहर में पीतल व कॉसे के आभूषण बनाए् जाते है। इस शहर के क्षेत्र में धान संग्रहण केन्द्र व वितरण केन्द्र के साथ साथ वन उत्पाद संग्रहण केन्द्र भी रहा है। 60 वार्ड वाले इस नगर में वार्ड क्रमांक 18 जवाहर नगर को औघोगिक क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। दुर्ग शहर उघोग धन्धे की दृष्टी से भी हमेशा उपयुक्त वातावरण रहा है।

परिकल्पनाएं–

1. आय की तुलना में व्ययों का वृद्धि अधिक दर पर रही है?
2. शासन द्वारा निगम को पर्याप्त अनुदान की राशि आबंटित नही की जा रही है?

तालिका क्रमांक 1

विगत 5 वर्षो के आय-व्यय का विवरण

वर्ष	कुल आय	कुल व्यय	कुल व्यय का आय पर प्रतिशत
2011-12	738961068	491127189	6646.18%
2012-13	992898347	5075566479	511.1869
2013-14	722592300	921637061	127.5459
2014-15	751425163	778203641	103.5637
2015-16	1044630741	874344911	83.69895

स्रोत- आय-व्यय पत्रक नगर पालिक निगम दुर्ग

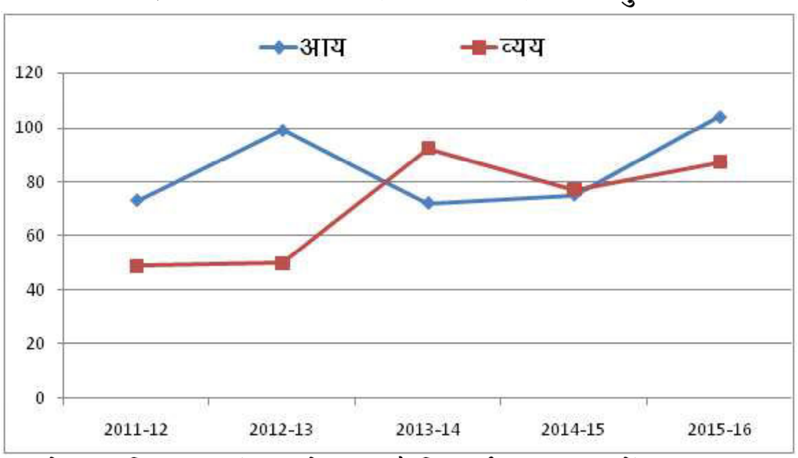

उपरोक्त तालिका क्रमांक 1 से स्पष्ट है कि वर्ष 2011-12 में कुल व्यय कुल आय का 6646.18 प्रतिशत रहा है इस वर्ष में सम्पत्ति कर बकाया 7792629 रु. तथा चल वर्ष का 18753165 रु. वसूल किये गये। वही वर्ष 2012-13 में यह 511.18 प्रतिशत हो गया इस वर्ष सम्पत्ति कर बकाया 6878775 रु. तथा चल वर्ष का 21576992 रु. प्राप्त किये गये। वर्ष 2013-14 में व्यय में 27.54 प्रतिशत की वृद्धि आय की तुलना में देखने को मिली। वर्ष 2014-15 में भी व्ययों में आयों की तुलना में 3.56 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 2015-16 में पुनः आयों की अधिकता के कारण व्यय का आय पर भाग 83. 69 प्रतिशत रहा इस वर्ष सम्पत्ति कर बकाया 9123764 रु. तथा चल वर्ष का 32880923 रु. वसूले गये।

इस प्रकार तालिका के अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्ष 2011-12 के आय की तुलना में व्यय बहुत ही ज्यादा रहा परन्तु वर्ष 2012-13 में आय में वृद्धि के फलस्वरुप व्यय में

भी वृद्धि देखने को मिली और वर्ष 2013-14 में व्यय का प्रतिशत आय की तुलना में 27.54 प्रतिशत रहा। इसी प्रकार से वर्ष 2014-15 में आय व्यय में बहुत अधिक देखने को मिला परन्तु वर्ष 2015-16 की आय की तुलना में व्यय उतनी मात्रा में नही हुए है।

नगर निगम के परिक्षेप्य में जहाँ आय लाभ का सूचक है वही व्यय विकास का प्रमाण भी है इस प्रकार से आय में वर्षोनुसार वृद्धि होना जहाँ निगम की संतोषप्रद स्थिति व कार्यव्यवस्था को प्रर्दशित करती है वही व्ययों में लगातार वृद्धि भी नगर के विकास की ओर अग्रसित कदम को दर्शाती है।

अनुदान और अंशदान (शासन से प्राप्त)-

विगत 5 वर्षो का अनुदान और अंशदान (शासन से प्राप्त)- इसके अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु शासन से राशि प्राप्त होती है। सांसद निधि, विधायक निधि 13वें व 14वें वित्त आयोग के अन्तर्गत प्राप्त राशि, राजीव शहरी निर्धन आवास योजना, फुटपाथ योजना, अटल आवास योजना, आपदा प्रबन्धन, भागीरथी नल जल योजना आदि योजनाओं और शंकर नाला सुदृढ़ीकरण ,ठोसअपशिष्ट निपटारा एवं कचरा प्रबन्धन हेतु तथा अनेको निर्माण हेतु राशियां इस शीर्षक के अन्तर्गत राज्य सरकार से प्राप्त होती है।

तालिका क्रमांक 2

विगत 5 वर्षो के अनुदान एवं अंशदान का विवरण

वर्ष	अनुदान एवं अंशदान	अनुदान व अंशदान का कुल आय पर प्रतिशत
2011-12	523227560	70.80
2012-13	438219800	44.135
2013-14	235445100	32.58
2014-15	374496000	49.83
2015-16	666536700	6380.60

स्रोत- आय-व्यय पत्रक नगर पालिक निगम दुर्ग

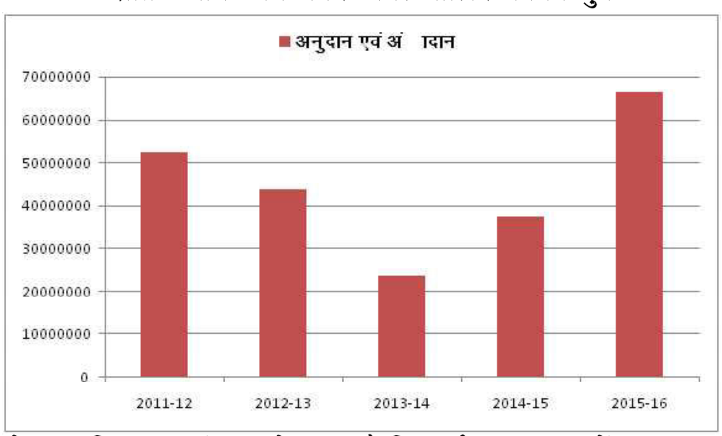

उपरोक्त तालिका क्रमांक 2 से स्पष्ट है कि वर्ष 2011-12 में अनुदान व अंशदान वर्ष 2011-12 की कुल आय का 70.80 प्रतिशत रहा है इस वर्ष सांसद निधि से 2999000 रु. तथा विधायक निधि से 4100000रु. के साथ साथ 13वें वित्त आयोग के अन्तर्गत 25900000 रु. प्राप्त हुए। वर्ष 2012-13 में अनुदान व अंशदान इस वर्ष की कुल आय का 44.135 प्रतिशत प्राप्त हुआ जो कि वर्ष 2011-12 की तुलना में 26.67

प्रतिशत कम रहा हैं हालॉकि इस वर्ष वित्त आयोग अन्य द्वारावर्षो की तुलना में ज्यादा राशि 35000000 रु. वितरित की गई। इसी प्रकार वर्ष 2013-14 में भी अंशदान कुल आय का मात्र 35.58 प्रतिशत ही रहा। वर्ष 2014-15 में बढ़कर इस वर्ष के कुल आय का 49.83 प्रतिशत हो गया इस वर्ष विधायक निधि के अन्तर्गत 18373000 रु. तथा सांसद निधि के अन्तर्गत 10214000 रु. और वित्त आयोगद्वारा16200000 रु. प्राप्त हुए। वर्ष 2015-16 में अनुदान की राशि में वृद्धि हुई और अपनी कुल आय का यह 63.80 प्रतिशत हो गयी।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अंशदान की राशि वर्ष 2011-12 में ही अपनी कुल आय का अधिकतम 70.80 प्रतिशत रही है वही यह प्रतिशत वर्ष 2012-13 व 2013-14 में घटकर क्रमशः 44.135 व 32.58 प्रतिशत हो जाता है और यही वजह है कि द्वाराहमें कुल आय में कमी देखने को मिलती है। अनुदान व अंशदान की राशि राज्य व केन्द्र सरकार विभिन्न योजनाओं के लिए मिलने वाली महत्वपूर्ण आय का स्त्रोत है इस राशि में कमी से वर्ष की कुल आय में कमी स्पष्ट रुप से देखने को मिलती है।

निष्कर्ष- नगर पालिक निगम दुर्ग के आय व्यय के अध्ययन से स्पष्ट है कि कुछ वर्षो में आय की तुलना में व्ययों में महत्वपूर्ण वृद्धि देखने को मिली है। व्ययों की आवश्यकता की पूर्ति उस वर्ष की प्राप्त आय से नही की जा सकती परन्तु वर्ष 2011-12 व वर्ष 2015-16 के वर्षो में आय की तुलना में व्यय कम हुए है अथार्त् इन वर्षो में निगम को पर्याप्त आय हुई है। अनुदान व अंशदान से प्राप्त आय जो कि कर व दर के बाद निगम की आय का महत्वपूर्ण स्त्रोत माना जाता है (क्योकि जिस भी महत्वपूर्ण योजना का कियान्वयन किया जाना है उसके लिए वित्त इसी शीर्षक से मिलता है) में कमी भी देखने को मिल रही है। अतः शोध अध्ययन से स्पष्ट है कि आय की तुलना में व्ययों में अधिक दर पर वृद्धि हो रही है और शासन द्वारा प्राप्त अनुदान की राशि में भी कमी व वृद्धि देखने को मिल रही है।

समस्याएं- दुर्ग नगरपालिक निगम के अध्ययन के दौरान कुछ समस्याए भी सामने आयी यह समस्या दुर्ग नगर के विकास में बाधक प्रतीत होती है।

1. नगर प्रशासन अनावश्यक राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त नही है।
2. जनता कर चुकाने में महत्वपूर्ण सहयोग नही कर पाते जिससे की कर वसूली एक समस्या बनी हुई है। कर वसूली के प्रति निगम कर्मचारी ईमानदार नही है अतः जनता का विश्वास निगम कर्मचारी के प्रति कम होने के कारण कर दायित्व के प्रति गंभीर नही है।
3. शासन द्वारा प्राप्त अनुदान का भी शत प्रतिशत उपयोग नही हो पाता। राजीव शहरी निंधन आवास योजना जैसी योजना के सफल क्रियान्वयन हेतु नगर में भूमि का अभाव देखने को मिला।
4. द्वितीयक संमकों के संकलन में भी निगम कर्मचारी के मन मे आशंका व भय का विषय भी देखने को मिला वे सीधे व सरल सवालों के जवाब भी घुमा फिरा के दे रहे थे।

सुझाव- नगर पालिक निगम दुर्ग के सन्दर्भ में कुछ सुझाव प्रस्तुत किये गये है जिनके द्वारा निगम प्रशासन की आय व व्यय एवं अतिरिक्त समस्याओ के समाधान में सहयोग

मिल सकेगा।

1. निगम प्रशासन को कर वसूली हेतु मजबूत तंत्र की स्थापना करने के साथ जनता को भी कर चुकानें हेतु प्रेरित करने का प्रयास करना चाहिए।
2. निगम कर्मचारी को अपने कार्य के प्रति ईमानदार व कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए जिससे जनता उन पर विश्वास कर सके।
3. निगम प्रशासन को अपनी आयों को बढ़ानें हेतु पुराने व बेकार पड़े सम्पत्तियों का सुधार कर उन्हे पुनः किरायें से देना चाहिए जैसे चौपाटी की दुकानें, महिला समृद्धि बाजार की दुकानें आदी।
4. निगम प्रशासन द्वारा ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि शासन द्वारा प्राप्त अनुदान की राशि का शत प्रतिशत उपयोग सम्बधित योजनान्तंर्गत हो सके।
5. निगम प्रशासन को चाहिए की वे समय समय पर लोगों की राय लेते रहें ताकि उन्हे जनता की भागीदारी भी मिलतें रहें जिससें उनका सहयोग शहर के विकास में भी मिलता रहें।
6. निगम प्रशासन अपने शहर कों स्वच्छ एवं सुंदर बनाने हेतु सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।
7. निगम प्रशसन को अनावश्यक राजनैतिक हस्तक्षेप से मुक्त अपनी योजनाओं का स्वतंत्र क्रियान्वयन करना चाहिए और अपने शहर को सर्वसुविधायुक्त राष्ट्रीय स्तर के शहर के रूप में विकसित करना चाहिए।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. आय व्यय पत्रक नगरपालिक निगम दुर्ग 2009-10 से 2017-18 तक।
2. श्री राम महेश्वरी, भारत में स्थानीय शासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. जिला सांख्यिकी पुस्तिका, जिला योजना एवं सांख्यिकी कार्यालय दुर्ग छ.ग. 1.3.2018
4. दुर्ग जिला स्थापना से शताब्दी समारोह (सन् 1906 से निरन्तर कदम 2006 तक)
5. डॉं हरिशचन्द्र शर्मा, भारत में स्थानीय प्रशासन, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, रिप्रिन्ट-2012
6. पठ़न साहित्य नगर निकायों के वित्तीय संसाधन और उनकी वृद्धि के उपाय, सितम्बर 2010, अखिल भारतीय स्थानीय शासन संस्थान
7. www.cg.govt.in
8. www.municipalcorporationdurg.in

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

नवीन कृषि तकनीकी एवं ग्रामीण मजदूर महिला : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

* दीपक कुमार

सारांश– *कृषि के व्यवसायीकरण, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण के कारण कृषि के स्वरूप में भारी परिवर्तन आया है। इसके अभिनव आयामों के फलस्वरूप कुछ देशों में कृषि ने उद्योग का रूप प्राप्त कर लिया। यद्यपि इसकी सीमायें उद्योग से सर्वथा भिन्न हैं। कृषि विकास को नवीन तकनीकी से सीमाबद्ध करने में ग्रामीण महिलाओं का बहुत बड़ा योगदान है। ग्रामीण मजदूर महिलायें जो कृषि के कार्यो से जुड़ी हुई हैं। उन्हें संकरण पद्धति, जैव तकनीकी, जैव विविधता का ज्ञान धीरे–धीरे कराया जा रहा है। जो कृषि विकास के लिए बहुत बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन है। ग्रामीण महिलायें जो शिक्षित नहीं है, परन्तु जागरुक है। हरित क्रान्ति, उन्नति बीजों का प्रयोग कृषि विपणन बीजों का सम्बर्धन एवं प्रबन्धन करना इन सबकी जानकारी रखती हैं, भारत में ग्रामीण मजदूर महिलायें धीरे–धीरे कृषि विकास एवं नई तकनीकी के बहुत से अभिनव आयाम से परिचित होती जा रही हैं, जिससे कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुई है और ग्रामीण महिलाओं को कृषि सम्बन्धी नये नीतियों एवं अवधारणाओं की जानकारी हुई। ऐकरमैन के अनुसार–ग्रामीण मजदूर महिलायें एक वैज्ञानिक की तरह सोच रखती हैं, भले ही उनके संसाधन एवं परिवेश निम्न कोटि का क्यों न हो परन्तु उनको कृषि को प्रभावित करने वाले कारक मौसम एवं जलवायु की भी विशेष ज्ञान रखती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की महिलायें भले ही वह मजदूरी करें, परन्तु उनके पास बहुत सी पुरानी एवं नई कृषि तकनीकी का समन्वय है। जिसके माध्यम से सभी प्रकार की कृषि सम्बन्धी नवीन नीतियाँ एवं सिंचाई के तरीके बहुत ही उपयोगी एवं सार्थक है जिनका उपयोग अधिक से अधिक कृषि प्रबन्धन एवं सम्बर्धन में अपनी अहम भूमिका निभाती हैं।*

मुख्य शब्द– कृषि कार्य, प्रबन्धन, वृत्ति, तकनीकी विकास, ग्रामीण महिलायें।

प्रस्तावना– प्राचीनकाल से ही कृषि समाज का मूल आर्थिक आधार रही है। कृषि को 'वार्त्ता' का एक अंग माना जाता था। इस सन्दर्भ में 'वृत्ति' से निष्पन्न 'वार्त्ता' शब्द व्यवसाय का बोधक था। प्रारम्भ में, जैसा कि अर्थशास्त्र से ज्ञात होता है, 'वार्त्ता' के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य की गणना की जाती थी। भागवतपुराण, देवीपुराण पर विष्णु, वायु एवं ब्रह्माण्ड पुराणों में वार्त्ता का सामान्य पौराणिक अर्थ कृषि मिलता

* शोधछात्र (समाजशास्त्र) माधव महाविद्यालय, ग्वालियर सम्बद्ध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

है, यद्यपि कुछ स्थलों पर जैसे विष्णु पुराण के एक स्थल पर 'वार्त्ता' के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य माने गये हैं। प्राचीन भारत में कृषि पर कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ सुविदित हैं। भारत का आर्थिक इतिहास लिखने वाले कुछ विद्वानों का मत था कि ऋग्वैदिक काल में ही कृषि का पूर्ण विकास हो गया था, परन्तु कुछ का कथन है कि कृषि सम्बन्धी अनेक शब्द ऋग्वेद के प्रथम तथा दशम मण्डल में है जो बाद की रचनाएँ हैं उनके अनुसार ऋग्वैदिक काल के प्रारम्भिक चरणों में आर्यों का मुख्य व्यवसाय पशुपालन था। इस काल के अन्तिम चरणों में कृषि पर बल दिया जाने लगा। ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के 57वें सूक्त को क्षेपक मानते हुए विभिन्न मंडलों में कृषि के विकास सम्बन्धी प्रसंगों पर विचार करते हुए कृषि के विकास का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

किन्तु कृषि व्यवस्था अत्यन्त व्यापक व्यवस्था है और किसी एक कृति में इसका सर्वांगीण विवेचन नहीं हुआ है। वास्तव में कृषि व्यवस्था में भूमि का स्वामित्व और भोग, पट्टेदारी, बटाई, रेहन, दान, विभाजन, भूमि के प्रकार, फसलें तथा उनका प्रकार एवं विकास, सिंचाई की व्यवस्थायें[1], खाद, बीज तथा अन्य हानियाँ, कृषि की तकनीकें, भू-राजस्व एवं अन्य कर तथा कृषि से सम्बन्धित सभी प्रकार के श्रम आदि सभी सम्मिलित हैं।

भारत की 'आत्मा और हृदय' गाँवों में बसते हैं। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से भारतीय गाँवों की स्थिति में आमूल परिवर्तन-रूपान्तरण दृष्टिगत होता है। यह रूपान्तरण अपने में कुछ गुणों और अवगुणों को लिए हुए हैं। इस तीव्र गति से परिवर्तन का मुख्य श्रेय आधुनिक तकनीक को जाता है। भारत में आधुनिक तकनीक विभिन्न विकास के क्षेत्रों जैसे-विज्ञान, उद्योग, कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भारतीय गाँवों के जीवन तंत्र में आधुनिक तकनीकी विकास का गहरा प्रभाव दृष्टिगत होता है।

कृषि भारतीय गाँवों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। आधुनिक तकनीक की सहायता से कृषि के तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया है। किसानों ने इनकी उपयोगिता को समझकर परम्परा से चले आ रहे यंत्रों को छोड़ नए कृषि यंत्रों और उत्पादन प्रणालियों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया है। ट्रैक्टर आदि आधुनिक यंत्रों के उपयोग से कृषि कला में सुधार आया है और उसे व्यापारिक स्तर प्राप्त हुआ है। इससे औसत भारतीय किसान के जीवन-स्तर में उन्नति हुई है। कृषि में यंत्रों के प्रवेश से किसानों के शारीरिक श्रम का भार कम हो गया है तथा अतिरिक्त आय प्राप्ति के लिए उसने कृषि से सम्बन्धित अन्य पेशों जैसे पशुपालन, मुर्गीपालन आदि की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना प्रारम्भ कर दिया है, विस्तृत कृषि, गहन कृषि, मिश्रित कृषि, स्थानान्तरित कृषि और 'हरित क्रान्ति' के कारण विश्व में भारतीय किसानों की छवि सम्माननीय बन गई है।

पहले, बीजों और फसल का रोपण, कटाई आदि के लिए भारतीय किसानों को भारी श्रम करना पड़ता था। वह पूर्णतः वर्षा पर निर्भर रहता था। आधुनिक तकनीकों की खोज के कारण कृत्रिम सिंचाई के कई साधन जैसे ट्यूबवैल, नहर, बांधों आदि से किसानों की दयनीय दशा में भारी सुधार आया है। उन्नत किस्म के बीज और खाद आध ुनिक तकनीक के अन्य अच्छे परिणाम हैं, इसी कारण आज भारत खाद्यान्न के क्षेत्र में

आत्मनिर्भर बन गया है। यहाँ तक कि अब वह अन्य देशों को खाद्यान्न का निर्यात भी करता है। इसलिए सरकार गरीब किसानों को इन्हें आसान दरों पर उपलब्ध कराने की ओर सराहनीय प्रयास कर रही है। कुछ दशक पहले तक गाँवों में बिजली की व्यवस्था नहीं थी। लेकिन आधुनिक आविष्कारों से कम खर्चीली विद्युत व्यवस्था से कई गाँवों में बिजली की सुविधा उपलब्ध कराई गई है। आज कुछ गाँवों में तो टेलीविजन संचार केन्द्रों की स्थापना भी हो गई है। गाँवों में संचार सेवाएं भी पहुँच गई हैं।

भारत की आधी आबादी महिलाओं की है और विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार अगर महिलाएं श्रम में योगदान दें तो भारत की विकास दर दहाई की संख्या में होगी। फिर भी यह दुर्भाग्य की बात है कि सिर्फ कुछ ही लोग महिला रोजगार के बारे में बात करते हैं जबकि अधिकतर लोगों को युवाओं के बेरोजगार होने की ज्यादा चिंता है।

कृषि में महिलाओं का योगदान काफी अहम है। कृषि क्षेत्र में कुल श्रम की 60 से 80 फीसदी तक हिस्सेदारी महिलाओं की होती है। महिलाओं की कृषि में यह सहभागिता क्षेत्र विशेष की खेती पर निर्भर करती है फिर भी उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। कृषि कार्यों के साथ ही महिलाएं मछली पालन, कृषि वानिकी और पशुपालन में भी योगदान दे रही हैं। महिलाओं को कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिए यदि उन्हें उचित मौके दिए जाएं और जरूरी तकनीक उपलब्ध कराई जाए तो उनकी हिस्सेदारी को और अधिक लाभ के रूप में परिणित किया जा सकता है। कृषि में पुरुषों के साथ महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाकर सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को काफी हद तक बदला जा सकता है। इससे महिलाओं के सशक्तिकरण को और अधिक बढ़ावा भी मिल सकता है। मनरेगा ने ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण को और अधिक बढ़ावा भी मिल सकता है। मनरेगा ने ग्रामीण महिलाओं को मजदूरी और घरेलू आय को बढ़ाने का काम किया है, परिणामस्वरूप महिलाओं के काम करने की जरूरत कम होती गयी है। गांवों में भारतीय महिलाएं अक्सर घर पर ही रहती हैं ताकि परिवार की समाज में इज्जत बनी रहे।

पशु उत्पादन और प्रबंधन के क्षेत्र में महिलाएं प्रमुख योगदान दे रही हैं। गाय और भैसों के पालन में महिलाएं रोजाना तीन से छः घंटे तक श्रम करती हैं। इसमें दुधारू पशुओं को चारा खिलाना, दूध निकालना और पशु आवास-पशु की साफ-सफाई का कार्य शामिल है। चारा एकत्रित करने में भी महिलाएं काफी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। पशु उत्पादन और प्रबंधन के लिए जरूरी तकनीकी ज्ञान, कौशल और पशुपालन हेतु वित्तीय व्यवस्था जैसे बिन्दु महिलाओं से जुड़े हैं।

नेशनल सैंपल सर्वे (68वां राउंड)[2] के अनुसार 2011-12 में महिला श्रमिक सहभागिता दर 25.51 प्रतिशत थी जो कि ग्रामीण क्षेत्र में 24.8 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र में मात्र 14.7 प्रतिशत थी। विश्व बैंक के ताजा आंकड़ों के मुताबिक सन् 2016 में महिला श्रमिक सहभागिता दर 27 प्रतिशत थी। लेकिन फिर भी इस बात को लेकर किसी को चिंता नहीं है कि उभरते श्रम बाजार में महिलाओं की भागीदारी बेहद कम है।

गांवों में, कृषि और गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार की कमी के कारण भारत में 'ग्रामीण महिला श्रमिक सहभागिता दर' में कमी आयी है, इस कारण कृषि क्षेत्र की

उत्पादकता कम हुई है और मशीनीकरण का चलन बढ़ा है।

भारत की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है (लगभग 60 करोड़) और विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार अगर महिलाएं श्रम में योगदान दें तो भारत की विकास दर दहाई की संख्या में होगी। इससे गरीबी को भी तेजी से कम किया जा सकता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आधुनिक कृषि तकनीकी ने ग्रामीण महिलाओं को कृषि के साथ-साथ लघु क्षेत्र में एक आयाम देने का प्रयास कर रही है जिससे महिलाओं में आत्मविश्वास के साथ-साथ गरीबी को भी दूर करने में अपनी भूमिका अदा कर सकती है।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. राजन के. : भारतीय कृषि भविष्य की चुनौतियाँ, योजना, भवन नई दिल्ली, अगस्त 15, 1993
2. मिश्र, डा0 जय प्रकाश : (2005) कृषि अर्थव्यवस्था, साहित्य भवन, आगरा।
3. मिश्र, डॉ0 बी0एल0, (1990) कृषि औद्योगिक भूगोल, साहित्य भवन, आगरा।
4. मेहता, डा0 वल्लभदास, (1989) कृषि अर्थशास्त्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. श्रीवास्तव, डी0एस0, कृषि के परिवर्तन प्रतिरूपों का भौगोलिक अध्ययन, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली
6. श्रीवास्तव, दयाशंकर : कृषि के परिवर्तनशील स्वरूपों का अध्ययन, क्लासिकल कम्पनी, नई दिल्ली
7. उत्तर प्रदेश की आर्थिक समीक्षा वर्ष 2011
8. उत्तर प्रदेश सांख्यिकीय डायरी वर्ष 2011 (अर्थ एंव संख्या प्रभाग राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश)
9. उत्तर प्रदेश कृषि आँकड़ों का बुलेटिन 2001-2011, संयुक्त कृषि निदेशक (सांख्यकीय) कृषि निदेशालय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
10. कृषि, टुडे पत्रिका।
11. कुरूक्षेत्र पत्रिका।
12. www.google.com

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

हरिशंकर परसाई की कहानियों में व्यंग्य का विविध संदर्भ

* राजेश चन्द्र पाण्डेय

सारांश– *परसाई जी की कहानियों में व्यंग्य के कई स्वरूप दिखाई पड़ते हैं। परसाई अपनी कहानियों में विविध शैलियों के कारण व्यंग्य को अधिक धारदार बनाते हैं। सामाजिक से लेकर राजनैतिक तथा अन्य संदर्भों का विधिवत् समावेश उनकी कहानियों में है।*

मुख्य शब्द– कहानी संग्रह, सदाचार का ताबीज, एक मध्यवर्गीय कुत्ता, गरीबी और अभावग्रस्त जीवन।

कहानियों में सामाजिक संदर्भ–

सामाजिक संदर्भों से जुड़ी प्रतिनिधि कहानियों का विवरण इस प्रकार है-एक लड़की पाँच दीवाने; सदाचार का ताबीज; वैष्णव की फिसलन; भोलाराम का जीव; बारात की वापसी; एक मध्यवर्गीय कुत्ता तथा रामदास। (ये सभी कहानियाँ परसाई रचनावली-1 में संकलित हैं)

इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर; एक वैष्णव कथा; एक फिल्म कथा; पैसे का खेल; भीतर का घाव; घेरे के भीतर, तथा पहला पापी। (ये सभी कहानियाँ परसाई रचनावली-2 में संकलित हैं)

लक्ष्मी की विजय और कल्लू के जन्म का मरसिया, परसाई रचनावली-6 में संकलित है।

प्रेम (अपने मूल या व्यापक अर्थ में नहीं) करना आज के युग में एक फैशन, एक रोग हो गया है। प्रेम करना एक एडवेंचर माना जा रहा है। कुछ शब्दों के अर्थ में विस्तार हो गया है। जैसे किसी लड़की पर 'मरना' या किसी लड़की को 'फँसाना'। आधुनिक होने का नवयुवकों में एक यह अर्थ भी प्रचलित है। यह ओछी प्रवृत्ति, रुग्ण मानसिकता, खासतौर पर ऐसे समाज में जिसका आदर्श वाक्य है- नारी पूजा, निंद्य है। 'एक लड़की: पाँच दीवाने'[1] कहानी में व्यंग्य का लक्ष्य उपर्युक्त प्रवृत्ति है।

'सदाचार का ताबीज'[2] 'भोलाराम का जीव'[3] और 'एक वैष्णव कथा'[4] शीर्षक कहानियाँ सरकारी कार्यालयों में व्याप्त निरंकुश भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करती हैं।

भ्रष्टाचार समाज की नस-नस में सूक्ष्म रूप से घुस गया है और हम लोग इसके इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि अब आम आदमी को यह चुभता नहीं है। 'सदाचार का ताबीज' का यही प्रतिपाद्य है। कहानी बतकही जैसी है।

'भोलाराम का जीव' परसाई की महत्वपूर्ण और लोकप्रिय कहानियों में से एक है।

* एसोशिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी, हिन्दी विभाग, दयानन्द वैदिक कॉलेज, उरई (जालौन)

व्यंग्य का लक्ष्य इस कहानी में भी सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार है। इस कहानी की लोकप्रियता का एक कारण इसका अंदाजे-बयाँ है, दूसरा कारण है संवादों की सजीवता और सहजता। कथा-विन्यास भी मार्मिक। मरने के पांच दिन बाद भी भोलाराम का जीव जब भगवान के दरबार में हाजिर नहीं होता है, तब भगवान और उनके दूत हैरत में पड़ जाते हैं। भगवान की सहायता के लिए नारद जी निकल पड़ते हैं और उन्हें पता चलता है कि भोलाराम का जीव पेंशन की फाइलों में दबा पड़ा है। पाँच साल पहले भोलाराम रिटायर हुआ था लेकिन उसकी पेंशन की फाइल आगे नहीं बढ़ी इसलिए कि उस पर 'वजन' नहीं रखा गया था। 'वजन' अर्थात् रिश्वत और आज की तथाकथित सभ्य भाषा में सुविधा शुल्क। कहानी में 'ह्यूमर' और 'विट' का उत्कर्ष इस बिन्दु पर महसूस किया जा सकता है- 'साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा, मगर वजन चाहिए। आप समझे नहीं। जैसे आप की यह सुन्दर वीणा है, इसका भी वजन भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा सकता है। मेरी लड़की गाना-बजाना सीखती है। यह मैं उसे दे दूँगा। साधु-संतों की वीणा से तो और अच्छे स्वर निकलते हैं।''[5] नारद के आग्रह पर भी भोलाराम का जीव स्वर्ग नहीं जाता और अपनी दरख्वास्तों में अटका रहता है।

गजेन्द्र मोक्ष को आधार मानकर परसाई ने वैष्णवों के हितार्थ 'एक वैष्णव कथा' लिखी है। भ्रष्टाचार सर्वग्राही है-भक्ति और भगवान को वह खा गया है। गबन करो, सरकारी फाइलों में आग लगा दो, सबूत मिट जाए ताकि केस न चले, जेल न जाना पड़े- वैष्णव की भक्ति का आज यही लक्ष्य हो गया है।

'वैष्णव की फिसलन'[6] में व्यंग्य शीर्षक द्वारा ही व्यंजित है। धर्म का किस सीमा तक अवमूल्यन हो सकता है, यही इस कहानी में व्यंग्य का केन्द्र बिन्दु है। धर्म को धन्धे से जोड़ दिया गया है।

आज का युग धन-प्रधान युग है। धन ने भक्ति को दबा दिया है। चारों ओर 'लक्ष्मी की विजय' पताका फहरा रही है। यही इस कहानी की मुख्य संवेदना है।[7]

'एक मध्यवर्गीय कुत्ता'[8] नामक कहानी में कुत्तों के क्रिया-व्यापारों के माध्यम से यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि सर्वहारा के दुःख-दर्द में शरीक होकर, उनके साथ मिलकर रहने में ही भलाई है। वर्ग गत अहंकार में सुख नहीं है, है भी तो वह टिकाऊ नहीं होगा। रामदास (इसी शीर्षक की कहानी) एक प्रतिनिधि चरित्र है, जो कहीं भी, किसी भी परिस्थिति से समझौता कर लेता है, मन में कहीं कोई प्रतिक्रिया नहीं-पूरी तरह पैसिक। लेखक के शब्दों में- ''ईमानदारी इसका गुण न होकर असमर्थता है, बेईमानी के लिए आवश्यक चतुरता उसमें है ही नहीं। रामदास और उसके स्त्री-बच्चों के बीच जैसे गरीबी की नदी बह रही है और वे मिल नहीं सकते। स्त्री-बच्चों का इतने दिनों का विछोह क्या होता है, वह स्वभाव से नहीं जानता।''[9] समाज में ऐसे लोग भी हैं जो जीवन भर कड़ी मेहनत के बाद एक छोटी-सी इच्छा पूरी नहीं कर पाते।

गरीबी और अभावग्रस्त जीवन का चित्रण करने वाली 'कल के जन्म का मरसिया' शीर्षक कहानी बहुत मार्मिक बन पड़ी है और प्रेमचंद की कहानी 'कफन' की याद दिलाती है। गरीबी की मार झेलता हुआ तीन बेटियों का बाप चाहता तो है कि चौथी संतान बेटा हो लेकिन अपनी गरीबी से सहम जाता है और भगवान से प्रार्थना करता है कि चौथी संतान जन्म लेते ही मर जाय, लेकिन होता इसका ठीक उलटा है। पत्नी मर जाती है, बेटा

बच जाता है। लेखक की टिप्पणी बड़ी मार्मिक है-

''लड़के ने पहला शब्द किया जिसमें नवीन जीवन की प्राप्ति की हिलोर नहीं थी, मौत की पहली हिचकी थी, जो आँख खोलते ही प्रारम्भ हो गयी। जिस स्तर से जीवन की पहिली धार वह चूसने वाला था, वही खून सूख गया। अभागे ने आँखें खोलते ही अपनी माता को निगल लिया। उसके भाग्य पर दुर्भाग्य की रेखा ऐसी साफ उछली थी। ग्ग उसको जीवन दिया जाने लगा, जिसका व्यर्थ जीवन इस मायने में कि वह मृत्यु को रोज टालते जाने का प्रयास मात्र।''[10]

कहानी का निष्कर्ष भी बहुत मार्मिक और सांकेतिक है- ''और यही है वह मरसिया उस लड़के के जन्म का, जो आगे चलकर कल कहलाया और दस साल की अवस्था से एक कारखाने में लोहा काटने का काम करने लगा। और यही मरसिया सहज ही उस लड़के के जन्म का मंगलगीत है जो पिछली रात को हुआ था और अब उस कारखाने का मालिक है।''[11] और यही है अपना-अपना भाग्य।

पुलिस प्रशासन में भ्रष्टाचार भी परसाई की पैनी निगाह से बच नहीं पाया है। 'इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर' शीर्षक कहानी पुलिसिया भ्रष्टाचार का दस्तावेज है। इंस्पेक्टर मातादीन भारत सरकार की सांस्कृतिक आदान-प्रदान की योजना के अन्तर्गत चन्द्रलोक भेजे जाते हैं, वहाँ की पुलिस को प्रशिक्षित करने के लिए। (भारतीय वैज्ञानिकों ने नवम्बर 2008 में चाँद पर तिरंगा झंडा फहराया और इसके लगभग 30-40 साल पहले ही परसाई की कल्पना ने इंस्पेक्टर मातादीन को चाँद पर भेज दिया था। यह अद्‌भुत संयोग है) मातादीन चन्द्रलोक की पुलिस को भ्रष्टाचार के सारे हथकंडे सिखा देते हैं। हारकर चन्द्रलोक की सरकार भारत सरकार को सूचित करती है-

''मातादीन जी ने हमारी आधी संस्कृति नष्ट कर दी है। अगर वे यहाँ रहे तो पूरी संस्कृति नष्ट कर देंगे। उन्हें फौरन रामराज में बुला लिया जाय।''12 मातादीन व्यक्ति होते हुए भी एक पूरी संस्था हैं और भ्रष्टाचार के प्रतीक हैं। व्यंग्य का एक केन्द्र रामराज है। मातादीन से ठीक विपरीत व्यक्तित्व वाला दूसरा पुलिस इंसपेक्टर रामसिंह है, जिसकी विभाग में, जनता में पूछ इसलिए नहीं है कि वइ ईमानदार छवि का अधिकारी है। सफल पुलिस अधिकारी बनने के लिए उसे भ्रष्टाचार की ट्रेनिंग लेनी जरूरी है। 'राम सिंह की ट्रेनिंग'[13] कहानी का यही प्रतिपाद्य है।

सामाजिक संदर्भों से जुड़ी कुछ अन्य कहानियों का संक्षिप्त विवरण-

बारात की वापसी[14]- मध्य प्रदेश की खस्ता हाल सड़कों तथा बस-सेवा पर व्यंग्य।

एक फिल्म कथा[15]- फिल्मी अंदाज की कहानी।

पैसे का खेल[16]- समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता का चित्रण।

भीतर का घाव[17]- दहेज-विवाह पर व्यंग्य।

घेरे के भीतर[18]- मध्यवर्गीय परिवार में पति-पत्नी के बीच कलह-कोलाहल, अविश्वास का चित्रण।

पहला पापी[19]- दूसरे के श्रम-फल पर अधिकार जमाना तथा उसका उपभोग करने की प्रवृत्ति सबसे बड़ा पाप है।

लघु कथाएँ- उनमें व्यंग्य के विषय :

अयोध्या में खाता-बही[20]- व्यापारी वर्ग का भ्रष्टाचार।

स्वर्ग में नर्क[21]- मिलावट पर व्यंग्य।

ईडन के सेब[22]- विज्ञापनी संस्कृति पर व्यंग्य।

नहुष का निष्कासन[23]- नहुष के मिथक की नयी व्याख्या, मुहल्ले में किरायेदारों के बीच झगड़ा।

खेती[24]- सरकार के प्रवक्ता का बयान- 'अन्न की पैदावार के लिए अब किसान की जरूरत नहीं है। हम दस लाख एकड़ कागज पर अन्न पैदा कर रहे हैं।'

खून[25]- सरकारी अस्पताल का खंभा भी पैसा मांगता है।

पद-पूजन[26]- नेताओं की असंगत और अनावश्यक प्रशंसा पर व्यंग्य।

डायरी और संवाद शैली में लिखी गयी कहानियाँ -

पिछले प्रकरण में विषय-वस्तु के साथ-साथ परसाई की कहानी-कला पर यथा प्रसंग प्रकाश डाला गया है। कहानी का ताना-बाना बुनने के लिए परसाई कभी मिथकों का सहारा लेते हैं और मिथक या मिथकीय पात्रों के व्यक्तित्व में कुछ इस तरह रंग भर देते हैं कि ये पात्र पुराने होते हुए बिल्कुल आज के माहौल के अनुरूप लगते हैं और नये होकर भी पुराने संस्कारों से नाता नहीं तोड़ते हैं। कभी-कभी वे स्वप्न का सहारा लेते हैं और कहानी चेतन, अर्द्ध-चेतन दोनों स्तरों पर चलती है (जैसे रच0 एक में संकलित 'अकाल उत्सव' शीर्षक कहानी)। कुल मिलाकर इन कहानियों में परसाई की रचनात्मकता या रचना क्षमता (क्रीएटिविटी) का पुष्ट प्रमाण सुरक्षित है, जिसका मुख्य कारण है उनकी अनुभव सम्पन्नता और जीवन के प्रति रागात्मकता।

प्रसंगात् उल्लेख्य है कि परसाई ने कहानी-कला पर भी व्यंग्य किया है। प्रायः यह समझा जाता है कि कहानी का शीर्षक, नायक, नायिका के नाम यदि भड़काऊ हों, नाम से आधुनिकता टपकती हो तो कहानी सफल और आकर्षक मानी जाएगी। कहानी में वस्तु और संप्रेषणीयता पर जो कहानी-कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, ध्यान नहीं दिया जाता है। कहानी की इसी शैली पर परसाई चोट करते हैं। मसलन 'एक जोरदार लड़के की कहानी'[27] का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें कहानी की रचना-प्रक्रिया, कहानी का पैटर्न, ट्वेंटीज, थर्टीज, सिक्सटीज, फार्टीज' आदि के नायक नायिकाओं और उनकी चाल-ढाल, बात-चीत की शैली को उजागर किया गया है और प्रकारांतर से प्रतिपादित किया गया है। कहानी को 'क्लाइमेक्स' पर पहुँचा कर, फिर एक झटके में सामान्य धरातल पर ले आना और यह परिवर्तन इस तरह घटित कर देना कि संवदेना को कोई क्षति न पहुँचे और पता न चले कि परिवर्तन किस तरह घटित हो गया, कहानी कला की बारीकी है। कहने की जरूरत नहीं कि परसाई इस कला में माहिर हैं। प्रमाण स्वरूप संदर्भित कहानी का अंत देखा जा सकता है।

डायरी शैली-

डायरी शैली की कहानियों में 'निठल्ले की डायरी' प्रमुख है। इनमें 'निठल्ले के अनुभव जैसे के तैसे' प्रकाशित किए गए हैं। 'निठल्ले की डायरी' के कुल 6 खण्ड प्रकाशित हैं जिनमें पहला खण्ड है- 'निठल्लेपन का दर्शन'। इस खण्ड में सरकारी विभागों में काम-काज की धीमी गति पर व्यंग्य किया गया है। एक वाक्य उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है-''जिसकी टेबिल पर फाइलों का जितना बड़ा ढेर होगा, वह उतना ही दीर्घायु होगा और उतना ही बड़ा देश सेवक होगा।''[28]

दूसरा खण्ड है- 'शिवशंकर का केस'। इस खण्ड में व्यंग्य में 'ह्यूमर का टच' अधिक है। सरकारी कार्यालयों की कार्य शैली पर इस खण्ड में भी व्यंग्य किया गया है। एक उदाहरण ध्यातव्य है- साहब महोदय अपने ही बगीचे के फूल तोड़कर सूँघने से घबराते हैं। ''ऐसा लगता है, जैसे पौधे से घूस ले रहे हैं।''[29]

डायरी के तीसरे खण्ड- 'रामभरोसे का इलाज' में सरकारी अस्पतालों पर व्यंग्य है। डाक्टरों और कर्मचारियों की आपसी दलबन्दी का परिणाम यह होता है कि रोगियों की उपेक्षा होती है। कार्य शैली का नमूना देखिए- ''डाक्टर ने समझाया- खोमचे वाले का इलाज तो खोमचे वाले सरीखा ही होगा, कोई मिनिस्टर या रईस तो है नहीं।''[30]

डायरी का चौथा खण्ड है- 'युग की पीड़ा का सामना'। इस खण्ड में सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार और तथाकथित साहित्यकारों की आधुनिकता की बखिया उधेड़ी गयी है।

डायरी का पाँचवां खण्ड 'राष्ट्र का नया बोध' है, जिसमें कालाबाजारी, मुनाफाखोरी, शासन की कार्य-प्रणाली की कलई खोली गयी है। पुलिस द्वारा चलाए जाने वाले शिष्टाचार-सप्ताह की एक झलक इस प्रकार है-''एक आदमी सड़क के बीच से चलने लगा। पुलिस वाला चिल्लाया-जरा किनारे से चल, साले श्रीमान् जी। पूरी सड़क श्रीमान् जी के बाप की नहीं है।''[31]

निठल्ले की डायरी का छठाँ और अन्तिम खण्ड है- 'प्रेमी के साथ एक सफर'। परसाई की पैनी निगाह का प्रमाण है यह उद्धरण- ''हाय-हाय, इस देश में लड़की के दिल में जाना हो, तो माँ-बाप के दिल की राह से जाना होता है।ग्ग बुजुर्ग का खास 'प्रिविलेज' (विशेष हक) है कि किसी भी औरत को घूर सकता है और कोई बुरा नहीं मानता।''

रचनावली खण्ड-1 में संकलित डायरी शैली की अन्य प्रमुख कहानियाँ इस प्रकार हैं- 1. वाक् आउट, स्लीप आउट, ईट आउट, 2. सुदामा के चावल, 3. एक और जन्म दिन, 4. अकाल-उत्सव, 5. वे सुख से नहीं रहे, और 6. दस दिन का अनशन।

कहानी की संरचना की दृष्टि से 'अकाल-उत्सव' बेजोड़ है। कहानी का एक हिस्सा चेतन अवस्था में है, और बाकी कहानी सपने में चलती है। कहानी में सपने का अंश बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है। राज्य में अकाल पड़ा है, जनता भुखमरी का शिकार हो रही है, जमाखोर, मुनाफाखोर, चोर बाजारिये अकाल-उत्सव मनाते हैं, मंत्री जी लच्छेदार भाषण देते हैं। इसके बाद सपने का सिलसिला शुरू होता है- भूखी जनता उत्सव मनाती है- मंत्रियों, विधायकों, जमाखोरों आदि को पकड़कर भून-भून कर खाती है, फिर भी भूख शांत नहीं होती। आखिरकार विधान सभा, और संसद भवन की ईंटें उखाड़कर खाने लगती है। लेखक का सपना यहीं टूटता है और उसे 'रामचरित मानस' में मिजटा के सपने की याद आती है-

'यह सपना मैं कहौं विचारी,
हो इहि सत्य गये दिन चारी।'
कहानी का संकेत बहुत साफ है।[32]

प्रजातांत्रिक संस्थाएँ ही प्रजातंत्र और प्रजातांत्रिक मूल्यों का मजाक उड़ाती हैं। हमारे विधायक, सांसद 'वाक आउट, स्लीप आउट और ईट आउट' में विश्वास रखते हैं।[33] जनता के ये प्रतिनिधि जन-हित से कोसों दूर हैं। 'एक और जन्म दिन'[34] तथा 'दस दिन

का अनशन'[35] आधुनिक राजनेताओं की आचरण प्रणाली तथा कार्यशैली पर व्यंग्य है। 'वे सुख से नहीं रहे'[36] शीर्षक कहानी किसी परी-कथा जैसी है और प्रेमी-प्रेमिकाओं पर व्यंग्य है।

कृष्ण और सुदामा की मैत्री की पौराणिक कथा को इस कहानी में एक नया कलेवर दिया गया है। यह कहानी 'सुदामा के चावल'[37] परसाई की रचनाशीलता और किस्सा गोई का पुष्ट प्रमाण है। कहानी, सुदामा के संस्मरण के हवाले से शासन तंत्र की बखिया उधाड़ती है। सुदामा कृष्ण के राज्य का एक ऐसा रहस्य जानते थे, जिससे कृष्ण का शासन कलंकित हो सकता था। सुदामा ने 'एक लाख स्वर्ण मुद्रा, एक ग्राम और एक भवन' (रहस्य छिपाये रखने की कीमत) के बदले अपना ईमान बेंच दिया और उनके चावल कर्मचारियों की 'खुरचन' हो गए।

संवाद शैली की कहानियों में 'बैताल की छब्बीसवीं कथा', 'बैताल की सत्ताईसवीं कथा' तथा 'बैताल की अठ्ठाईसवीं कथा' उल्लेख्य हैं। बैताल और विक्रम के संवाद के माध्यम से इनमें क्रमशः शिक्षकों, नेताओं और अधिकारियों पर व्यंग्य किया गया है।38

इस प्रकरण के अंत में पुनः यह उल्लेख कर देना संगत है कि परसाई के व्यंग्य का प्रवाह विधाओं की परंपरित सीमा की चिन्ता नहीं करता। यही कारण है कि यहाँ यह दिखाना प्रबंध-लेखक का अभीष्ट है कि कहानी और रेखाचित्र किस तरह घुले-मिले हैं। उदाहरण स्वरूप, पहले 'मनीषी जी' कहानी में मनीषी जी का यह चित्र उल्लेखनीय है-''घुटनों तक खादी की धोती, खादी की मिरजई, पाँव में फटी चप्पलें, ऐसी कि पावों की रक्षा कम करें, इज्जत की ज्यादा, आँखों पर चश्मा, काले धागे से जेब में लटकी घड़ी, बाएँ हाथ में छड़ी, कंधों पर खद्दर वसना कांग्रेसी भक्तिन की साड़ी की तरह बेलबूटेदार किनारी का चद्दर। चौड़ा चेहरा, जिस पर पहाड़ी झरने-सी निर्मल हँसी तथा बड़प्पन और सद्भावना की झलक।''[39]

और अब आचार्य जी का एक चित्र- कहानी का शीर्षक है- 'आचार्य जी, एक्सटेंशन और बागीचा'-'उनके स्नेह के अनुपात से मैं उनके स्वार्थ का अनुमान समझने लगा। तीस सेकण्ड गले लगाकर वे मेरी 4-6 किताबें ले गए। एक मिनट आलिंगन करके उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वी के खिलाफ मुझसे अखबार में लिखवा लिया। डेढ़ मिनट के आलिंगन में उन्होंने मुझसे अपने बारे में लेख लिखवा लिया। दो मिनट मुझे हृदय से लगाया और मुझ से 3-4 सौ कापियाँ जँचवा लीं।[40]

'आशंका-पुत्र' कहानी में पाण्डे का यह चित्र उल्लेखनीय है-''पाण्डे कभी -कभी विनय का अतिरेक कर देता है। कितना झुकता है। वह आबकारी महकमे में किसी पद पर है। यहाँ के निवासियों में 'ठीक फिट' नहीं होता, थोड़ा ऊँचे स्तर का है। पत्नी है, चार बच्चे खूब बढ़िया कपड़े पहिनते हैं और स्त्री जब बाहर निकलती है, तब स्त्री कम मालूम होती है, चलता-फिरता सराफा बाजार अधिक।''[41]

अंततः केवल इतना कि परसाई जी विविध शैलियों के माध्यम से न केवल कहानी की विधा को गौरवान्वित करते हैं अपितु समाज के बहुत गहरे सत्य को भी सुगमता के समाज में सामने रख देते हैं।

=====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1 . वही-1, पृ0 69
2 . वही-1, पृ0 97
3 . वही-1, पृ0 168
4 . वही-2, पृ0 142
5 . वही-1, पृ0 172
6 . वही-1, पृ0 165
7 . वही-6, पृ0 293
8 . वही-1, पृ0 25
9 . वही-1, पृ0 39
10 . वही-6, पृ0 317
11 . वही-6, पृ0 318
12 . वही-2, पृ0 142
13 . वही-2, पृ0 183
14 . वही-1, पृ0 426
15 . वही-2, पृ0 149
16 . वही-2, पृ0 195
17 . वही-2, पृ0 207
18 . वही-2, पृ0 246
19 . वही-2, पृ0 252
20 . वही-2, पृ0 319
21 . वही-2, पृ0 326
22 . वही-2, पृ0 329
23 . वही-2, पृ0 331
24 . वही-2, पृ0 335
25 . वही-2, पृ0 349
26 . वही-2, पृ0 382
27 . रचनावली-1, पृ0 213
28 . वही-1, पृ0 222
29 . वही-1, पृ0 226
30 . वही-1, पृ0 233
31 . वही-1, पृ0 240
32 . वही-1, पृ0 319
33 . वही-1, पृ0 258
34 . वही-1, पृ0 270
35 . वही-1, पृ0 376
36 . वही-1, पृ0 319
37 . वही-1, पृ0 263
38 . वही-1, पृ0 337-338
39 . वही-1, पृ0 31
40 . वही-1, पृ0 49
41. वही-2, पृ0 167

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

हिन्दी उपन्यास एवं सिनेमा में अंतर्सम्बन्ध

* आंचल श्रीवास्तव
** विजेन्द्र कुमार साहू

सारांश– *हिंदी सिनेमा ने सदैव समाज को नई दिशा प्रदान की है। भारत में ऐसी कितनी ही फिल्में हैं जो हिंदी साहित्य पर बनाई गई हैं और दर्शकों ने उन्हें काफी सराहा भी है। हिन्दी उपन्यास पर बनी फिल्में सबसे अधिक दर्शकों के मन को भाया है। क्योंकि यह उपन्यास इतने रोचक ढ़ंग से लिखे गये थे कि पाठकों के हृदय को झकझोर कर रख दिया। यदि इस प्रकार के उपन्यास पर कोई फिल्मांकन करते है और उस फिल्म का अभिनय उतना ही अच्छा होता है तो यह उपन्यास एवं सिनेमा जगत की बहुत बड़ी उपलब्धि होती है। सिनेमा हिंदी साहित्य एवं उपन्यास से कभी भी अनभिज्ञ नहीं रह पाया है। हिंदी सिनेमा केवल मनोरंजन का पात्र नहीं बना किंतु उसने ऐसी कई भावनाओं को जन्म दिया जिसने एक नए भारत का भविष्य निर्धारित किया। हिंदी साहित्य के धरातल पर उतरी फिल्म न केवल एक फिल्म मात्र होती है अपितु वह एक वासना रहित सरल हृदय की कहानी होती है।*

मुख्य शब्द– हिंदी सिनेमा, नई दिशा, समाज, झकझोर, मनोरंजन

प्रस्तावना– हिन्दी उपन्यास और सिनेमा का मूल स्वभाव एक-दूसरे से काफी अलग है और यही अलगाव इस रूपान्तरण में बाधा पैदा करता है। उपन्यास/कहानी/नाटक को पटकथा के ढाँचे में फिट करना सबसे बड़े व्यवधान के रूप में सामने आता है। इन समस्याओं से निजात पाने के लिए निर्देशक कभी साहित्य में कुछ जोड़ता तो कभी घटाता है। फिल्मांकन के दौरान उपन्यासों में आये उन परिवर्तनों के कई परिप्रेक्ष्य हो सकते है। स्त्री-परिप्रेक्ष्य से इन परिवर्तनों को देखते हुए यदि हम प्रेमचंद के 'गोदान' पर बनी त्रिलोक जेटली की फिल्म 'गोदान' की बात करें तो पाते हैं कि, 'गोदान' उपन्यास को यदि हम फिल्म में ढूँढते हैं तो हमें निराशा ही हाथ लगेगी। सिनेमा की सीमाओं के कारण 'गोदान' के फलक को निर्देशक ने छोटा कर दिया है। 'गोदान' की प्रतिनिधि स्त्री पात्र है- धनिया। उपन्यास की ही तरह फिल्म में भी धनिया एक स्पष्टवादी, स्वाभिमानी और पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देने वाला चरित्र है। गलत बात के खिलाफ आवाज़ उठाते हुए उसे ज़रा भी संकोच नहीं होता। धनिया के चरित्र की सुदृढ़ता और अक्खड़ता भले ही तत्कालीन

* शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)
** शोधार्थी, एम.फिल्. हिन्दी द्वितीय सेमेस्टर, डॉ. सी. वी. रामन् विश्वविद्यालय, करगी रोड कोटा, बिलासपुर (छ.ग.)

समाज के अनुरूप न हो लेकिन उसकी यह विशेषता अनायास ही नहीं है। प्रेमचंद्र की अग्रचेता दृष्टि आने वाले समय में स्त्री-पुरुष समानता के महत्व को पहचानती है। यही कारण है कि वे अपने उपन्यास की नायिका को एक विशेष सामर्थ्य देते हुए उसे सशक्त बनाते हैं। फिल्म प्रेमचंद्र की ही स्त्री-दृष्टि को पुख्ता करती है। ज़ाहिर है कि त्रिलोक जेटली भी उस पर अपनी फिल्म के द्वारा स्वी ति की मुहर लगाते हैं।

परन्तु चर्चित उपन्यास और कालजयी रचनाओं पर आधारित फिल्में हर दौर में पसंद की जाती रही है यही वजह है कि निर्देशक और निर्माता उपन्यासों को टटोलना और उन पर फिल्म बनाना प्रारंभ कर दिए है। यह सही भी है इससे वे दर्शक जो उपन्यासों को पढ़ना पसंद करते है वे बड़े परदे पर उस पर आधारित फिल्में देखकर गौरवान्वित होते है इसके अलावा वे दर्शक जिन्हें साहित्य की रचनाओं का ज्ञान नहीं है उनमें साहित्य की समझ बढ़ती है।

हमारे यहाॅ ज्यादा बड़ी संख्या में हिन्दी उपन्यासों पर फिल्मांकन नहीं हो पाया। सिनेमा की इन सौ सालों में हिन्दी में पाॅच हजार से ज्यादा फिल्में बनी परंतु हिन्दी साहित्य कृतियों पर मात्र इकतालिस पर ही फिल्में निर्मित हो सकी जिसमें उपन्यास पर 18, कहानी पर 20 और नाटक पर 03 फिल्में बनी है। हिन्दी उपन्यास पर आधारित जिन फिल्मों का सफल फिल्मांकन हुआ वे फिल्में है गबन, डाकबंगला, आॅधी, मौसम, बदनाम बस्ती, सारा आकाश, सत्ताईस डाउन, तमस, सूरज का साॅतवाॅ घोड़ा और नौकर की कमीज। इसी प्रकार जो असफल रही वे फिल्में हैं गोदान, सेवासदन, रंगभूमि, आपका बंटी, चित्रलेखा, धर्मपुत्र, त्यागपत्र।

हिन्दी उपन्यास पर बनीं कुछ चर्चित फिल्मों की सूची निम्न है-

* **देवदास**– मूलरूप से बांग्ला में लिखित शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास को आधार बनाकर हिन्दी में प्रमथेश बरूआ (1936), विमल राय (1955) और बाद में संजय लीला भंसाली (2002) द्वारा फिल्म देवदास का निर्माण हुआ।
* **धर्मपुत्र** (1961) - आचार्य चतुरसेन के उपन्यास को आधार बनाकर यश चोपड़ा ने धर्मपुत्र नाम से फिल्प का रूपांतरण किया।
* **साहेब बीबी और गुलाम** (1962) - बांग्ला उपन्यासकार विमल मित्र के उपन्यास पर इसी नाम से गुरूदत्त ने फिल्म बनायी, जिसको अबरार अल्वी ने निर्देशित किया।
* **गोदान** (1963) - उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद की अमर कृति पर आधारित फिल्म का निर्देशन त्रिलोक जेटली ने किया।
* **गाइड** (1965)- मूलरूप से अंग्रेजी में लिखे गये आर.के. नारायण के उपन्यास 'दि गाइड' पर देव आनंद ने हिन्दी में फिल्म का निर्माण किया, जिसे विजय आनंद ने निर्देशित किया था।
* **गबन** (1966)- मुंशी प्रेमचन्द्र के उपन्यास पर केंद्रित फिल्म का निर्माण ऋषिकेश मुखर्जी ने किया।
* **सारा आकाश** (1969)- हाल में ही दिवंगत कथाकार 'राजेन्द्र यादव' के उपन्यास 'प्रेत बोलते हैं' के आधार बनाकर निर्देशक बासु चटर्जी ने फिल्म बनायी।
* **रजनीगंधा** (1974)- निर्माता-निर्देशक बासु चटर्जी ने कथा लेखिका मन्नू

भण्डारी की कहानी 'यही सच है' को आधार बनाकर फिल्म बनायी।

* **आंधी** (1975)- कमलेश्वर के ही एक अन्य उपन्यास 'काली आंधी' को केन्द्र में रखकर गुलजार ने फिल्म बनायी।
* **सूरज का सातवां घोड़ा** (1992)- धर्मवीर भारती के उपन्यास पर निर्देशक श्याम बेनेगल ने उसी नाम से फिल्म बनायी।
* **थ्री इडियट्स** (2009)- निर्देशक राजकुमार हिरानी ने चर्चित लेखक चेतन भगत के उपन्यास 'फाइव प्वाइंट समवन' पर आधारित फिल्म का निर्माण किया।

निष्कर्ष–

सिनेमा और साहित्य का धरातल अलग-अलग है। सिनेमा शुध्द मनोरंजन प्रधान होता है जिसमें दर्शकों के मांग का ख्याल रखा जाता है, दर्शक को जो चाहिए फिल्म उद्योग वहीं परोसता है जिसका सीधा संबंध व्यवसाय से होता है, जबकि साहित्य, संवेदना और अनुभूति प्रधान होता है, साहित्य दर्शकों के मांग पर नहीं बल्कि साहित्यकार अपनी निजी संवेदना और अनुभूति को केंद्र में रखकर समाज के यथार्थ रूप को सामने लाने का प्रयास करता है। कुछ मौलिक आधुनिक हिंदी उपन्यासों पर फिल्मांकन हुआ है। लेकिन साहित्य कृतियों पर हुए फिल्मांकन, संख्या में बहुत ही कम है। आज उत्कृष्ट हिंदी साहित्यिक कृतियों का अधिकाधिक रूप से फिल्मांकन करने की आवश्यकता है। यह इसलिए जरूरी है कि साहित्य में हमारी सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक विरासतें छिपी होती हैं, जिन्हें निर्देशक बेहतर फिल्मों के माध्यम से आगामी पीढ़ियों तक पहुँचा सकते हैं। हिन्दी उपन्यास और सिनेमा जैसे अत्यंत महत्वपूर्ण कलारूपों पर शोधकार्य हिन्दी में अभी भी विरल ही हैं हिन्दी में इस प्रकार के शोधकार्य की आवश्यकता को ध्यान में रखकर हिन्दी उपन्यास और सिनेमा के स्वरूप एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए फिल्मांकन में आनेवाली समस्याएँ और उन समस्याओं का फिल्म निर्देशकों द्वारा उचित समाधान का अध ययन इस शोधकार्य के अंतर्गत किया जायेगा। हमारे अधिकाँश फिल्मकारों का यह मानना रहा है कि चूँकि सिनेमा का मूल उद्देश्य जनता का मनोरंजन करना है। अतैव साहित्यिक कृतियों के जरिये दर्शकों की अपेक्षाओं को पूरा करना कठिन हो जाता है। इसके बावजूद भी अनेक प्रबुद्ध और सजग फिल्मकारों ने समय-समय पर नामी लेखकों की साहित्यिक कृतियों व रचनाओं को आधार बनाकर सफल फिल्मों का निर्माण किया।

चूँकि फिल्म एक ऐसा माध्यम है जो जन-जन से जुड़ा है, इसलिए फिल्मकारों साहित्यिक कृतियों को फिल्माने में थोड़ी-बहुत छूट भी ली है। कई बार लेखकों ने अपनी कृतियों के साथ खिलवाड़ करने के आरोप भी लगाया है, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि फिल्म के माध्यम से साहित्यिक रचनाओं को बड़े पैमाने पर पहचान भी मिलती है।

====================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. तोंडे, रामदास नारायण (2014) ''आधुनिक हिन्दी साहित्य और फिलमांकन : स्वरूप एवं समस्याएँ'' डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर मराठावाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद।
2. तिवारी, सचिन (2017), ''साहित्य और सिनेमा : अंर्तसंबंध'', महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय उ.प्र.

3. डेविड मैमेट, थियेटर, फेबर एंड फेबर, 2010।
4. सैमुएल बैकेट, वेटिंग फश्वर गोडो।
5. होमर, ओडिसियस, रैंडम हाउस, द मश्वडर्न लाइब्रेरी, 1950, यू.एस.ए., अनुवाद- एच. एस. बुचर और ऐंड्रयू लैंग।
6. डेबोराह कार्टमेल और इमेल्डा ह्वेलेहान, सं. एडैप्टेशंस : फ्रश्वम टेक्स्ट टू स्क्रीन, स्क्रीन टू टेक्स्ट, 1999, लंदन रटलेज।
7. घई, सुमन कुमार (2017), ''अन्तरजाल पर साहित्य-प्रेमियों की विश्राम स्थली'' ISSN 2292-9754
8. क्षीरसागर, डॉ. गोकुल, ''सिनेमा और फिल्मांतरित हिन्दी साहित्य''

UGC Journal No. 40942,
Impact Factor 3.112, ISSN 0973-3914
Vol.- XXVII, Hindi-I, Year-14, March., 2019

योगाभ्यास का छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन

* शोभा पुरकर
** ए. तारा अनंत

सारांश- *प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य योगाभ्यास का छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करना है। प्रस्तुत शोध में न्यादर्श के रूप में 58 छात्राओं का चयन उद्देश्यी रूप से किया गया है। आंकड़ों के चयन के लिए अरुण कुमार सिंह तथा अल्पना सेनगुप्ता द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य बैटरी का प्रयोग उपकरण के रूप में किया गया है तथा सांख्यिकीय विश्लेषण के द्वारा टी-मूल्य ज्ञात किया गया है। परिणाम में पाया गया कि योगाभ्यास के पूर्व एवं पश्च परिणामों में सार्थक अंतर होता है।*

मुख्य शब्द– योगाभ्यास, मानसिक स्वास्थ्य, भौतिकवादी युग, पर्यावरण, प्रकृति

भूमिका– आज के भौतिकवादी युग में व्यक्ति का पर्यावरण प्रकृति से मनुष्यों को दूर ले जा रहा है। इसी के दूसरी ओर हमारी संस्कृति, सभ्यता में भी अमूल्य परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं जहाँ महिलाऐंघर तक सीमित थी, वहीं आज घर से लेकर बाहर के सारे काम-काजसंवार रही हैं। इस प्रकार से महिलाओं पर दुगुना भार पड़ रहा है वे घर के कामकाज के साथ-साथ बाहर भी काम देखती हैं। अत% उनका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है। इस प्रकार इन्हें एक ऐसे उपचार की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा ये शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सके। योग एक ऐसी विधा है जिसके द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी उत्तम बनाया जा सकता है।योग एक ऐसा स्नान है जिसके द्वारा मनुष्य की छिपी हुई शक्तियां विकसित होती हैं एवं व्यापत व्याधियों का शमन होता है जिसकेद्वारा आत्मविश्वास में वृद्धि होती है। शरीर स्वस्थ एवं लचकदार बनता है, चेहरे का तेज बढ़ता है, मन एकाग्र होता है, कार्य करने की क्षमता में वृद्धि होती है, मन प्रफुल्लित रहता है। योगाभ्यास शरीर, मन और आत्मा के शुद्धिकरण एवं विकास का उचित साधन है।

योगाभ्यास में अनेक आसनों का उल्लेख किया गया है लेकिन मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने वाले आसनों का चयन प्रस्तुत शोध में किया गया है जिसमें सूर्य नमस्कार, प्राणायाम तथा अन्य आसन शामिल हैं। मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना अति आवश्यक है जिसके द्वारा छात्राएं अपना प्रभावपूर्ण समायोजन कर सके तभी संभव होगा जब वह शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ होंगे। मानसिक रूप से स्वस्थ विद्यार्थी अपनी सभी इच्छाओं, आवश्यकतों, शील गुणों आदि के मध्य सामंजस्य बना कर अपने

* निर्देशक, विभागाध्यक्ष (शिक्षा), कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भिलाई नगर (छ.ग.)
** शोधकर्ता, शोधार्थी (शिक्षा), पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

जीवन के सभी क्षेत्रों समायोजन कर संतुष्टि प्राप्त करते हैं।

बालकृष्णन (2007)ने पाया कि आपसी तालमेल के संदर्भ में 59.54% प्रतिभागी ने स्वीकार किया कि योग करने से उनके पारिवारिक परिवेश में बदलाव आया है और उनके परिवार में प्रेम बढ़ गया है। प्रसन्नता के संदर्भ में 67.51% प्रतिभागी ने स्वीकार किया कि योगा प्राणायाम करने से अपनी प्रसन्नता स्तर में वृद्धि महसूस करते हैं। 16.98% प्रतियोगी ने स्वीकार किया कि योग प्राणायाम करने से उनमें अपने बड़ों के प्रति सम्मान की भावना बढ़ गई। 97.42% प्रतिभागी ने स्वीकार किया कि योग करने से आध्यात्मिकता के प्रति उनकी अनुभूति में बढ़ोतरी हुई है।गांगुली (2008)ने अपने अध्ययन में पाया कि योगाभ्यास के द्वारा मानसिक स्वास्थ्य को उत्तम रखा जा सकताहै तथा योग रक्त संचार को बढ़ाने एवं हानिकारक अवयवों को घटाने का कार्य करता है। योगाभ्यास पूरेमन एवं तन में संतुलन उपलब्ध करता है। अग्रवाल एवं बब्बर(2011)के परिणाम यह बताते हैं कि योग किशोरों के मानसिक व शारीरिक दोनों पक्षों को प्रभावित करता है और स्वस्थ मस्तिष्क किशोरों में समायोजन, बुद्धि, सुरक्षा, आत्म प्रत्यय, स्वशासन, संवेगात्मकता को को भी विकसित करता है।

उद्देश्य– योगाभ्यास के पूर्व एवं योगाभ्यास के पश्चात् छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं उनके आयामों के प्रभावों का अध्ययन करना।

परिकल्पना– छात्राओं के योगाभ्यास परीक्षण के पूर्व एवं पश्च परीक्षण का उनके मानसिक स्वास्थ्य एवं उनके आयामों पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

परिसीमा–

* अध्ययन के लिए छत्तीसगढ़ के दुर्ग जिले के भिलाई नगर में स्थित शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय, रिसाली सेछात्राओं का चयन किया गया है।
* छात्राओं को एक-एक घंटा योगाभ्यास छ% माह तक करवाया गया है।

न्यादर्श– इस शोध अध्ययन हेतु न्यादर्श के रूप में कक्षा सातवीं आठवीं नवमी एवं दसवीं के छात्राओं को उद्देश्यपूर्ण न्यादर्शके आधार पर चयन किया गया है जिसके लिए दुर्ग जिले के भिलाई नगर में स्थित शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय, रिसाली से 58 छात्राओं का चयन किया गया है।

उपकरण– प्रस्तुत अध्ययन में छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य के मापन हेतु अरुण कुमार सिंह एवं अल्पना सेनगुप्ता द्वारानिर्मित मानसिक स्वास्थ्य बैटरी का उपयोग किया गया है। इस मापनी के मुख्यतः छः आयाम क्रमशः सांवेगिक स्थिरता, पूर्णसमायोजन, नेतृत्व क्षमता, सुरक्षा-असुरक्षा, आत्मविश्वास एवं बुद्धि है। इस मापनी में कुल 130 प्रश्न हैं।

योगाभ्यास– छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य के परीक्षण हेतु अष्टांग योग, सूर्य नमस्कार, प्राणायाम एवंकुछ आसनों का योगाभ्यास करवाया गया है।

परिणाम एवं विवेचना– छात्राओं के योगाभ्यास प्रशिक्षण के पूर्व एवं पश्च प्रशिक्षण का उनके मानसिक स्वास्थ्य एवं उनके आयामों पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाएगा।

इस शोध अध्ययन का उद्देश्य मानसिक स्वास्थ्य एवं इसके आयामों (सांवेगिक स्थिरता, पुर्ण समायोजन, नेतृत्वक्षमता, सुरक्षा-असुरक्षा आत्मविश्वास एवं बुद्धि) के मध य छात्राओं के योगाभ्यास के पूर्व एवं योगाभ्यास केपश्चात के प्रभावों के मध्य अंतर ज्ञात

करना है इसके लिए पूर्व एवं पश्चिम प्रभावों के मध्य मध्यमान, प्रमाणिक विचलन तथा टी मूल्य की गणना की गई तथा प्राप्त परिणाम के सारांश को तालिका क्रमांक 1 मेंदर्शाया गया है।

तालिका क्रमांक 1

छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य एवं उसके आयामों (भावनात्मक स्थिरता, संपूर्ण समायोजन, सुरक्षा-असुरक्षा, स्वाारणा एवं बुद्धि) के मध्य योगाभ्यास के पूर्व एवं पश्च प्रभावों के प्राप्तांकों के टी मूल्य का सारांश

मनसिक स्वास्थ्य एवं आयाम	योग पूर्व क्रिया			योग पश्च क्रिया			t value
	N	M	SD	N	M	SD	
मा.स्वास्थ्य	58	73.724	15.093	58	82.379	11.77	11.524*
भावनात्मक स्थिरता	58	9.051	2.23	58	9.706	2.421	1.92^{NS}
संपूर्ण समायोजन	58	25.31	5.379	58	27.62	3.768	4.15*
स्वायत्तता	58	10.637	2.82	58	11.344	1.805	4.719*
सुरक्षा असुरक्षा	58	9.327	2.359	58	10.137	2.096	2.38**
स्वधारणा	58	7.77	2.935	58	8.62	2.490	0.965^{NS}
बुद्धि	58	11.36	5.526	58	14.79	4.314	5.47*
df = 114, * = 0.01 सार्थकता स्तर , ** = 0.05 सार्थकता स्तर, NS = सार्थक नहीं							

तालिका क्रमांक 1 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि छात्राओं की योगाभ्यास प्रशिक्षण के पूर्वमध्यमान 73.724 तथा प्रमाणिक विचलन 15.093 तथा योगाभ्यास के पश्चात् का मध्यमान 82.379 तथा प्रमाणिक विचलन 11.77 है दोनों के मध्य टी मूल्य की गणना करने पर मान 11.524 प्राप्त होता है जो कि df = 114, $P<0.01$**पर सार्थक है अतः परिकल्पना अस्वीकृत होती है।**

तालिका क्रमांक 1 के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम भावनात्मकता को देखने से ज्ञात होताहै कि योगाभ्यास केपूर्व का मध्यमान 9.051 तथा प्रमाणिक विचलन 2.23 का योगाभ्यास के पश्चात का मध्यमान 9.706 तथा प्रमाणिक विचलन 2.421 है दोनोंके मध्य् टी-मूल्य की गणना करने पर मान 1.92 प्राप्त होता है जो कि df = 114, $P >0.05$ **पर सार्थक नहीं है अतः परिकल्पना स्वीकृत होती है।**

तालिका क्रमांक 1 के पुनः अवलोकन से मानसिक स्वास्थ्य के आयाम संपूर्ण समायोजन का योगाभ्यासके पूर्व का मध्यमान 25.31 तथा प्रमाणिक विचलन 5.379 तथा योगाभ्यास के पश्चात मध्यमान 27.62 तथा प्रमाणिक विचलन 5.768 है दोनों के मध्य टी मूल्य की गणना करने पर मान 4.15 प्राप्त होता है जो कि df = 114, $P < 0.01$ **पर सार्थक है अतः परिकल्पना अस्वी.त होती है।**

तालिका क्रमांक 1 के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम स्वायत्तता को देखने से ज्ञात होता है कि योगाभ्यास के पूर्व का मध्यमान 10.637 तथा प्रमाणिक विचलन 2.82 योगाभ्यास के पश्चात का मध्यमान 11.344 तथा प्रमाणिक विचलन 1.805 प्राप्त हुआहै दोनों के मध्य टी मूल्य की गणना करने पर मान 4.719 प्राप्त होता है जो कि df = 114, $P<0.01$ **पर सार्थक है अतः परिकल्पना अस्वीकृत होती है।**

तालिका क्रमांक 1 के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम सुरक्षा और सुरक्षा को देखने से ज्ञात होता है कियोगाभ्यास के पूर्व का मध्यमान 9.327 तथा प्रमाणिक विचलन 2.359

तथा योगाभ्यास के पश्चात का मध्यमान 10.137 तथा प्रमाणिक विचलन 2.096 प्राप्त हुआ है दोनों के मध्य टीमूल्य की गणना करने पर 2.38 प्राप्त होता हैजोकि df = 114, P<0.05 पर सार्थक है अतः परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

तालिका क्रमांक 1 के मानसिक स्वास्थ्य के आयाम (स्व्रारणा) के अवलोकन से ज्ञात होता है कि योगाभ्यास के पूर्व का मध्यमान 7.77 तथा प्रमाणिक विचलन 2.935 तथा योगाभ्यास के पश्चात का मध्यमान 8.62 तथा प्रमाणिक विचलन 2.490 प्राप्त हुआ है दोनों के मध्य टीमूल्य की गणना करने पर मान 0.965प्राप्त होता है जो कि dt = 56, P<0.01 पर स्वीकृत होती है। जो कि dt = 56, P>0.05 पर सार्थक है अतः परिकल्पना स्वीकृत होती है।

तालिका क्रमांक 1 के अवलोकन से मानसिक स्वास्थ्य के आयाम बुद्धि का योगाभ्यास के पूर्व का मध्यमान 11.36 प्रमाणिक विचलन 5.526 तथा योगाभ्यास के पश्चात का मध्यमान 14.79 तथा प्रमाणिक विचलन 4.314 का प्राप्त हुआ है दोनों के मध्य टीमूल्य की गणना करने पर मान 5.470 प्राप्त होता है जो कि df116, P>0.01 पर सार्थक है अतः परिकल्पना अस्वीकृत होती है।

निष्कर्ष– योगाभ्यास का छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है सारणी क्रमांक 1 के अध्ययन सेज्ञात होता है कि मानसिक स्वास्थ्य के आयाम संपूर्ण समायोजन तथा तथा बुद्धि योगाभ्यास करने पर बढ़तीहै तथा भावनात्मक स्थिरता, सुरक्षा, असुरक्षा स्वधारणा में योगाभ्यास का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

सुझाव– विद्यार्थियों को नियमित रूप से योगाभ्यास हेतु प्रेरित कर योगाभ्यास करवाया जाना चाहिये जिससे छात्र एवं छात्राओं की मानसिक एवं शारीरिक योग्यता में वृद्धि हो सकेगी तथा शैक्षिक उपलब्धि भी बढ़ सकेगी। योगाभ्यास से संबंधित अन्य चरों (मंद बुद्धि बालक, पिछड़े बालक) आदि पर भी अनेक शोधकार्य किये जाने चाहिये जिससे सभी वर्गों के विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य बढ़ सके।

शैक्षिक महत्व–

* योगाभ्यास में विभिन्न शासनों के नियमित अभ्यास से सभी अंग क्रियाशील हो जाते है। जिससे शारीरिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।
* योगाभ्यास द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य भी प्रदान करता है। जैसे प्राणायाम से अनेक रोगों का शमन होता है एवं ध्यान द्वारा एकाग्रता में वृद्धि होती है।

=================

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. अग्रवाल एवं बब्बर, एस. (2011) योग प्रशिक्षित एवं योग अप्रशिक्षित किशोरों के मानसिक स्वास्थ्य का तुलनात्मक अध्ययन -शोध प्रकल्प, वर्ष16, 56(3), 44-46
2. गांगुली, एस.के. (2008) स्कूली छात्र छात्राओं व पुरूषों पर योगाभ्यास का उनके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन, व्यायाम विज्ञान, कॉलेज ऑफ योगा एण्ड सीएम कैवल्य धाम, लोनावाला।
3. बालकृष्णन (2007) विज्ञान की कसौटी पर योग, दिव्य प्रकाशन, दिव्य योंग मंदिर ट्रस्ट, पतंजलि योग पीठ दिल्ली हरिद्वार रोड, वहादराबाद हरिद्वार 249402 उत्तराखंड

RNI No MP BIL 01034 / 12 / 1 / 2005 - TC
REGISTRAR OF NEWS PAPERS IN INDIA, GOVT. OF INDIA

ISSN 0973-3914

9770973391009

JOURNAL OF
Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India
Registered under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802, Year-1997
www.researchjournal.in

Editor : Prof. Braj Gopal, Printed and Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications, 41/42 Raghuwans Sadan, Bichhiya, Rewa, 486001 (MP) and Printed at Yuvraj Press, Ghoghar, Raniganj, Rewa 486001 (MP)